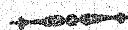
नन्द-ग्रन्थ-माला—४



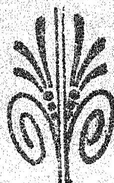
# मनुस्मृति

## ( भाषा-टीका )



टीकाकार—

**पं० जनार्दन झा**



प्रकाशक—

**हिन्दी पुस्तक एजेन्सी**

२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता।

तृतीय बार ] संवत् १९८५ [ मूल्य सजिल्द ३।)

प्रकाशक—

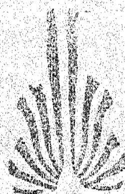
बैजनाथ केडिया,

प्रोप्राइटर—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता।



मुद्रक—

किशोरीलाल केडिया,

"वणिक प्रेस"

१, सरकार लेन, कलकत्ता।

# मनुसंहितास्थविषयानुक्रमः ।

## प्रथमोऽध्यायः ।

## तृतीयोऽध्यायः ।

## चतुर्थोऽध्यायः ।

## पञ्चमोऽध्यायः।

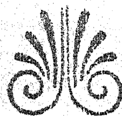
## षष्ठोऽध्यायः ।

## दशमोऽध्यायः ।

## एकादशोऽध्यायः ।

## द्वादशोऽध्यायः ।

संपूर्णेयं मनुस्मृतिविषयानुक्रमणी ।



## ८२—सूई शिल्प शिक्षा

ले० श्रीयुक्त उपेन्द्रनाथ दास गुप्त

इस पुस्तकमें सूईके द्वारा दस्तकारीका काम सिखानेके सरल तरीके बताये गये हैं; जैसे मोजा, गञ्जी, फीता, झालर, गुलूबन्द इत्यादि बुननेके तरीके अनेकों चित्र देकर समझाये गये हैं। इससे बिना किसीके सहारे अपने आप सीख सकते हैं। पुस्तक बड़ी उपयोगी बनी है। सुन्दर जिल्द सहितका दाम १)

## बङ्किम ग्रन्थमाला १ ला खण्ड,

ले० बङ्किमचन्द्र चटर्जी

बङ्किम बाबूके ग्रंथ कितने लोकप्रिय हैं यह किसीसे छिपा नहीं है। इसी बातको मद्दे नजर रखकर इस ग्रंथका प्रकाशन हुआ है और आगे बाकी बचे ग्रंथ प्रकाशित होंगे। बङ्गाली जनता तो बङ्किम बाबूकी बड़ी ऋणी है ही किन्तु हिन्दी भाषा भाषी भी कम लाभ नहीं उठाते हैं। इनके ग्रंथ बड़े उच्च कोटिके हैं, प्रस्तुत ग्रंथमें बङ्किम बाबूके चार रत्न हैं (१) विषवृक्ष (२) मृणालिनी (३) सीताराम (४) कृष्णाकान्तका वसीयतनामा। ये चारों उपन्यास बड़े ही उपयोगी हैं। और ये ६६५ पृष्ठोंमें समाप्त हुए हैं। दाम १।) है तथा रेशमी जिल्दका १॥) है। आजतक इतना सस्ता ग्रन्थ कहींसे भी प्रकाशित नहीं हुआ है।

## १—आनन्द मठ

ले० बंकिमचन्द्र चटर्जी

मातृभूमिके प्रति उत्कट अनुराग और प्रेमका यह प्रत्यक्ष स्वरूप है। इस पुस्तकसे नव बङ्गालने कैसा उत्साह ग्रहण किया था उसका अनुमान केवल १९०० के पूर्व और वर्त्तमान बङ्गालकी तुलना करके ही लग सकता है। इसीसे केवल, प्रचारके ख्यालसे सस्ते दाममें यह पुस्तक निकाली गयी है अर्थात् २०० पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य केवल ॥।)



# मनुस्मृतिः ।

## सरल भाषाटीकासहित ।



### अध्याय १

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः ।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥१॥

मनुजी महाराज सुखसे एकाग्र बैठे थे, ऐसे समय महर्षिगण उनके सम्मुख जाकर उनका यथाविधि पूजन करके बोले—

भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः ।
अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥२॥

हे भगवन् , सब वर्णों तथा संकीर्ण जातियोंके धर्म, जो जैसे हों, वे क्रमसे हमलोगोंको आप ही बता सकते हैं।

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः ।
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥३॥

( कारण ) भगवन् ! आप ही एक ऐसे हैं जो इस स्वयं उत्पन्न होनेवाले, अचिन्तनीय और अप्रमेय अखिल ब्रह्मके कार्यका तत्व जाननेवाले हैं ।

स तैः पृष्टस्तथा सम्यगमितौजा महात्मभिः ।
प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षीञ्छ्रूयतामिति ॥४॥

महात्माओंके इस प्रकार पूछनेपर उन परम तेजस्वी मनुजीने उन महर्षियोंका उचित सम्मान करके कहा - अच्छा, सुनिये ।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥५॥

यह ( सारा संसार ) पहले तम प्रकृतिमें लीन था, इससे यह दिखलायी नहीं देता था, इसका कोई रूप नहीं था, जिसकी कोई तर्कसे कल्पना कर सके, ज्ञानके परेका विषय था, सर्वत्र गाढ़ निद्राकी-सी अवस्था थी ।

ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥६॥

तब अव्यक्त ( अगोचर ) स्वयंभू भगवान् अन्धकारका नाश कर पञ्चमहाभूतों ( पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, और वायु ) को प्रकट करते हुए स्वयं व्यक्त हुए ।

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥७॥

यह जो अगोचर, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन, घट-घटमें विराजने-वाले, और बुद्धिसे जिनका पता नहीं लगता ऐसे ( परमात्मा ) हैं वेही ( इस प्रकार ) प्रकट हुए ।

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥८॥

अनेक प्रकारके जीवोंकी सृष्टिकी इच्छासे उस परमात्माने ध्यान करके सर्वप्रथम अपने शरीरसे जल उत्पन्न किया और उसमें ( शक्ति-रूप ) बीज डाला ।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥९॥

वह बीज सूर्यके समान चमकनेवाला, सोनेकासा अंडा बन गया। उसमें सब लोकोंके सिरजनहार स्वयं ब्रह्मा आविर्भूत हुए।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥१०॥

जलका नाम "नार" है, क्योंकि "नर" ( परमात्मा ) से उसकी उत्पत्ति हुई है। वह "नार" जिसका प्रथम अयन (घर) हुआ उसका नाम ( इस तरह ) "नारायण" पड़ा।

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥११॥

ऐसा जो सबका कारण, अव्यक्त, नित्य तथा सत् और असत् दोनोंकी आत्मा है उससे उत्पन्न हुआ वह पुरुष संसारमें ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥१२॥

उस अंडेमें वह ब्रह्मा एक वर्षतक रहा। तब उसने आप ही अपने ध्यानसे उस अंडेके दो टुकड़े कर डाले।

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे ।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥१३॥

ब्रह्माने उन दोनों टुकड़ोंसे स्वर्ग और पृथ्वीका निर्माण किया। मध्यमें आकाश, आठों दिशाएं और जलका शाश्वत स्थान ( समुद्र ) निर्माण किया।

उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ।
मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥१४॥

फिर आत्मासे सत्-असत् भावसे युक्त मन और मनसे ईश्वराभिमानी अहङ्कार तत्त्वको प्रकट किया।

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च।
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥१५॥

( साथ ही ) महान् ( बुद्धि ), तीनों गुण ( सत्व, रज, तम ) और विषयोंको ग्रहण करनेवाली पांचों इन्द्रियोंको क्रमशः उत्पन्न किया।

तेषां त्ववयवान्सूक्ष्मान्षण्णामप्यमितौजसाम्।
सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥१६॥

फिर इन छहों असीम तेजस्वी तत्त्वोंके सूक्ष्म अवयवोंको उनके विकारोंमें मिलाकर सब प्राणियोंकी रचना की।

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट्।
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥१७॥

इस मूर्तिके ये छओं सूक्ष्म अवयव ( अहङ्कार और तन्मात्रा ) पञ्चभूतों और इंद्रियोंका आश्रय करते हैं, इसलिये पण्डित लोग उस ब्रह्मकी मूर्तिको शरीर कहते हैं।

तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः।
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥१८॥

शब्दादि पञ्चतन्मात्रात्मक ब्रह्ममें आकाशादि महाभूत निज निज कर्म्मोंके साथ प्रवेश करते हैं ( उत्पन्न होते हैं )। अहङ्कार रूपसे अवस्थित ब्रह्ममें मन अपने सूक्ष्म अवयवोंके साथ उत्पन्न होता है। वह सब भूतोंका निमित्त है और अविनाशी है।

तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम्।
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥१९॥

महत्तत्व अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा ये जो परम तेजस्वी सात

"पुरुष" ( तत्त्व ) हैं इनके शरीर निर्माण करनेवाले भागोंसे यह ( विनाशशील ) संसार अव्यय ( अविनाशी ) से उत्पन्न होता है ।

आद्याद्यस्य गुणं त्वेषामवाप्नोति परः परः ।
यो यो यावतिथश्चैषां स स तावद्गुणः स्मृतः ॥२०॥

इन पञ्चमहाभूतोंके जो पांच गुण हैं वे क्रमशः पूर्वसे एक-एक आगे बढ़ते गये हैं । ( जैसे आकाशमें एक "शब्द" गुण है, वायुमें "शब्द, स्पर्श" ये दो गुण हैं, तेजमें "शब्द, स्पर्श और रूप" ये तीन गुण हैं, जलमें "शब्द, स्पर्श, रूप, और रस" ये चार गुण हैं और पृथ्वीमें पांचों गुण अर्थात् "शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध" हैं ।) इससे पञ्चमहाभूतोंमेंसे जिस भूतकी क्रम-संख्या जो होती है उतने ही गुण उसमें होते हैं ।

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥२१॥

(उस ईश्वरने) सृष्टिके आरम्भमें वेदके शब्दोंसे ही सबके अलग-अलग नाम और कर्म्म नियत कर दिये और उनकी अलग-अलग संस्थाएं बना दीं ।

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः ।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥२२॥

उस ईश्वरने जड़-चेतन जीवों, देवताओं तथा सूक्ष्म साध्यगणोंकी सृष्टि की और सनातन यज्ञ भी बनाये ।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥२३॥

सनातन ब्रह्मने यज्ञ-सिद्धिके लिये अग्नि, वायु और सूर्यसे क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद—इन तीनोंको प्रकट किया ।

कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
सरितः सागराञ्छैलान्समानि विषमाणि च ॥२४॥

फिर समय, समयके विभाग, नक्षत्र, ग्रह, नदी, समुद्र और पहाड़ बनाये। सम-विषम स्थानका भी निर्म्माण किया।

तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च।
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥२५॥

इन प्रजाओंके सिरजनेकी इच्छासे विधाताने तप, वाणी, चित्तका समाधान, काम और क्रोध उत्पन्न करके इस सृष्टिको रचा।

कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत्।
द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥२६॥

कर्मोंके विचारार्थ धर्म और अधर्मको पृथक्-पृथक् करके बना दिया और सुख-दुःखादि द्वन्द्व प्रजाओंके साथ कर दिये।

अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्धानां तु याःस्मृताः।
ताभिः सार्धमिदं सर्वं संभवत्यनुपूर्वशः ॥२७॥

( तात्पर्य ) पञ्चमहाभूतोंकी जो नाश होनेवाली सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राएं ( रूप, रस, गन्ध, घ्राण और स्पर्श ) कही गयी हैं, उन्हींके साथ यह सारा जगत् क्रमसे ( अर्थात् सूक्ष्मसे स्थूल, स्थूलसे स्थूलतर इस क्रमसे ) उत्पन्न होता है।

यं तु कर्मणि यस्मिन्स न्ययुंक्त प्रथमं प्रभुः।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥२८॥

उस प्रभुने सृष्टिके आरम्भमें जिस प्राणीको जिस कर्ममें नियुक्त किया, वह बार बार जन्म लेकर भी अपने उसी कर्मको करने लगा।

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥२९॥

हिंस्र और अहिंस्र कर्म, कोमल और कठोर, धर्म और अधर्म, सत्य और मिथ्या, इनमेंसे विधाताने सृष्टिके आरम्भमें जिसे जिस कर्ममें नियुक्त कर दिया, उसमें वही कर्म आकर प्रवेश करने लगा।

यथर्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्तुपर्यये ।
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः ॥२०॥

ऋतु बदलनेपर जैसे ऋतु आप ही अपने चिह्नोंको धारण करती है, वैसे ही जीव स्वयं अपने अपने कर्मोंको ( जन्मतः ) प्राप्त होते हैं।

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरूपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥२१॥

लोक-वृद्धिके लिये मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, जङ्घासे वैश्य और चरणसे शूद्रको उत्पन्न किया।

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥२२॥

हिरण्यगर्भने अपने शरीरके दो भाग किये और आधेसे पुरुष और आधेसे स्त्री बन गया। उस स्त्रीमें उसने विराट् पुरुषकी सृष्टि की।

तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ।
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥२३॥

हे श्रेष्ठ द्विजगण, उस विराट पुरुषने तप करके जिसे उत्पन्न किया, वह 'इस सारी सृष्टिका सिरजनेवाला मैं ही हूं" ऐसा समझिये।

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥२४॥

मैंने प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छासे अति दुष्कर तपस्या करके आदिमें प्रजाओंके पति दस महर्षियोंको उत्पन्न किया।

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥२५॥

( उनके नाम ये हैं )—
मरीचि,अत्रि,अङ्गिरा,पुलस्त्य,पुलह,क्रतु,प्रचेता,वसिष्ठ,भृगु और नारद।

एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः ।
देवान्देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥३६॥

इन महातेजस्वी मुनियोंने अन्य सात मनुओंको, देवोंको, देवताओं-के निवास-स्थानोंको और परम तेजस्वी महर्षियोंको उत्पन्न किया।

यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ।
नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥३७॥

यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग (वासुकि आदि) सर्प, सुपर्ण (गरुड़ आदि) और पितरोंके भिन्न-भिन्न गण उत्पन्न किये।

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥३८॥

विद्युत, वज्र, मेघ, रोहित (दण्डाकार), इन्द्र-धनुष, उल्का, अन्तरिक्षमें होनेवाली गड़गड़ाहट, पुच्छल तारे और अन्य छोटे बड़े नक्षत्र उत्पन्न किये।

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहङ्गमान् ।
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥३९॥

किन्नर, वानर, विविध प्रकारके मत्स्य, पक्षी, पशु, ( गाय, भैंस आदि ) मृग ( हरिण आदि ) मनुष्य और सिंह आदि जिनके नीचे-ऊपर दाँत होते हैं।

कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामाक्षिकमत्कुणम् ।
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥४०॥

कीड़े-मकोड़े, भुनगे, जूँ, मक्खी, खटमल, मच्छर और विविध प्रकारके स्थावरोंको उत्पन्न किया।

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ।
यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥४१॥

इस प्रकार मेरी आज्ञासे इन महात्माओंने अपने तपोयोगसे कर्म्मानुरूप स्थावर जङ्गमकी सृष्टि की ।

येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ।
तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥४२॥

जिन प्राणियोंका जैसा कर्म कहा गया है वह और किसका जन्म कैसे होता है यह जन्म-क्रम-योग तुमसे कहूंगा ।

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥४३॥

दोनों ओर दांतवाले पशु,मृग, और हिंसक जन्तु, राक्षस,पिशाच, मनुष्य, ये सब जरायुज अर्थात् गर्भसे उत्पन्न होनेवाले हैं ।

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ।
यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥४४॥

पक्षी, सांप, मगर, मछली, कछुवा, और इस प्रकारके जितने स्थलचर ( छिपकली आदि, ) जलचर ( शंख सीप आदि ) जीव हैं वे सब अण्डज हैं ।

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ।
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किंचिदीदृशम् ॥४५॥

डांस, मच्छर, जूं, मक्खी और खटमल और जो इस प्रकारके जीव हैं, उनकी उत्पत्ति गरमीसे होती है, इसलिये वे स्वेदज हैं।

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥४६॥

जो सब स्थावर, बीज या डाल रोपनेसे उत्पन्न होते हैं वे उद्भिज्ज हैं और जिनमें बहुत फूल-फल होते हैं और फल पकनेपर सूख जाते हैं वे ओषधि कहलाते हैं ।

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥४७॥

जिनमें फूलके बिना ही फल लगते हैं वे वनस्पति कहे जाते हैं और जिनमें फूल और फल दोनों होते हैं वे वृक्ष कहलाते हैं।

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ।
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥४८॥

विविध प्रकारके गुच्छ, गुल्म, भिन्न भिन्न जातिके तृण, फैलनेवाली लताएं ( कद्दू आदि ), वल्ली ( गुरुच आदि ) बीजों और टहनियोंसे उत्पन्न होते हैं।

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ।
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥४९॥

पूर्व जन्मार्जित कर्म्मके कारण ये सब अत्यन्त तमोगुणसे घिरे रहते हैं। इनके भीतर चैतन्य रहता है और इन्हें सुख-दुःखका अनुभव भी होता है।

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः ।
घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥५०॥

इस चराचरमय घोर अनित्य संसारमें ब्रह्मासे लेकर यहांतकका उत्पत्ति-क्रम कहा गया।

प्रलय

एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं मां चाचिन्त्यपराक्रमः ।
आत्मन्यन्तर्दधे भूयः कालं कालेन पीडयन् ॥५१॥

इस प्रकार यह सारा जगत् तथा मुझको उत्पन्न करके वह सर्व-शक्तिमान् प्रजापति सृष्टिकालको प्रलयकालसे नष्ट करता ( अर्थात् पुनः पुनः सर्ग और प्रलय करता ) हुआ अपने रूपमें अन्तर्धान रहता है।

यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥५२॥

जब वह देव जागता है ( अर्थात् सृष्टि स्थितिकी इच्छा करता है ) तब यह संसार सचेष्ट होता है और जब वह शान्त भावसे शयन करता है तब यह विश्व प्रलयको प्राप्त हो जाता है ।

तस्मिन्स्वपति सुस्थे तु कर्मात्मानः शरीरिणः ।
स्वकर्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥५३॥

स्वस्थ होकर उसके शयन करनेपर कर्मानुसार देह धारण करनेवाले प्राणी अपने कर्मोंसे निवृत्त होते हैं और उनका मन भी निश्चेष्ट हो जाता है ।

**महाप्रलय**

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि ।
तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥५४॥

उस परमात्मामें एक ही साथ जब सब जीव प्रलयको प्राप्त होते हैं, तब यह सब प्राणियोंका आत्मा निवृत्त हो सुखसे शयन करता है ।

**प्राणीकी मृत्यु**

तमोऽयं तु समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः ।
न च स्वं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तितः ॥५५॥

यह जीव तमका आश्रय कर बहुत कालतक इन्द्रियोंके साथ रहता है और वह जब अपना कर्म ( श्वास-संचालनादि ) नहीं करता तब पूर्वशरीरको त्यागकर दूसरा शरीर धारण करता है ।

यदाणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च ।
समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥५६॥

यह जीव अणुमात्रिक (सूक्ष्मरूप) होकर जब स्थावर वा जंगमके बीजमें प्रविष्ट होता है तब वह इस प्रकार सूक्ष्मरूप हुआ जीव स्थूल शरीर धारण करता है ।

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरम्।
संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥५७॥

इस प्रकार वह अविनाशी ब्रह्मा इस सकल चराचर विश्वको जाग्रत और स्वप्नावस्थाद्वारा बार बार उत्पन्न करता और नष्ट करता है।

इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयमादितः।
विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥५८॥

इस शास्त्रको रचकर उस ब्रह्माने स्वयं सृष्टिके आरम्भमें मुझको विधिपूर्वक सिखलाया और मैंने मरीचि आदि महर्षियोंको बताया।

एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥५९॥

अब भृगुजी इस शास्त्रको सम्पूर्णरूपसे आपको सुनावेंगे ; क्योंकि इन मुनिने मुझसे यह सब अच्छी तरह सीखा है।

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः।
तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥६०॥

मनुजी द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे महर्षि भृगु प्रसन्न हुए और उन्होंने उन सब ऋषियोंसे कहा, अच्छा सुनिये।

स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः ॥६१॥

( स्वयंभूसे उत्पन्न ) इन स्वायम्भुव मनुके वंशमें छः मनु और हुए। उन महातेजस्वी महात्माओंने अपनी अपनी प्रजाएं उत्पन्न कीं।

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥६२॥

( उन मनुओंके नाम ये हैं—)

स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और सूर्यके पुत्र महातेजस्वी वैवस्वत।

स्वायंभुवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः ।
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् ॥६३॥

इन स्वायम्भुव आदि महातेजस्वी सातों मनुओंने अपने अपने अधिकार-कालमें यह सब चराचर उत्पन्न कर उसकी रक्षा की ।

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला ।
त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः ॥६४॥

अठारह निमेषों ( पलकों ) की एक काष्ठा, तीस काष्ठाओंकी एक कला, तीस कलाओंका एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तोंका एक अहोरात्र ( दिन और रात ) होता है ।

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥६५॥

सूर्य देवता और मनुष्योंके लिये दिन-रातका विभाग करता है । प्राणियोंके सोनेके लिये रात और काम करनेके लिये दिन है ।

पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ।
कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥६६॥

मनुष्यका एक मास पितरोंका एक अहोरात्र होता है । इस मासके दो पक्ष होते हैं । मनुष्योंका कृष्णपक्ष पितरोंके कर्म करनेका दिन है और शुक्लपक्ष सोनेके लिये उनकी रात है ।

दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥६७॥

मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक अहोरात्र होता है । उसका विभाग इस प्रकार है । उत्तरायण ( मकरकी संक्रान्तिसे मिथुनकी संक्रान्तितक ) उनका दिन है और दक्षिणायन ( कर्ककी संक्रान्तिसे धनकी संक्रान्तितक ) रात है ।

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ।
एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥६८॥

ब्रह्माके रात-दिनका तथा एक एक युगका जो प्रमाण है वह अब क्रमसे सुनिये ।

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥६९॥

चार हजार वर्षका कृतयुग ( सत्ययुग ) कहा गया है । इतने ही सौ याने ४०० वर्षकी सन्ध्या ( युगारम्भके पूर्वका समय ) और ४०० ही वर्षका सन्ध्यांश ( एक युग समाप्त होनेपर दूसरे युगका आरम्भ होनेतकका काल ) होता है ।

इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥७०॥

सन्ध्या और संध्यांशसहित अन्य तीनों युगोंका प्रमाण एक एक हजार और एक एक सौ वर्ष क्रमपूर्वक घटानेसे होता है। ( जैसे सतयुगसे १ हजार वर्ष कम त्रेताका प्रमाण और ३०० वर्ष उसकी सन्ध्या और उतने ही सौ वर्षका संध्यांश होता है । त्रेतासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् दो हजार वर्षका द्वापर । दो सौ वर्षकी उसकी संध्या और दो सौ वर्षका सन्ध्यांश होता है । द्वापरसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् १ हजार वर्षका कलियुग और एक सौ वर्षकी उसकी सन्ध्या तथा एक सौ वर्षका उसका सन्ध्यांश होता है ।

यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् ।
एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥७१॥

प्रथम जो चारों युगोंका यह प्रमाण बताया है, वही बारह हजार वर्ष देवताओंका एक युग कहलाता है ।

दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया ।
ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावतीं रात्रिमेव च ॥७२॥

देवताओंका एक हजार युग ब्रह्माका एक दिन होता है। और उतने ही युगकी एक रात होती है।

तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः।
रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥७३॥

एक सहस्र युगका ब्रह्माका एक पवित्र दिन और उतने ही प्रमाण-की एक रातको जो जानता है, वही वास्तवमें रात-दिन क्या है, यह जानता है।

तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते।
प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् ॥७४॥

वह सोया हुआ ब्रह्मा अपने अहोरात्रके अन्तमें जागता है और जगकर सत् असत् स्वरूप मनको लोक-रचनामें लगाता है।

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया।
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥७५॥

सृष्टि करनेकी इच्छासे प्रेरित मन ( अपना काम करता है—) सृष्टि करता है। उससे आकाश उत्पन्न होता है। आकाशका गुण शब्द कहलाता है।

आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः।
बलवाञ्जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः ॥७६॥

विकारवान् आकाशसे सब गन्धोंको वहन करनेवाला पवित्र बलवान् वायु उत्पन्न होता है, जिसका गुण स्पर्श है।

वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम्।
ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥७७॥

विकारवान् वायुसे अन्धकार नाश करनेवाला प्रकाशमान् तेज उत्पन्न होता है, उसके गुणको रूप कहते हैं।

ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः।
अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥७८॥

विकृतिमान् तेजसे जल उत्पन्न होता है, जिसका गुण रस है। जलसे भूमि बनती है, जिसका गुण गन्ध है। इस प्रकार आदिमें सृष्टिकी रचना होती है।

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम्।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥७९॥

पहले जो १२ हजार वर्षका देवताओंका एक युग बताया गया है। उसके इकहत्तर गुने ( ८५२००० ) वर्षका एक मन्वन्तर कहा गया है ( एक मन्वन्तरतक एक ही मनुके हाथमें सृष्टिसञ्चालनका भार रहता है। )

मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च।
क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥८०॥

मन्वन्तर और उत्पत्ति-प्रलय असंख्य हैं। ( परमधाममें रहनेवाला ) परमेष्ठी ( परमात्मा ) यह सब खेलकी तरह बार बार करता रहता है।

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे।
नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान्प्रति वर्तते ॥८१॥

सत्युगमें धर्म चारों चरणोंसे युक्त ( अर्थात् सर्वाङ्गपूर्ण ) रहता है। सत्य रहता है। कोई मनुष्य किसीके साथ अधर्मका व्यवहार नहीं करता।

इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः।
चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः ॥८२॥

अन्य युगोंमें अधर्मसे धन-विद्यादिके अर्जनद्वारा धर्मका बल घटता है। चोरी, मिथ्या और कपटसे क्रमशः धर्मके एक एक चरणका ह्रास

होता है। ( अभिप्राय यह कि त्रेतामें धर्मके तीन चरण, द्वापरमें दो चरण और कलियुगमें धर्मका एक ही चरण बच रहता है। )

**अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ।**
**कृते त्रेतादिषु ह्येषामायुर्ह्रसति पादशः ॥८३॥**

सतयुगमें लोग धर्माचरणसे सब मनोरथ सिद्ध करते हुए नीरोग होकर चार सौ वर्षतक जीते हैं। त्रेता, द्वापर और कलियुगमें धर्मका ह्रास होनेसे क्रमशः एक सौ वर्ष आयु घटती है।

**वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम् ।**
**फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावाश्च शरीरिणाम् ॥८४॥**

वेदमें कही हुई मनुष्योंकी आयु, कर्मोंका फल और शापानुग्रह आदि प्रभाव, ये इस संसारमें युग-धर्मके अनुसार ही होते हैं।

**अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।**
**अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥८५॥**

युगोंका ज्यों-ज्यों ह्रास होता है त्यों-त्यों उनका धर्म बदलता जाता है। इसीसे जो धर्म सतयुगमें पाया जाता है वह त्रेतामें नहीं,जो त्रेतामें वह द्वापरमें नहीं और जो धर्म द्वापरमें वह कलियुगमें नहीं रहता।

**तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।**
**द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥८६॥**

[ यद्यपि तपादि सब धर्म सब युगोंमें आचरणीय हैं तथापि ] सतयुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान प्रधान माना गया है।

**सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ।**
**मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥८७॥**

उस महातेजस्वी ब्रह्माने इस विश्वके रक्षार्थ मुख, बाहु, जंघा और पांवसे उत्पन्न वर्णोंके अलग-अलग कर्म निर्दिष्ट कर दिये।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥८८॥

वेद पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना—ये छः कर्म ब्राह्मणोंके लिये नियत किये ।

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥८९॥

प्रजाओंकी रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, विषयोंमें आसक्त न होना, संक्षेपसे ये कर्म क्षत्रियके हैं ।

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥९०॥

पशुओंका पालन, दान, यज्ञ और वेदाध्ययन, वाणिज्य-व्यवसाय, महाजनी और खेती, ये कर्म वैश्यके हैं ।

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥९१॥

ईश्वरने शूद्रके लिये एक ही कर्मका आदेश किया है, वह इन उपर्युक्त तीनों वर्णोंकी ईर्ष्यारहित होकर सेवा करे ।

ऊर्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः ।
तस्मान्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा ॥९२॥

पुरुष नाभिसे ऊपर बहुत पवित्र माना गया है । उसमें भी ब्रह्माने मुखको सब पवित्र अङ्गोंकी अपेक्षा विशेष पवित्र कहा है ।

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात् ।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥९३॥

सर्वप्रथम और मुखसे उत्पन्न होने तथा वेदोंका धारण करनेके कारण, धर्मतः ब्राह्मण इस सम्पूर्ण संसारका स्वामी है ।

तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत्।
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥९४॥

ब्रह्माने तपस्या करके, देव और पितरोंको उनका आहार हव्य-कव्य पहुंचाने और तद्द्वारा इस अखिल विश्वका रक्षण करनेके लिये सर्वप्रथम अपने मुखसे ब्राह्मणको उत्पन्न किया।

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥९५॥

जिसके मुखसे देवता हव्य और पितर कव्य खाते हैं उससे श्रेष्ठ प्राणी और कौन हो सकता है?

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥९६॥

स्थावर-जङ्गम रूप पदार्थोंमें कीटादि प्राणी श्रेष्ठ हैं, इन प्राणि-योंसे बुद्धिपूर्वक व्यवहार करनेवाले पशु-पक्षी श्रेष्ठ हैं, बुद्धि रखने-वालोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं, और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥९७॥

ब्राह्मणोंमें विद्वान, विद्वानोंमें कर्मज्ञ, कर्म्मज्ञोंमें कर्मकर्त्ता, कर्म-कर्त्ताओंमें ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं।

उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥९८॥

ब्राह्मण-शरीरकी उत्पत्ति ही धर्मकी अविनाशी मूर्त्ति है। ब्राह्मण धर्मके लिये ही उत्पन्न होता है। इससे वह मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ होता है।

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधि जायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥९९॥

ब्राह्मण जो उत्पन्न होता है, वह पृथ्वीपर सबमें श्रेष्ठ उत्पन्न होता है। वह सब प्राणियोंके धर्मसमूहकी रक्षामें प्रभु ( समर्थ ) है।

सर्वं स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम्।
श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥१००॥

संसारमें जो कुछ है वह सब ( मानों ) ब्राह्मणका ही धन है; कारण उसकी सर्वश्रेष्ठ उत्पत्ति होनेसे वह इसका अधिकारी है।

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥१०१॥

ब्राह्मण जो दूसरेका भी अन्न खाता है, दूसरेका दिया वस्त्र पहनता है और दूसरेसे लेकर किसी दूसरेको देता है, वह सब उसका अपना ही है; ब्राह्मणकी कृपासे ही और लोग भोग करते हैं।

तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामनुपूर्वशः।
स्वायंभुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥१०२॥

उसके और अन्य वर्णोंके कर्म जाननेके लिये मेधावी स्वायम्भुव मनुने इस शास्त्रको रचा।

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः।
शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ्नान्येन केनचित् ॥१०३॥

विद्वान् ब्राह्मण इसे यत्नपूर्वक पढ़े और वही शिष्योंको भी अच्छी तरहसे पढ़ावे, और कोई न पढ़ावे।

इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः।
मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥१०४॥

इस शास्त्रका अध्ययन करनेवाला और उसके अनुसार करनेवाला ब्राह्मण तन, मन और वचनसे होनेवाले कर्मोंके दोषोंसे बद्ध नहीं होता।

पुनाति पङ्क्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् ।
पृथिवीमपि चैवेमां कृत्स्नामेकोऽपि सोर्हति ॥१०५॥

वह पंक्तिको पावन करता है ( अशुद्ध हुए लोगोंको शुद्ध करता है ) तथा सात पीढ़ी पिछले पुरुखोंका और सात पीढ़ी आगे उत्पन्न होनेवाली सन्ततिका उद्धार करता है । वह अकेला इस सारी पृथ्वीका उद्धार करने योग्य होता है ।

इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् ।
इदं यशस्यमायुष्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥१०६॥

यह श्रेष्ठ शास्त्र स्वस्ति ( इष्ट अर्थकी रक्षा ) करनेवाला, बुद्धि बढ़ानेवाला, यश प्राप्त करानेवाला, दीर्घायु देनेवाला और मुक्ति मार्गको दिखानेवाला है ।

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ।
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः ॥१०७॥

इस शास्त्रमें सम्पूर्णरूपसे कर्मोंके गुण-दोष कहे गये हैं और चारों वर्णोंका सनातन आचार भी कहा गया है ।

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः॥१०८॥

वेद और स्मृति दोनोंमें कहा गया आचार ही परम धर्म है, इस कारण आत्मवान् द्विज इस आचारमें सदा यत्नवान् रहे ।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥१०९॥

आचारसे हीन ब्राह्मण वेदका फल नहीं पाता और जो आचारसे युक्त है वह सम्पूर्ण फलका भागी होता है ।

एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥११०॥

मुनियोंने आचारमें इस प्रकार धर्मकी गति देख श्रेष्ठ आचारको ही सब तपस्याओंका मूल माना है।

अनुक्रमणिका

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च।
व्रतचर्योपचारं च स्नानस्य च परं विधिम् ॥१११॥

( प्रथम दो अध्यायोंमें )—जगत्‌की उत्पत्ति, संस्कारकी विधि, ब्रह्मचर्यव्रत और ( गुरुकुलसे शिष्यके लौटनेपर ) "स्नान" नामक संस्कार—( इसके पश्चात् )—

दाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम्।
महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पं च शाश्वतम् ॥११२॥

( तीसरे अध्यायमें )—विवाह, विवाहके भेद, महायज्ञ ( बलिवैश्वदेवादि पञ्चयज्ञ ), नित्यश्राद्धकी विधि।

वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च।
भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिमेव च ॥११३॥

( चौथे अध्यायमें )—जीविकाके लक्षण, स्नातक ( गार्हस्थ्याधिकारी ) के व्रतनियम। ( चौथे अध्यायमें ) – भक्ष्य, अभक्ष्य, शौच और वस्तुओंकी शुद्धि।

स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च।
राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥११४॥

( पाँचवें अध्यायमें )—स्त्रियोंका धर्म। ( छठे अध्यायमें ) — तपश्चर्या, मोक्ष, संन्यास। ( सातवें अध्यायमें )—सम्पूर्ण राजधर्म। ( आठवें अध्यायमें )—राजकार्य्योंका विशेष निर्णय —

साक्षिप्रश्नविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरपि ।
विभागधर्मं द्यूतं च कण्टकानां च शोधनम् ॥११५॥

तथा साक्षियोंसे पूछनेकी रीति। ( नवें अध्यायमें )—स्त्री-पुरुषोंके धर्म, अंशाधिकारियोंके धर्म और जुआ तथा धर्म-पथके कण्टकोंका संशोधन—

वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् ।
आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥११६॥

तथा वैश्य और शूद्रोंका कर्तव्य—( दसवें अध्यायमें )—संकीर्ण ( वर्णसङ्कर ) जातियोंकी उत्पत्ति, आपत्तिकालके धर्म। ( ग्यारहवें अध्यायमें )—चारों वर्णोंकी प्रायश्चित्त-विधि।

संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसंभवम् ।
निःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् ॥११७॥

( बारहवें अध्यायमें )—कर्म्मसे उत्पन्न तीन प्रकारकी ( उत्तम, मध्यम और अधम ) देहप्राप्ति, मुक्ति-साधन और कर्मोंके गुण तथा दोषकी परीक्षा।

देशधर्माञ्जातिधर्मान्कुलधर्मांश्च शाश्वतान् ।
पाषण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ॥११८॥

देशधर्म, जातिधर्म और कुलधर्म तथा पाखण्डियोंके पाखण्डधर्म मनुजीने इस शास्त्रमें कहे हैं।

यथेदमुक्तवाञ्छास्त्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया ।
तथेदं यूयमप्यद्य मत्सकाशान्निबोधत ॥११९॥

पूर्वकालमें मेरे पूछनेपर मनुजीने जिस प्रकार इस शास्त्रको कहा, आज आप लोग भी उसी प्रकार मुझसे यह शास्त्र सुनिये।

* प्रथम अध्याय समाप्त *

# अध्याय २

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥१॥

रागद्वेषसे रहित धार्मिक वेदविद्वोंने जिस धर्मका नित्य सेवन किया है और जिसे हृदयसे अच्छी तरह जाना है, वह धर्म श्रवण कीजिये ।

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥२॥

किसी फलकी कामना करना प्रशस्त न होनेपर भी इस संसारमें कामनाका त्याग नहीं दिखायी देता । वेदोंका ज्ञान प्राप्त करना और वैदिक कर्म करना भी काम्य ही है ( अर्थात् फलेच्छासे युक्त है )।

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः ।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पदाः स्मृताः ॥३॥

कामनाका मूल संकल्प है, संकल्पसे ही यज्ञ होते हैं । व्रत, यमनियमादि सब धर्म भी संकल्पमूलक कहे गये हैं ।

अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥४॥

इस संसारमें कामना किये बिना किसीका कोई कर्म होता नहीं देखा जाता, क्योंकि जो कोई जो कुछ भी करता है वह सब इच्छासे ही होता है ।

तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छत्यमरलोकताम् ।
यथा संकल्पितांश्चेह सर्वान्कामान्समश्नुते ॥५॥

( इसलिये ) उन शास्त्रोक्त कर्मोंमें सम्यक् प्रकारसे लगा हुआ

मनुष्य अमरलोकको प्राप्त होता है और इस लोकमें उसके सब संकल्प सफल होते हैं ।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥६॥

सम्पूर्ण वेद तथा उन वेदोंके जाननेवाले ( मनु आदि ) की स्मृति और शील, उनके आचार तथा वैकल्पिक विषयमें मनस्तुष्टि ये सभी धर्मके मूल हैं ( अर्थात् धर्ममें प्रमाण हैं ) ।

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥७॥

जिसका जो धर्म मनुजीने कहा है, वह सब वेदोंमें बताया हुआ है, कारण मनुजी सर्वज्ञ हैं ।

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत वै ॥८॥

ज्ञानरूपी नेत्रोंसे इन सबको अच्छी तरह देख वेदको प्रामाणिक मानकर विद्वान् अपने धर्ममें स्थित रहे ।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥९॥

जो मनुष्य वेद और स्मृति ( धर्मशास्त्र ) में कहे गये धर्मका आचरण करता है, वह इस लोकमें यश और परलोकमें परम सुख पाता है ।

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥१०॥

श्रुतिको वेद और स्मृतिको धर्मशास्त्र जानिये । ये दोनों सभी विषयोंमें निर्विवाद हैं (अर्थात् उनपर तर्क करनेका काम नहीं); क्योंकि इन्हीं दोनोंसे सम्पूर्ण धर्म प्रकट हुआ है ।

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥११॥

जो द्विज तर्कके आश्रयसे धर्मके मूल वेद और स्मृतिका अवमान करता है, वह शिष्ट मण्डलीमें बैठने योग्य नहीं; वेदनिन्दक होनेसे वह नास्तिक है।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥१२॥

वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मप्रियता येही साक्षात् धर्मके चार प्रकारके लक्षण कहे गये हैं।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥१३॥

जो लोग अर्थ और काममें आसक्त नहीं हैं, उनके लिये यह धर्मज्ञानका उपदेश है। धर्मकी जिज्ञासा करनेवालोंको वेद ही सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है।

श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ ।
उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः ॥१४॥

जहां दो श्रुतियोंमें एकवाक्यता न हो, वहां दोनों ही धर्म मान लिये गये हैं। विद्वानोंने भी इन दोनोंको स्पष्टरूपसे धर्म कहा है।

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥१५॥



(उदाहरणार्थ—) सूर्य्योदय होनेपर, सूर्य्योदय होनेके पूर्व और अध्युषित (अरुणोदय) कालमें यज्ञीय होम करना चाहिये, ये तीनों ही श्रुतिवचन हैं। (अर्थात् तीनों ही धर्म हैं और विकल्पसे मान्य हैं)।

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ।
तस्य शास्त्रेऽधिकारेऽस्मिञ्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥१६॥

गर्भसे मरणतक सब अनुष्ठान जिन (वर्णों) को मन्त्रोंद्वारा करनेके लिए कहा गया है, उन्हींको इस शास्त्रके अध्ययनका अधिकार है, दूसरेको नहीं ।

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥१७॥

सरस्वती और दृषद्वती, इन दो देवनदियोंके बीचमें जो देश है उस देवनिर्मित देशको ब्रह्मावर्त कहते हैं ।

तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥१८॥

उस देशमें चारों वर्णों और इनके बीचवाली संकीर्ण जातियोंका जो आचार परम्परासे चला आता है वह सदाचार कहलाता है ।

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ॥१९॥

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पाञ्चाल और शौरसेनिक (मथुरा) यह ब्रह्मर्षि देश ब्रह्मावर्तसे कुछ न्यून है ।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥२०॥

इन (कुरुक्षेत्र आदि) देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे संसारके सब मनुष्य अपना-अपना चरित्र (आचार) सीखें ।

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥

हिमालय और बिन्ध्या पर्वतके बीचमें, ब्रह्मावर्तसे पूर्व ओर और प्रयागसे पश्चिम ओर जो देश है वह मध्यदेश कहलाता है ।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥२२॥

पूर्व समुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्रतक दोनों पर्वतों ( हिमालय और विन्ध्याचल ) के मध्यवर्ती देशको विद्वद्गण आर्यावर्त कहते हैं ।

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥२३॥

कृष्णसार ( काले रंगका ) मृग जहाँ स्वभावसे ही रहता हो, वह देश यज्ञानुष्ठानके योग्य जानना, इससे भिन्न म्लेच्छ देश है ।

एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः ।
शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्शितः ॥२४॥

इन देशोंमें द्विजगण प्रयत्नपूर्वक रहें, किन्तु जीविका न मिलनेसे दुःखी शूद्र रोजगारके लिये जिस देशमें चाहे निवास करे ।

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता ।
संभवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत ॥२५॥

( यहांतक ) संक्षेपमें धर्मके मूल और जगत्की उत्पत्तिका वर्णन हुआ । अब वर्णधर्म सुनिये ।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥२६॥

वैदिक पुण्यकर्मोंद्वारा द्विजातियोंका गर्भाधानादि शारीरिक संस्कार करना चाहिये । इससे लोक-परलोकमें पाप-क्षय होता है ।

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥२७॥

गर्भाधानादिके हवनसे तथा जातकर्म, मुण्डन और उपनयनादि संस्कारोंसे द्विजोंके बीज और गर्भका दोष दूर हो जाता है ।

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥२८॥

वेदाध्ययन, व्रत, होम, त्रैविद्य, देवपितृतर्पण, पुत्रोत्पादन, महायज्ञ और यज्ञोंके द्वारा यह देह मुक्तिसाधनयोग्य बनायी जा सकती है ।

प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥२९॥

पुरुषका जातकर्म नालच्छेदनके पहले ही किया जाता है और उस सद्यः शिशुको सुवर्ण, मधु और घीका प्राशन वैदिक मन्त्रसे कराना चाहिये ।

नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत् ।
पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥३०॥

उस जातकका दसवें, ( ग्यारहवें ) या बारहवें दिन नामकरण कराना चाहिये । इन दिनोंमें किसी कारणसे न हो सके तो किसी पुण्य तिथिमें या शुभ मुहूर्त या गुणयुक्त नक्षत्रमें नामकरण करावे ।

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥३१॥

ब्राह्मणका नाम मंगलवाचक, क्षत्रियका बलवाचक, वैश्यका धनयुक्त और शूद्रका निन्दायुक्त चाहिये ।

शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥३२॥

ब्राह्मणका नाम शर्म्मापद युक्त ( यथा विष्णुशर्मा ) क्षत्रियका रक्षायुक्त ( यथा रणधीर वर्मा, बलदेव सिंह* ) वैश्यका पुष्टियुक्त

---

*सिंहसे वनकी रक्षा होती है, इसीसे प्रायः क्षत्रियोंका नाम सिंहान्त रखा जाता है ।

(यथा धनराज गुप्त†) और शूद्रका दासत्व-सूचक ( यथा निर्धनदास ) नाम रखना चाहिये ।

स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ।
मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् ॥३३॥

लड़कियोंका नाम सुखसे उच्चारण करनेयोग्य, सरल सुन्दर, स्पष्ट अर्थयुक्त, शुभवाचक, आशीर्वाद-सूचक और जिसका अन्तिम अक्षर दीर्घ हो, रखना चाहिये ( यथा कमला देवी ) ।

चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले ॥३४॥

चौथे मासमें बालकको घरसे बाहर लाना चाहिये । छठे मासमें अन्नप्राशन कराना चाहिये अथवा अपने कुलके अनुसार जो इष्ट मङ्गल हो वही करना उचित है ।

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ।
प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥३५॥

सब द्विजातियोंका मुण्डनकर्म प्रथम या तृतीय वर्षमें धर्मनिमित्त करना चाहिये, ऐसी श्रुति है ।

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥३६॥

ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भसे आठवें वर्षमें, क्षत्रियका गर्भसे ग्यारहवें और वैश्यका गर्भसे बारहवें वर्षमें करे ।

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥३७॥

---

† गुप्तका अर्थ है रक्षित। बिना पुष्टिके कोई रक्षित नहीं रह सकता। इसीसे प्रायः वैश्य अपना नाम गुप्तान्त रखने लगे ।

ब्रह्मतेजकी कामना करनेवाले ब्राह्मणका गर्भसे पांचवें वर्षमें, बलाभिलाषी क्षत्रियका गर्भसे छठे वर्षमें और धनाभिलाषी वैश्यका गर्भसे आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करना चाहिये ।

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥३८॥

ब्राह्मणको सोलह वर्षतक, क्षत्रियको २२ वर्षतक और वैश्यको २४ वर्षतक सावित्रीका अतिक्रमण नहीं होता । इस अवस्थातक उनका यज्ञोपवीत हो सकता है ।

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥३९॥

यथासमय संस्कार न होनेके कारण उक्त कालके अनन्तर ये तीनों ( ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ) यज्ञोपवीतरहित होकर सत्समाजमें निन्दित होते हैं तथा व्रात्य कहलाते हैं ।

नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मान्यौनांश्च संबन्धानाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥४०॥

इन अपवित्र व्रात्योंके साथ ब्राह्मण आपत्तिकालमें भी कभी अध्यापन तथा विवाहादि-सम्बन्ध न करे ।

कार्ष्णरौरवबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः ।
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च ॥४१॥

ब्रह्मचारियोंको चाहिये कि कृष्णमृग या रुरुसंज्ञक मृग या बकरेका चमड़ा उत्तरीयकी जगह धारण करे और सन, तिसिपट तथा ऊनके बुने वस्त्र पहने । [ ब्राह्मण ब्रह्मचारीके लिये टाट, क्षत्रियके लिये क्षौम ( तीसीके सनका बुना वस्त्र ), वैश्यके लिये ऊनी वस्त्र प्रशस्त है ] ।

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥४२॥

ब्राह्मण ब्रह्मचारीकी मेखला मूंजकी होनी चाहिये जो तीन गुन-वाली और चिकनी हो। क्षत्रियकी मेखला मूर्वाकी बनी प्रत्यंचा, और वैश्यकी मेखला सनकी बनी डोरीकी होनी चाहिये।

मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः।
त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥४३॥

मूंज न मिलनेपर कुश, डाभी आदिकी मेखला तीन गुनकी बनाकर उसमें एक या तीन या पांच गांठ दे।

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्।
शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥४४॥

ब्राह्मणका जनेऊ कपासके सूतका, क्षत्रियका सनके सूतका और वैश्यका भेड़के ऊनी सूतका होना चाहिये। यह तिहरा करके दाहिनी ओरसे बटा हुआ होना चाहिये।

ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ।
पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥४५॥

ब्राह्मण बेल या ढाकका, क्षत्रिय बड़ या खैरका, वैश्य पीलू वृक्ष या गूलरका दण्ड धर्मनिमित्त धारण करे।

केशांतिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः।
ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥४६॥

ब्राह्मणके दण्डका प्रमाण केशतक, क्षत्रियका ललाट और वैश्यका नासिकातक होना चाहिये।

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः।
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनग्निदूषिताः ॥४७॥

वे सब दण्ड सीधे, छिद्रादिरहित और देखनेमें सुन्दर हों, जो देखकर किसीको बुरा न लगे, जो त्वचायुक्त हों और जो अग्नि-दूषित न हों।

प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ।
प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥४८॥

उस दण्डको हाथमें ले सूर्यके सामने मुंहकर अग्निकी प्रदक्षिणा करके विधिपूर्वक भिक्षा मांगे ।

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ।
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥४९॥

( भिक्षा मांगते समय ) उपनीत ब्राह्मण वाक्यमें पहले "भवत्" शब्दका प्रयोग करे । क्षत्रिय मध्यमें और वैश्य अन्तमें प्रयोग करे । ( अर्थात् ब्राह्मण "भवति भिक्षां देहि", क्षत्रिय "भिक्षां भवति देहि" और वैश्य "भिक्षां देहि भवति" ऐसा कहकर भिक्षा मांगे ।

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ॥५०॥

ब्रह्मचारी सर्वप्रथम मातासे या बहिनसे या अपनी मौसीसे या किसी ऐसी स्त्रीसे जो अपमानित न करे, भिक्षा मांगे ।

समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदन्नममायया ।
निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥५१॥

जो कुछ अन्न भिक्षामें मिले वह लाकर निष्कपट भावसे गुरुके आगे रख दे और उनकी आज्ञासे आचमन कर पवित्रतापूर्वक पूर्व ओर मुंह करके भोजन करे ।

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः ॥५२॥

पूर्वकी ओर मुख करके भोजन करनेसे आयु, दक्षिण ओर मुंह करके भोजन करनेसे यश, पश्चिम ओर मुंह करके भोजन करनेसे लक्ष्मी और उत्तर ओर मुंह करके खानेसे सत्यका फल प्राप्त होता है ।

उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः।
भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि च संस्पृशेत् ॥५३॥

द्विज ( ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ) प्रतिदिन आचमन करके स्वस्थ चित्तसे भोजन करे, भोजन करके भलीभांति आचमन-कुल्ली करे और छिद्रों ( आंख, कान, नाक ) को जलसे स्पर्श करे।

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥५४॥

भोजनको नित्य आदरकी दृष्टिसे देखे और अन्नकी निन्दा न करते हुए प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे तथा उसे देख सब प्रकार उसका अभिनन्दन कर हर्ष प्रकट करे।

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥५५॥

इस प्रकार आदर किया हुआ अन्न सदा बल और तेजको बढ़ाता है। ऐसा आदर न करके जो अन्न खाया जाता है वह बल और वीर्यका नाश करता है।

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
नचैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥५६॥

अपना उच्छिष्ट (जूठ) न किसीको दे और न किसीका जूठ आप खाय। दिनमें एक बार भोजन कर सन्ध्याके पूर्व फिर दूसरी बार भोजन न करे। प्रमाणसे अधिक न खाय और जूठे मुंह कहीं न जाय।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥५७॥

अति भोजन आरोग्यके लिये हानिकर है, आयुको क्षीण करता है,

स्वर्गप्राप्ति और पुण्यमें बाधा डालता है, लोगोंमें उसकी निन्दा होती है, इसलिये अति भोजन न करना चाहिये ।

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ।
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥५८॥

ब्राह्मणको सदा ब्राह्मतीर्थसे आचमन करना चाहिये । प्रजापति या दैवतीर्थसे भी आचमन कर सकते हैं । पर पित्र्यतीर्थसे कभी आचमन न करना चाहिये ।

अंगुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ।
कायमंगुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥५९॥

अंगूठेके मूलके नीचे ब्राह्मतीर्थ, छिगनीके मूलमें प्रजापति तीर्थ और उंगलियोंके अग्रभागमें दैवतीर्थ तथा अंगूठे और प्रदेशिनीके बीचमें पित्र्यतीर्थ कहा है ।

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एव च ॥६०॥

पहले तीन बार जलसे आचमन करे, तदनन्तर दो बार मुंह धोवे, फिर जलसे आंख, कान, नाक, हृदय और मस्तकका स्पर्श करे ।

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ।
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः ॥६१॥

पवित्रताकी इच्छा रखनेवाला धार्मिक पुरुष एकान्तमें पूर्व या उत्तर ओर मुंह करके बैठकर ठंडे फेनरहित जलसे नित्य विधिपूर्वक आचमन करे ।

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः ।
वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥६२॥

आचमनका जल हृदयतक पहुंचनेसे ब्राह्मण शुद्ध होता है,

कण्ठतक पहुंचनेसे क्षत्रिय शुद्ध होता है, मुंहमें पड़नेसे वैश्य शुद्ध होता है। पर शूद्र वह जल होंठोंमें लगने मात्रसे ही शुद्ध हो जाता है।

उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः ।
सव्ये प्राचीनआवीती निवीती कण्ठसज्जने ॥६३॥

यज्ञोपवीत जब दाहिने हाथके नीचे होता है (यानी बायें कन्धेपर) तब द्विज उपवीती कहलाता है अर्थात् बायें कंधेसे दाहिनी बांहके नीचेतक जनेऊ धारण करनेका नाम सव्य है। इसके विपरीतको ( अपसव्य वा ) प्राचीनावीती कहते हैं । गलेमें जनेऊ लटकते रहनेका नाम निवीती है।

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ।
अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥६४॥

मेखला, मृगछाला, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु इनमेंसे कोई वस्तु टूट जाय तो जलमें उसका विसर्जन करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक नवीन धारण करना चाहिये।

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥६५॥

ब्राह्मणका केशान्तकर्म सोलहवें वर्षमें, क्षत्रियका बाईसवें वर्षमें और वैश्यका चौबीसवें वर्षमें होना चाहिये ।

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥६६॥

शरीरके विशुद्ध्यर्थ स्त्रियोंके ये सब कर्म सम्पूर्णरूपसे यथासमय यथाक्रम बिना मन्त्रोच्चारणके करने चाहिये ।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥६७॥

स्त्रियोंका वैदिक संस्कार ( यज्ञोपवीत ) विवाह-विधि ही है, ऐसा माना गया है । पतिकी सेवा ही उनका गुरुकुल-निवास और घरका काम-धन्धा ही उनका सायं-प्रातः होम है ।

एष प्रोक्तो द्विजातीनामौपनायनिको विधिः ।
उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोग निबोधत ॥६८॥

यहांतक द्विजातियोंके उपनयनकी विधि कही । यह पुण्यकारक विधि उनके द्वितीय जन्मको प्रकट करती है । अब ( जिनका उपनयन हुआ ) उनका कर्मयोग सुनिये ।

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च ॥६९॥

गुरु शिष्यका उपनयन करके सबसे पहले उसे शौच, आचार, अग्निहोत्र और सन्ध्योपासन सिखावें ।

अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः ।
ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः ॥७०॥

अध्ययन करना चाहनेवाला शिष्य शुद्ध वस्त्र परिधान कर, यथाशास्त्र आचमन कर, उत्तर ओर मुंह करके, जितेंद्रिय होकर और ब्रह्मांजलि करके बैठे और ऐसे शिष्यको गुरु पाठ पढ़ावे ।

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ।
संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥७१॥

वेदाध्ययनके आदि और अन्तमें नित्य गुरुके दोनों पैरोंका स्पर्श करे । दोनों हाथ जोड़कर पढ़े । इसीका नाम ब्रह्मांजलि है ।

व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥७२॥

व्यत्यस्तपाणि अर्थात् उलटे हाथोंसे गुरुके पैर छूने चाहियें ; बायें

हाथसे बांया पैर और दाहिने हाथसे दाहिने पैरका स्पर्श करना चाहिये।

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ॥७३॥

गुरु नित्य आलस्यरहित हो निर्दिष्ट समयपर शिष्यको "पढ़ो" कहकर पढ़नेकी आज्ञा दे और पढ़ाना शेष होनेपर "बस करो" कहकर अध्यापन बंद करे।

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥७४॥

वेद पढ़नेके समय नित्य आदि और अन्तमें प्रणव ( ओंकार ) का उच्चारण करे। पाठके पहले और पीछे ओंकारका उच्चारण न करनेसे पहले पढ़ा हुआ पाठ भूल जाता है और आगेका पाठ याद नहीं होता।

प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओंकारमर्हति ॥७५॥

पूर्व ओर जिनके अग्र हैं ऐसे कुशोंके आसनपर बैठ, दोनों हाथोंमें पवित्रक पहनकर, तीन बार प्राणायाम करके इस प्रकार पवित्र होकर तब ओंकारका उच्चारण करना चाहिये।

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च ॥७६॥

ब्रह्माने अकार, उकार और मकार इन प्रणवके तीन अवयवोंको तथा भूः भुवः स्वः इन तीन व्याहृतियोंको तीन वेदोंसे निकाला।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥७७॥

परमेष्ठी प्रजापतिने तीनों वेदोंसे "तत्" इस पदके साथ आरंभ होनेवाली सावित्री ऋचाका एक एक पद निकाला।

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥७८॥

वेद जाननेवाला ब्राह्मण प्रणव और व्याहृतिपूर्वक इस सावित्री मंत्रको दोनों सांझ जप करनेसे सम्पूर्ण वेदपाठ करनेका पुण्य प्राप्त करता है।

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः ।
महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥७९॥

द्विज इन तीनों ( प्रणव, व्याहृति और सावित्री मंत्र ) को बाहर ( निर्जन स्थान) में एकाग्र मनसे एक हजार नित्य नियमपूर्वक जप करे तो एक महीनेमें बड़े भारी पापसे छूट जाता है; जैसे सांप कंचुलिसे विमुक्त होता है।

एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया ।
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥८०॥

जो इस मंत्रको नहीं जपता और समयपर अपना होमादि कर्म नहीं करता वह द्विज ( ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ) साधुमंडलीमें निन्द्य समझा जाता है।

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥८१॥

ओंकारपूर्वक तीनों अव्यय महाव्याहृति (भूः भुवः स्वः) और त्रिपदा गायत्रीको वेदका मुख समझिये।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥८२॥

जो आलस्यरहित हो तीन वर्ष तक प्रतिदिन प्रणव व्याहृतिपूर्वक सावित्री मंत्रको जपता है वह वायुकी भांति यथेच्छगामी और आकाशकी मूर्ति धारणकर परब्रह्ममें मिल जाता है।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥८३॥

एकाक्षर (ॐ) परब्रह्म है। प्राणायाम परम तप है। सावित्री (गायत्री) मन्त्रसे बढ़कर कोई मंत्र नहीं है और मौनसे सत्यभाषण श्रेष्ठ है।

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोतियजतिक्रियाः ।
अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥८४॥

देवविहित हवन और यजनक्रिया और उनके फल नष्ट हो जाते हैं, परन्तु यह ओंकार प्रजापति ब्रह्मरूप होनेके कारण कभी नष्ट नहीं होता।

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥८५॥

विधियज्ञोंसे जपयज्ञ दस गुना बड़ा है। उपांशु जप सौगुना और मानस जप हजार गुना बड़ा है। ( जिस जपमें होंठ और जीभ संचालित हों पर कोई सुन न सके उसे उपांशु कहते हैं। मानस जपमें होंठ और जीभके हिलनेका भी कुछ काम नहीं। )

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥८६॥

विधियज्ञयुक्त जो चार पाकयज्ञ ( पितृकर्म, होम, बलि वैश्वदेव ) हैं ;वे सब जपयज्ञके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हैं।

जप्येनैव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥८७॥

ब्राह्मण जप करनेसे ही सब सिद्धिको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। वह और यज्ञादि कर्म करे या न करे, ब्राह्मण इतनेहीसे मैत्र कहलाता है।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥८८॥

विद्वानको चाहिये कि बुद्धिका अपहरण करनेवाले विषयोंमें विचरती हुई इन्द्रियोंको रोकनेका प्रयत्न करे; जैसे सारथी घोड़ोंको रोकता है।

एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः।
तानि सम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥८९॥

पूर्व पण्डितोंने जो एकादश इन्द्रियां कही हैं उनके नाम और कर्म सम्यक् प्रकारसे क्रमपूर्वक कहता हूं।

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता ॥९०॥

कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, और पांचवीं नाक तथा गुदा, लिङ्ग, हाथ, पैर और दसवां मुख।

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते ॥९१॥

इनमें कान आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और गुदा आदि पांच कर्मेन्द्रिय हैं।

एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्।
यस्मिञ्जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥९२॥

ग्यारहवां मन है जो अपने गुणसे उभयात्मक माना गया है अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनोंका संचालक है जिसको जीतनेसे ये दोनों इंद्रियगण वशमें आ जाते हैं।

इंद्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥९३॥

इंद्रियोंके विषयासक्त होनेसे मनुष्य निःसन्देह दोषको प्राप्त होता है और उन्हींको रोककर परमार्थ-सिद्धि भी लाभ करता है।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥९४॥

इच्छाओंको भोगनेसे इच्छा कभी तृप्ति नहीं होती; किन्तु घी डालनेसे जिस तरह आग और भी भड़क उठती है उसी तरह इच्छा और भी बढ़ती जाती है।

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत् ।
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥९५॥

जो इन सब कामोंको भोग करता है और जो इन सबको केवल त्याग देता है, इन दोनोंमें त्यागनेवाला ही श्रेष्ठ है, क्योंकि सब भोग प्राप्त करनेकी अपेक्षा उनका परित्याग करना अच्छा है।

न तथैतानि शक्यन्ते संनियन्तुमसेवया ।
विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥९६॥

विषयोंमें लगी हुई इन्द्रियां जैसे ज्ञानके द्वारा सब समयमें रोकी जा सकती हैं,वैसे उनका सेवन न करने मात्रसे वे काबूमें नहीं आ सकतीं।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥९७॥

दुष्टात्मा ( विषयभोगाभिभूत ) के वेदाध्ययन, दान, यज्ञ, नियम, और तप, ये कदापि फलसिद्धिको प्राप्त नहीं होते।

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥९८॥

जो मनुष्य सुनकर, छूकर, देखकर, खाकर और सूंघकर न प्रसन्न होता है, न उदास, उसीको जितेन्द्रिय कहते हैं।

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम् ॥९९॥

सब इन्द्रियोंमें यदि एक भी इन्द्रिय बिगड़ चले तो उससे इस मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, जैसे बर्तनमें एक भी छेद रहनेसे उसका जल निकल जाता है।

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥१००॥

इंद्रिय—समूहको अपने वशमें करके और योगबलसे मनको रोककर शरीरको कष्ट न देते हुए उचित रीतिसे सब पुरुषार्थोंका साधन करे।

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥१०१॥

प्रातःसन्ध्यामें पूर्वाभिमुख खड़े होकर जबतक सूर्यके दर्शन न हों, गायत्रीमन्त्र जपे। सायं-संध्या जबतक तारे दिखायी न दें तब-तक पश्चिम मुंह बैठकर जप करे।

पूर्वां संध्यां जपंतिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥१०२॥

प्रातःकालकी संध्याके समय खड़े होकर गायत्री जपनेवाला पुरुष रातके पापको दूर करता है। उसी तरह सायं-संध्याके समय बैठकर जप करनेवाला दिनका किया हुआ पाप नष्ट करता है।

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥१०३॥

जो प्रातः-संध्या और सायं-सन्ध्या नहीं करता, उसे सभी द्विजो-चित कर्मोंसे शूद्रकी भांति बाहर कर देना चाहिये।

अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः ॥१०४॥

निर्जन वनमें जलके समीप जाकर नित्यक्रिया कर चुकनेपर नियत चित्तसे गायत्रीमन्त्र जपे।

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥१०५॥

वेदका अङ्ग (व्याकरणादि) नित्यका वेदपाठ, और हवनमन्त्र इनमें अनध्यायका अनुरोध न करे अर्थात् अनध्यायमें भी ये कर्म करे।

नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम्।
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥१०६॥

नित्य कर्म ( जपयज्ञ ) में अनध्याय नहीं लिया जाता; क्योंकि वह ब्रह्मसत्र कहाता है। इस सत्रमें ( सतत होनेवाले यज्ञमें ) वेदाध्ययन ही आहुति है और अनध्यायमें भी होनेवाला वेदघोष ही पुण्य वषट्कार है।

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु ॥१०७॥

जो पवित्र होकर संयत चित्तसे एक वर्षतक विधिपूर्वक वेदाध्ययन करता है उसका वह अध्ययन दूध, दही, घी और मधु देता है ( देव-पितरोंको तृप्त करता है।)

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधः शय्यां गुरोर्हितम्।
आ समावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः ॥१०८॥

उपनीत द्विज सांझ-सवेरे समिधाओंको लाकर होम करना, भिक्षा

मांगना, गुरुकी सेवा करना और पृथ्वीपर सोना समावर्तनतक (अर्थात् वेदाध्ययनकी समाप्तिपर्यंत ) करे।

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः ।
आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्या दश धर्मतः॥१०९॥

आचार्यका पुत्र, सेवा करनेवाला, ज्ञानवान, धार्मिक, पवित्र, आप्त ( इष्टबन्धु ) सामर्थ्यवान् , धन देनेवाला, सच्चरित्र और आत्मीय, ये दश धर्मपूर्वक वेद पढ़ानेयोग्य हैं।

नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥११०॥

बुद्धिमान् पुरुष जानते हुए भी बिना पूछे किसीसे कुछ न कहे और अन्यायसे पूछनेवालेको भी कुछ न बतावे। ऐसा भाव दिखावे जैसे कोई जड़ पदार्थ हो।

अधर्मेण च यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥१११॥

अधर्मसे जो बोलता है या अधर्मसे जो प्रश्न करता है इन दोनोंमें जो मर्यादा तोड़नेवाला होता है वह मरता है या द्वेषको प्राप्त होता है।

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥११२॥

जहाँ धर्म न हो, धन न हो और न वैसी सेवा ही हो, वहाँ विद्याका उपदेश नहीं करना चाहिये; क्योंकि ऐसे स्थलमें विद्याका पढ़ाना ऊसर खेतमें अच्छे बीज बोनेके समान निष्फल है।

विद्ययैव समं कामं कर्तव्यं ब्रह्मवादिना ।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् ॥११३॥

वेदाध्यापक अपनी विद्याके साथ भले ही मर जाय, पर घोर आपत्ति उपस्थित होनेपर भी इस विद्याको ऊसरमें न बोये अर्थात् अपात्रको न पढ़ावे।

विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिष्टेऽस्मि रक्ष माम्।
असूयकाय मां मादास्तथा स्यां वीर्यवत्तमा ॥११४॥

विद्याकी अधिष्ठात्री ( सरस्वती ) देवीने आकर अध्यापक ब्राह्मण-से कहा, "मैं तुम्हारी निधि हूं, मेरी रक्षा करो। वेदनिन्दकोंके हाथ मुझे मत दो, इससे मैं पूर्ण वीर्ययुक्त हूंगी।

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने ॥११५॥

जिस शिष्यको पवित्र, संयतेन्द्रिय और ब्रह्मचारी समझो, उस प्रमादरहित विद्यानिधि-रक्षक ब्राह्मणको मुझे दो।"

ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात्।
स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥११६॥

जो पुरुष दूसरे किसीको गुरुसे वेदका पाठ लेते हुए, गुरुकी आज्ञाके विना वेदार्थ सुन लेता है वह वेदकी चोरी करनेवाला पापी नरकगामी होता है।

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥११७॥

जिसके द्वारा जो लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता है, उसे वह सबके पहले प्रणाम करे।

सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥११८॥

भलीभांति अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला ब्राह्मण केवल

गायत्रीमन्त्र जानता हो तो वह श्रेष्ठ है, परन्तु जो सर्वभक्षी, सब कुछ बेचनेवाला, अजितेन्द्रिय ब्राह्मण तीनों वेदोंका जाननेवाला भी हो तो वह श्रेष्ठ नहीं है।

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत् ।
शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥११९॥

गुरुजन जिस शय्या या आसनपर बैठे हों उसपर न बैठना चाहिये। आप शय्या या आसनपर बैठा हो तो झट उठकर उन्हें प्रणाम करे।

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥१२०॥

बड़ेके आनेपर छोटेके प्राण ऊपरको उच्छ्वसित हो उठते हैं, अतः उठकर खड़े होने और प्रणाम करनेसे वे प्राण फिर अपने ठिकानेपर आ जाते हैं।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥१२१॥

नित्य बड़ोंकी सेवा करनेवाले अभिवादनशील पुरुषकी आयु, विद्या, यश, और बल—ये चारों बढ़ते हैं।

अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन् ।
असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत् ॥१२२॥

विप्रको चाहिये कि बड़ेको प्रणाम करके अपना नाम बताकर यह निवेदन करे कि मैं अमुक हूं।

नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते ।
तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियःसर्वास्तथैव च ॥१२३॥

इस प्रकार अभिवादन करनेमें जो शब्द कहे जाते हैं उनका अर्थ

यदि कोई वृद्ध जन नहीं जानते हैं तो उन्हें "मैं प्रणाम करता हूं" इतना ही कहकर बुद्धिमान प्रणाम करे। स्त्रियाँ भी ऐसा ही करें।

भोःशब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने ।
नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः ॥१२४॥

अभिवादनमें जो नाम लिया जाता है उसके अन्तमें "भोः" शब्द कहना चाहिये। जिनको प्रणाम किया जाता है उन्हींके नामका यह ( भोः ) स्वरूप है; ऐसा ऋषियोंने कहा है।

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरःप्लुतः ॥१२५॥

प्रणाम किया जानेपर "आयुष्मान् भव सौम्य" ( अर्थात् तुम चिरञ्जीवी हो ) ऐसा शिष्यके प्रति कहना चाहिये। इसके नामके अन्तमें अकार हो तो उसे प्लुत करके बोलना चाहिये।

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥१२६॥

जो ब्राह्मण अभिवादनके बदलेमें प्रत्यभिवादन करना नहीं जानता, विद्वान् उसे शूद्रतुल्य समझ उसका अभिवादन न करे।

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥१२७॥

भेंट होनेपर ब्राह्मणसे कुशल, क्षत्रियसे निरामय, वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्य पूछे।

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत् ।
भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥१२८॥

अपनेसे छोटा भी दीक्षित हो तो उसका नाम लेकर न पुकारे, धर्म

जाननेवाला भोः या भवान् शब्दका प्रयोग कर उसके साथ सादर संभाषण करे ।

परपत्नी तु या स्त्री स्यादसम्बन्धा च योनितः ।
तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च ॥१२९॥

जो परस्त्री हो और जिससे किसी प्रकारका सम्बन्ध न हो, उसे भवती ( आप ), सुभगे या भगिनी ( बहन ) कहकर संभाषण करे ।

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ।
असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥१३०॥

मामा, चाचा, श्वशुर, पुरोहित और अन्य जो सम्बन्धमें बड़ा हो, किन्तु उम्रमें अपनेसे छोटा हो, उसे उठकर इतना ही कहे कि "यह मैं हूं", परन्तु प्रणाम न करे ।

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा ।
संपूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्यया ॥१३१॥

मौसी, मामी, सास और फूफी ये गुरुपत्नीके समान होनेके कारण उन्हींके सदृश पूज्य हैं ।

भ्रातुर्भार्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि ।
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसंबन्धियोषितः ॥१३२॥

समान वर्णकी व्याही भौजाईको नित्य प्रणाम करना चाहिये । किन्तु नातेकी अन्य स्त्रियोंको परदेशसे आनेपर प्रणाम करे ।

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥१३३॥

फूफी, मौसी और अपनी बड़ी बहनके साथ माताके समान व्यवहार करे, किन्तु माताको इन सबोंमें बहुत बड़ी समझे ।

दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् ।
त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥१३४॥

गाँववालोंमें दस वर्षकी, कलाकुशलोंमें पांच वर्षकी और वेदाध्यायियोंमें तीन वर्षकी छुटाई-बड़ाई रहनेपर भी सख्यभाव रहता है । किन्तु सम्बन्धियोंमें थोड़े दिनकी छुटाई-बड़ाईका भी बड़े-छोटेका ख्याल रखना होता है ।

ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम् ।
पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥१३५॥

दस वर्षका ब्राह्मणका बालक और सौ वर्षका क्षत्रिय वृद्ध ये दोनों पिता-पुत्रके समान हैं । ब्राह्मणके लड़केको वह क्षत्रिय पिताके तुल्य समझे ।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥१३६॥

धन, बन्धु, वयस्, कर्म और विद्या यही पांच मान्यस्थान हैं । इनमें उत्तरोत्तर एकसे एक बड़ा है ।

पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च ।
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ॥१३७॥

( परन्तु ) तीनों वर्णोंमें जिस किसी पुरुषमें उपर्युक्त गुणोंमेंसे पूर्वोक्त गुण अधिक हों तो वह किसी उपर्युक्त गुणवालेसे भी अधिक मान्य होता है ( और इस तरह ) ९० वर्षके ऊपरका शूद्र भी संमान्य होता है ।

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ।
स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥१३८॥

रथारूढ़को, बहुत बूढ़ेको, रोगीको, बोझ ढोनेवालेको, स्त्रीको, स्नातक (समावर्तन जिसका हो गया हो) को, राजाको, और दूल्हेको रास्ता देना चाहिये । ( अर्थात् ये आते हों तो इनके लिये मार्ग छोड़ देना चाहिये । )

तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ ।
राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक् ॥१३९॥

ये सब यदि एक साथ हों तो उनमें स्नातक और राजा मान्य हैं। इन दोनोंमें राजासे विशेष मान्य स्नातक है।

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥१४०॥

जो ब्राह्मण शिष्यका उपनयन कर उसे कल्प (यज्ञविद्या) और रहस्य (उपनिषद्) के साथ वेद पढ़ाता है, वह आचार्य कहलाता है।

एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥१४१॥

जो ब्राह्मण वेदका एक भाग मन्त्र और वेदका अंग व्याकरण आदि वृत्तिके लिये पढ़ाता है, वह उपाध्याय कहलाता है।

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ।
संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥१४२॥

जो गर्भाधानादि कर्मोंको वेदविधिसे सम्पन्न करता है और अन्नसे उसका पोषण करता है, वह ब्राह्मण गुरु कहाता है।

अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते ॥१४३॥

जो ब्राह्मण जिसकी ओरसे वरण लेकर अग्न्याधान, पाकयज्ञ और अग्निष्टोम आदि यज्ञ करता है, वह उसका ऋत्विक् कहलाता है।

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन ॥१४४॥

जो ब्राह्मण शुद्धतापूर्वक दोनों कानोंको सत्यरूप वेदसे भर देता

है अर्थात् वेद सुनाता है, उसे मा-बापके समान जाने। कभी उससे द्रोह न करे।

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥१४५॥

उपाध्यायसे दस गुना आचार्य, आचार्यसे सौ गुना पिता, और पितासे हजार गुनी माता श्रेष्ठ है।

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥१४६॥

जन्म देनेवाला और आचार्य दोनों पिता हैं, इन दोनोंमें वेद पढ़ानेवाला आचार्य श्रेष्ठ है। क्योंकि ब्राह्मणका उपनयन-संस्कारसे जो ब्रह्मजन्म होता है, वह इहलोक और परलोकमें ब्रह्मफल-प्राप्तिसे नित्यत्वको प्राप्त होता है।

कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः।
संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥१४७॥

माता पिता परस्पर कामवश होकर जो जन्म देते हैं, जिससे बालक माताके पेटमें अंग-प्रत्यंग पाता है, यह उसका पशु आदि पिण्डजोंकी भांति साधारण जन्म है।

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा ॥१४८॥

वेदज्ञ आचार्य विधिपूर्वक सावित्री मन्त्रके द्वारा जो इसको फिर नया जन्म देते हैं, वही जन्म सत्य, अजर और अमर है।

अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः।
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया ॥१४९॥

उपाध्याय शास्त्रके द्वारा शिष्यका थोड़ा या बहुत उपकार करे तोभी इस उपकारके कारण शिष्य उसको गुरु माने।

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता ।
बालोऽपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः ॥१५०॥

वैदिक जन्मको उत्पन्न करनेवाला और स्वधर्मकी शिक्षा देनेवाला विप्रबटु बूढ़ेका भी धर्मतः पिता होता है ।

अध्यापयामास पितॄञ्शिशुरांगिरसः कविः ।
पुत्रका इतिहोवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥१५१॥

अंगिराके विद्वान् बालकने अपने चाचाओंको पढ़ाया और ज्ञानके द्वारा उन्हें शिष्यभावसे ग्रहण करके पुत्रक कहकर पुकारा ।

ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः ।
देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान् ॥१५२॥

इससे क्रुद्ध होकर उन्होंने देवताओंसे इसका अर्थ पूछा । देवताओंने मिलकर एक स्वरसे कहा कि बालकने जो तुमको पुत्रक शब्दसे पुकारा यह उचित ही है ।

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥१५३॥

अज्ञानी पुरुष ही बालक है और वेदमन्त्र देनेवाला पिता । कारण पूर्व मुनियोंने अज्ञको बालक और वेदोपदेशकको पिता कहा है ।

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥१५४॥

बहुत उम्र हो जाने या बाल पकने या बहुत धन परिजन होनेसे कोई बड़ा नहीं होता । हमलोगोंमें बड़ा वही है जिसने वेद-वेदांग पढ़ा है । ऋषियोंने धर्मकी ऐसी ही व्यवस्था की है ।

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥१५५॥

ब्राह्मणोंका ज्ञानसे, क्षत्रियोंका बलसे, वैश्योंका धन-धान्यसे और शूद्रोंका वयससे श्रेष्ठत्व जाना जाता है।

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥१५६॥

सिरके बाल पक जानेसे ही कोई बूढ़ा नहीं होता, युवा होकर भी जिसने वेद-वेदान्त पढ़े हैं, देवतागण उसीको वृद्ध मानते हैं।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥१५७॥

जैसा काठका हाथी, चमड़े का हरिण, वैसा ही बिना पढ़ा ब्राह्मण है। ये तीनों केवल नामधारी हैं।

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥१५८॥

जैसे स्त्रियोंमें नपुंसक निष्फल है, जैसे गौओंमें गौ निष्फल होती है, जैसे मूर्खको दिया हुआ निष्फल है, वैसे ही वेदकी ऋचाओंको न जाननेवाला ब्राह्मण निष्फल है।

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोनुशासनम्।
वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥१५९॥

शिष्योंके कल्याणके लिये जो अनुशासन करना हो वह अहिंसा-युक्त होना चाहिये। धर्मकी इच्छा करनेवाले गुरु प्रीतिकर और नम्र वचनोंका प्रयोग करें।

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥१६०॥

जिसके मन और वचन शुद्ध हैं, सर्वदा सम्यक् प्रकारसे सुरक्षित हैं, वह वेदान्तके कहे समग्र फलोंको प्राप्त करता है।

नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ।
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यां तामुदीरयेत् ॥१६१॥

दुखी होनेपर भी किसीका जी न दुखावे, किसीके साथ द्रोहकी बुद्धि मनमें न रखे । ऐसा गर्हित वचन कभी न बोले जिससे दूसरेको उद्वेग प्राप्त हो ।

संमानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा ॥१६२॥

सम्मानसे ब्राह्मण नित्य विषकी भांति निर्पेक्ष रहे । अमृतके तुल्य अपमानकी सर्वदा इच्छा रक्खे ।

सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते ।
सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥१६३॥

अपमानित व्यक्ति सुखसे सोता है, सुखसे जागता है और सुखसे संसारमें विचरता है, अपमान करनेवाला नाशको प्राप्त होता है ।

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ।
गुरौ वसन्संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥१६४॥

इस रीतिसे संस्कृत होकर द्विज गुरुकुलमें निवास कर वेद-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये धीरे धीरे तपका संचय करे ।

तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः ।
वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥१६५॥

द्विजोंको विधिपूर्वक विशेष तपों और विविध प्रकारके व्रतोंके साथ उपनिषद्सहित सम्पूर्ण वेद हृदयंगम करना चाहिये ।

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥१६६॥

ब्राह्मण तप करता हुआ सदा वेदका ही अभ्यास करे; क्योंकि इस जगत्में ब्राह्मणके लिये परम तप वेदाभ्यास ही कहा गया है।

आ हैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः ।
यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥१६७

जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण पुष्पमाला पहनकर भी अपनी शक्तिके अनुसार नित्य वेदाध्ययन करता है, वह मानों नखोंके अग्र भागतक अर्थात् सम्पूर्ण शरीरव्यापी परम तप करता है।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१६८॥

जो ब्राह्मण वेद न पढ़कर अन्य शास्त्रोंमें श्रम करता है, वह इसी जीवनमें अपने वंशसहित शीघ्र शूद्रत्वको प्राप्त होता है।

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥१६९॥

प्रथम जन्म माताके गर्भसे, दूसरा जन्म यज्ञोपवीत होनेपर और तीसरा जन्म वेदकी प्रेरणासे यज्ञदीक्षाके समय होता है।

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥१७०॥

इन तीन प्रकारके जन्मोंमें यज्ञोपवीतसे चिह्नित जो इस ब्राह्मणका वैदिक जन्म है, इसमें इसकी माता सावित्री और पिता आचार्य कहा गया है।

वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ।
नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबन्धनात् ॥१७१॥

वेदकी शिक्षा देनेके कारण आचार्यको पिता कहा है; क्योंकि यज्ञोपवीतके पहले जन्मप्रद पिताके रहते भी वह कुछ भी वैदिक कर्म करनेका अधिकार नहीं रखता।

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ।
शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते ॥१७२॥

श्राद्धके वेदमन्त्रोंको छोड़ अनुपनीत ब्राह्मण वेदमन्त्रका उच्चारण न करे, क्योंकि जबतक वह वेदविधिसे यज्ञोपवीत धारण कर दूसरा जन्म नहीं पाता, तबतक वह शूद्रके बराबर रहता है।

कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ।
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥१७३॥

यज्ञोपवीत हो जानेपर इस ब्राह्मणवटुको व्रतका आदेश लेना चाहिये और क्रमसे विधिपूर्वक वेदग्रहण करना चाहिये।

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं या च मेखला ।
यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥१७४॥

जिस ब्रह्मचारीके लिये जो चर्म, जो सूत्र, जो मेखला, जो दण्ड और जो वस्त्र उपनयनमें विहित है, वही उसके लिए व्रतोंमें भी प्रशस्त है।

सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन् ।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः ॥१७५॥

ब्रह्मचारी गुरुके आश्रममें रहकर, इंद्रियोंको सम्यक् प्रकारसे रोककर अपनी तपोवृद्धिके लिये उपर्युक्त नियमोंका पालन करे।

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् ।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥१७६॥

नित्य स्नानकर पवित्र हो, देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे, उसके बाद देवताओंका पूजन और अग्न्याधान करे।

वर्जयेन्मधुमांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥१७७॥

मधु, मांस, सुगन्ध, माला, रस, स्त्री-सहवास, सब प्रकारके आसवादि ( सिरके ) और प्राणियोंकी हिंसा, ये सब ब्रह्मचारी त्याग दे।

अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम् ॥१७८॥

उबटन न लगावे, आंखोंमें काजल न दे, जूता न पहने, छाता न लगावे, काम, क्रोध और लोभ न करे। गाने, बजाने और नाचनेसे अलग रहे।

द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥१७९॥

जुआ, कलह, निन्दा, झूठ, स्त्रियोंकी ओर सकाम दृष्टिसे देखना, या उन्हें आलिङ्गन देना और दूसरेकी बुराई, ये सब ब्रह्मचारीके लिये त्याज्य हैं।

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥१८०॥

अकेला ही सर्वत्र सोवे, कभी वीर्यपात न करे। अपनी इच्छासे वीर्य गिरानेसे वह अपने व्रत ( ब्रह्मचर्य ) का नाश करता है।

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥१८१॥

ब्रह्मचारीका स्वप्नमें यदि अनिच्छासे वीर्यपात हो तो वह स्नान करके सूर्यकी अर्चना कर "पुनर्मां" इस ऋचाको तीन वार जपे।

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशान्।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥१८२॥

घड़ेमें पानी, फूल, गायका गोबर, मिट्टी और कुश आवश्यकतानुसार ले आवे और प्रति दिन भिक्षा भी मांग लावे।

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु।
ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥१८३॥

जो गृहस्थ अपने धर्म-कर्म्मका पालन करते हों, जो वेद और यज्ञोंसे खाली न हों, उनके घरसे ब्रह्मचारी यत्नपूर्वक प्रति दिन भिक्षा मांग लावे।

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु।
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥१८४॥

गुरुके कुलमें और अपने जातिभाई और बन्धुके घरमें भीख न मांगे, परन्तु दूसरेके घरसे यदि भिक्षा न मिले तो पहले पहलेका त्याग करे ( अर्थात् पहले बंधुके घर, उसके अभावमें मातृकुलसे भिक्षा मांगनी चाहिये, वह भी न हो तो गुरुके घरसे मांग लावे )।

सर्वं वापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसंभवे।
नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत् ॥१८५॥

यदि ये घर न हों तो ऐसे गांवमें भिक्षाके लिये मौन धारणकर चाहे जहां जाय परंतु पापियोंसे भिक्षा ग्रहण न करे।

दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायसि।
सायंप्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः ॥१८६॥

दूरसे समिध ( होमकी लकड़ी ) लाकर ऊपरमें ( या टाँड़पर ) रखे। प्रातःकाल और संध्यासमय उन लकड़ियोंसे आलस्यरहित होकर हवन करे।

अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्य च पावकम्।
अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥१८७॥

आरोग्य अवस्थामें यदि ब्रह्मचारी सात दिनोंतक भिक्षा न मांगे और अग्निमें समिध न डाले तो ( वह अपने व्रतसे भ्रष्ट होता है इसलिये ) अवकीर्णिव्रत करे।

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्व्रती ।
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥१८८॥

ब्रह्मचारीको नित्य भिक्षा करनी चाहिये, किसी एकका ही अन्न खाकर न रहना चाहिये । भिक्षापर गुजर करना उपवास करनेके बराबर है ।

व्रतवद्देवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथर्षिवत् ।
काममभ्यर्थितोऽश्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते ॥१८९॥

देवकर्ममें देवता प्रीत्यर्थ निमन्त्रित ब्रह्मचारी किसी एक ही गृहस्थके यहां भी मधुमांसादि त्यागकर और भोजन कर सकता है। पितृकर्ममें पितरोंके उद्देश्यसे निमन्त्रित ब्रह्मचारी ज्ञानी मुनिके समान इसी प्रकार अपने व्रतके अनुकूल यथेष्ट भोजन कर सकता है। इससे उसका व्रत लुप्त नहीं होता।

ब्राह्मणस्यैव कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः ।
राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्म विधीयते ॥१९०॥

पण्डितोंने यह ( एकान्त भोजन ) कर्म केवल ब्राह्मणके लिये कहा है, क्षत्रिय और वैश्यके लिये नहीं। ( अर्थात् श्राद्धादिमें निमंत्रित होकर भोजन करनेका अधिकार ब्राह्मणोंके अतिरिक्त क्षत्रिय वैश्योंका नहीं है ) ।

चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा ।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च ॥१९१॥

गुरुसे प्रेरित होनेपर अथवा प्रेरित न होनेपर भी नित्य वेदाध्ययन और आचार्यकी सेवामें यत्न करे ।

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१९२॥

शरीर, वचन, बुद्धि, इन्द्रिय और मन, सबको अच्छी तरह रोककर अञ्जलिबद्ध हो गुरुके मुंहकी ओर देखता हुआ शांतिपूर्वक खड़ा रहे।

नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः।

आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः॥१९३॥

अपना दाहिना हाथ बराबर उत्तरीयके बाहर निकाले रहे, और सदाचारयुक्त, जितेन्द्रिय होकर गुरुके सामने खड़ा रहे, जब वे बैठने-को कहें तब उनकी ओर मुख करके बैठे।

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ।

उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत्॥१९४॥

गुरुके समीप सर्वदा गुरुके भोजन वस्त्रादिसे हीन भोजन, वस्त्र और वेशका व्यवहार करे; उनके जागनेके पहले जाग उठे और उनके सोनेके बाद सोये।

प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत्।

नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्नो पराङ्मुखः॥१९५॥

लेटे लेटे, बैठे बैठे, भोजन करते हुए या मुंह फेरे खड़ा रहकर गुरुकी आज्ञा श्रवण करना या उनसे संभाषण करना, ऐसा कभी न करे।

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः।

प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः॥१९६॥

गुरु आसनपर बैठे हों तो स्वयं आसनपरसे उठकर, गुरु खड़े हों तो उनके सम्मुख जाकर, गुरु आते हों तो कुछ दूर उनके सम्मुख चलकर, गुरु चलते हों तो उनके पीछे दौड़कर उनकी आज्ञा सुननी चाहिये।

पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चांतिकम्।
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥१९७॥

गुरु मुंह फेरे हों तो उनके सम्मुख जाकर, दूरस्थ हों तो पास जाकर, सोये हों तो प्रणाम करके और समीप बैठे हों तो सिर झुका-कर उनकी बात सुने।

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥१९८॥

गुरुके समीप शिष्यकी शय्या और आसन सर्वदा नीचा रहना चाहिये। गुरुकी आंखोंके सामने चाहे जिस आसनपर चाहे जिस तरह न बैठना चाहिये।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम्।
न चैवास्यनुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥१९९॥

परोक्षमें भी उनका नाम एकहरा न ले। और उपहास-बुद्धिसे उनके चलने, बोलने या उनकी किसी शारीरिक चेष्टाकी नकल न करे।

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥२००॥

जहां गुरुका उपहास या निंदा होती हो वहां कान बन्द कर लेना चाहिये अथवा वहांसे उठ जाना चाहिये।

परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः।
परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥२०१॥

गुरुकी निन्दा सुननेसे शिष्य मरनेपर गधा, निन्दा करनेसे कुत्ता, उनकी सम्पत्तिका अनुचित भोग करनेसे कृमि और उनसे ईर्ष्या करनेसे कीड़ा होता है।

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः ।
यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत् ॥२०२॥

शिष्य दूरसे ( यानी स्वयं न करके दूसरेसे ) गुरुका पूजन न करावे । क्रोधके आवेशमें या स्त्रीके समीपमें रहते भी गुरुका पूजन न करे । शिष्य किसी सवारीपर हो और गुरुके दर्शन हों तो शिष्य सवारीपरसे उतरकर उन्हें प्रणाम करे ।

प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह ।
असंश्रवे चैव गुरोर्न किंचिदपि कीर्तयेत् ॥२०३॥

गुरुके साथ ऐसी जगहमें न बैठे जहां शिष्यकी ओरसे आती हुई हवा गुरुके शरीरमें लगे या गुरुकी तरफसे आनेवाली हवा शिष्यको स्पर्श करे । गुरु जिस समय न सुनते हों अथवा जो बात सुनना न चाहते हों उस समय या वह बात उनसे निवेदन न करनी चाहिये ।

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्रस्तरेषु कटेषु च ।
आसीत गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥२०४॥

बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी और ऊंटकी सवारीमें, कोठे, चटाई, पत्थरके चट्टान, चौकी और नावपर गुरुके साथ बैठ सकते हैं ।

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ।
न चानिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत् ॥२०५॥

आचार्यके आचार्य समीपमें हों तो उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये जैसा गुरुके साथ किया जाता है । गुरुका संकेत पाये बिना अपने गुरुजनोंको ( मातापितादिको ) प्रणाम न करना चाहिये ।

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु ।
प्रतिषेधत्सु चाधर्मान्हितं चोपदिशत्स्वपि ॥२०६॥

विद्यागुरुओंके साथ भी नित्य ऐसा ही व्यवहार करना उचित है। जो सम्बन्धमें अपनेसे बड़े हों, जो अधर्मसे रोकते हों और धर्मका उपदेश देते हों, उनके साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये।

श्रेयःसु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत्।
गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥२०७॥

श्रेष्ठजन, मान्य गुरुपुत्र, गुरुके बन्धुबान्धव इन्हें भी गुरुके सदृश मानकर वैसा व्यवहार करना चाहिये।

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि।
अध्यापयन्गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति ॥२०८॥

गुरुका पुत्र उम्रमें छोटा हो, समान हो, अथवा शिष्य भी हो तो यदि वह अध्यापनका अधिकारी है तो ( चाहे वह यज्ञ कर्ममें ऋत्विग् हो या न हो ) वह यज्ञकर्ममें गुरुके सदृश्य ही सम्मान्य है।

उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्ट भोजने।
न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥२०९॥

( परन्तु ) गुरुपुत्रके शरीरका मर्दन करना, उसे नहलाना, पैर धोना और उसका जूठन खाना यह न होना चाहिये।

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोषितः।
असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥२१०॥

गुरुपत्नी सजातीया हों तो वे गुरुके समान पूजनीया हैं। किन्तु जो पत्नी असवर्णा हों वे प्रत्युत्थान और अभिवादनसे सम्मान करने योग्य हैं।

अभ्यञ्जनं स्नापनं च गात्रोत्सादनमेव च।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥२११॥

तेल उबटन लगाना, स्नान कराना, देह दाबना और बाल संवारना ये सब कार्य गुरुपत्नीके न करें।

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः ।
पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥२१२॥

पूरे बीस वर्षका युवक शिष्य गुण-दोषको जानता हुआ, युवती गुरुपत्नीको पैर छूकर प्रणाम न करे।

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम् ।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥२१३॥

पुरुषोंको दूषित करना नारियोंका स्वभाव है। इसलिये ज्ञानी पुरुष युवती स्त्रियोंके सम्बन्धमें कभी असावधान नहीं होते।

अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः ।
प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामक्रोधवशानुगम् ॥२१४॥

प्रमदा स्त्री इस संसारमें मूर्खको या विद्वान पुरुषको, जो देहधर्म-वश काम क्रोधके वशीभूत है, कुमार्गमें ले जानेमें समर्थ होती है।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥२१५॥

मां, बहन या बेटीके साथ एकान्तस्थानमें एक आसनपर न बैठे, क्योंकि यह बलवान इन्द्रियोंका समूह विद्वान्‌को भी अपनी ओर खींच लेता है।

कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि ।
विधिवद्वन्दनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् ॥२१६॥

युवा शिष्य, युवती गुरुपत्नियोंको अपना नाम बताता हुआ दूरसे ही भूमिष्ठ होकर विधिपूर्वक प्रणाम करे।

विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् ।
गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥२१७॥

सत्पुरुषोंके धर्मका स्मरण करता हुआ शिष्य परदेशसे आकर

गुरुपत्नियोंके पैरोंके पास दोनों हाथोंसे धरती छूकर नित्य उनको प्रणाम करे ।

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥२१८॥

जैसे कुदालसे खोदते खोदते मनुष्य किसी दिन धरतीसे जल निकाल लेता है, वैसे ही गुरुसेवा करनेवाला शिष्य गुरुकी विद्याको किसी दिन पा जाता है ।

मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः ।
नैनं ग्रामेऽभिनिम्लोचेत्सूर्यो नाभ्युदियात्क्वचित् ॥२१९॥

ब्रह्मचारी, मूंड़ मुंड़ाये अथवा जटा रखाये हो अथवा शिखाकी ही जटा बनाये हो, पर इसके गांवमें रहते कभी सूर्योदय या सूर्य्यास्त न होना चाहिये । ( अर्थात् सूर्यास्त और सूर्योदयके पहले यह गांवसे बाहर जाकर अपना अग्निहोत्र आदि नित्यकर्म करे ) ।

त चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः ।
निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥२२०॥

यदि ब्रह्मचारी इच्छावश होकर सोया हुआ हो और सूर्योदय हो जाय तो वह दिनभर उपवासकर गायत्री मंत्र जपे और उसके न जानते हुए सूर्यास्त हो जाय तो वह दूसरे दिन जप और उपवास करे ।

सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः ।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ॥२२१॥

ब्रह्मचारीके सोये रहते यदि सूर्योदय और सूर्यास्त हो जाय तो प्रायश्चित्त किये बिना वह महापापका भागी होता है ।

आचम्य प्रयतो नित्यमुभे संध्ये समाहितः ।
शुचौ देशे जपञ्जप्यमुपासीत यथाविधि ॥२२२॥

नित्य दोनों सांझ सावधान हो संयमचित्तसे आचमन कर पवित्र स्थानमें गायत्रीमन्त्रका जप करता हुआ ब्रह्मचारी विधिपूर्वक सूर्यकी उपासना करे।

यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचित्समाचरेत्।
तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्य रमेन्मनः ॥२२३॥

यदि स्त्री अथवा शूद्र कोई शुभ कर्म करे तो ब्रह्मचारी भी होकर वह शुभ कर्म करे और शास्त्रसे अनिषिद्ध जिस किसी कर्ममें उसका मन लगे उसका भी अनुष्ठान वह कर सकता है।

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः ॥२२४॥

कुछ लोग धर्म और अर्थको, कुछ काम और अर्थको, कोई केवल धर्मको और कोई केवल अर्थको कल्याण मानते हैं। परन्तु सची बात यह है कि अर्थ, धर्म और काम, ये तीनों कल्याणकारक हैं।

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥२२५॥

आचार्य, पिता, माता और बड़े भाईका अपमान दुःखी होनेपर भी न करना चाहिये, विशेषकर ब्राह्मण तो कदापि इनका अपमान न करे।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः ॥२२६॥

आचार्य ब्रह्मकी, पिता ब्रह्माकी, माता पृथ्वीकी और सगा भाई आत्माकी ही मूर्ति है।

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥२२७॥

सन्तानोंकी उत्पत्तिमें मां-बापको जो क्लेश सहना पड़ता है; सौ वर्षोंमें भी वे उससे निस्तार नहीं पा सकते।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥२२८॥

उन दोनों ( माँ-बाप ) और आचार्यको सदा प्रसन्न रखना चाहिये। इन तीनोंके प्रसन्न रहनेपर सभी तप पूरे होते हैं।

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥२२९॥

इन तीनोंकी सेवा करना ही परम तप है। इनकी आज्ञा न पाने-पर अन्य धर्मका अनुष्ठान न करे।

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥२३०॥

वे ही तीनों लोक ( भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक ), वे ही तीनों आश्रम, वे ही तीनों वेद और वे ही तीनों अग्नि कहे गये हैं।

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः
गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी ॥२३१॥

पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणाग्नि और आचार्य आहवनीय अग्नि हैं। ये तीनों अग्नि अत्यन्त श्रेष्ठ हैं।

त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान्विजयेद्गृही।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥२३२॥

गृही, इन तीनोंमें प्रमादरहित होनेसे तीनों लोकोंको जीत लेता है और अपना तेजस्वी शरीर लेकर स्वर्गलोकमें देवताकी भाँति सुखपूर्वक रहता है।

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥२३३॥

मातृभक्तिसे इस लोक, पितृभक्तिसे मध्यलोक और गुरुसेवासे ब्रह्मलोकका सुख उपभोग करता है।

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥२३४॥

जिसके ये तीनों (माता, पिता और गुरु ) आदृत होते हैं, उसके सभी धर्म आदृत होते हैं। जिसके ये तीनों अपमानित होते हैं उसके सब कर्म विफल होते हैं।

यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ।
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥२३५॥

जबतक ये तीनों जीवित रहें, तबतक नित्य उनके सन्तोषप्रद कार्यमें तत्पर रह उनकी सेवा करे, किन्तु स्वतन्त्र होकर अन्य धर्मकी उपासना न करे।

तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् ।
तत्तन्निवेदयत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥२३६॥

उनकी अनुमतिसे जो कुछ मनसा, वाचा, कर्मणा पारलौकिक कर्म करे, वह उनकी सेवामें निवेदित कर दे।

त्रिष्वेतेष्वितिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ।
एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥२३७॥

पुरुषका इन तीनोंमें ही कर्तव्य-समापन हो जाता है। यही साक्षात् परमधर्म है और इससे पृथक् जो धर्म है वह उपधर्म कहा गया है।

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥२३८॥

श्रद्धावान् पुरुष नीचसे भी अच्छी विद्या ले ले, चाण्डालसे भी परम धर्म ( मोक्षोपाय ) और नीच कुलसे भी स्त्रीरत्न ग्रहण करे ।

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि कांचनम् ॥२३९॥

विषसे भी अमृत, लड़केसे भी अच्छी बात, शत्रुसे भी सदाचार और अपवित्र स्थानसे भी सुवर्ण ले लेना चाहिये ।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥२४०॥

स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शुद्धि, उत्तम वचन और विविध प्रकारकी शिल्पकला, ये सब जहाँ मिलें वहींसे उनका संग्रह करना चाहिये ।

अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते ।
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥२४१॥

आपत्कालमें अब्राह्मणसे भी पढ़नेका विधान है, परन्तु ऐसे गुरुका अनुगमन और सेवन तभीतक करे जबतक उससे पढ़े ।

नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यन्तिकं वसेत् ।
ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन्गतिमनुत्तमाम् ॥२४२॥

अब्राह्मण गुरुके यहाँ ब्राह्मण शिष्य अत्यन्त वास न करे । और परम गति चाहनेवाला, उस ब्राह्मणके पास भी न रहे, जो वेद और वेदांग न सिखाता हो ।

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोः कुले ।
युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् ॥२४३॥

यदि शिष्य गुरुके आश्रममें अत्यन्त वास करना चाहे तो गुरुके शरीर-त्यागपर्यंत युक्त होकर उनकी सेवा करे ।

आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् ।
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्राह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥२४४॥

गुरुके देहावसानतक जो ब्राह्मण गुरुकी सेवा करता है; वह हठात् शाश्वतिक ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

न पूर्वं गुरवे किंचिदुपकुर्वीत धर्मवित्।

स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् ॥२४५॥

धर्मका जाननेवाला शिष्य समावर्तनके पहले विवश होकर धनसे गुरुका उपकार न करे। व्रत-समाप्ति-सूचक स्नान कर चुकनेपर गुरुसे आज्ञा लेकर यथाशक्ति गुरुको दक्षिणा दे।

क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम्।

धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥२४६॥

भूमि, सोना, गाय, घोड़ा, छाता, जूता, आसन, अन्न, शाक और वस्त्र आदि प्रीतिपूर्वक गुरुको अर्पित करे।

आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते।

गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥२४७॥

आचार्यका देहान्त होनेपर गुणयुक्त गुरुपुत्रमें, गुरुपत्नीमें और गुरुके पितृव्यादिमें गुरुके समान बर्ताव करे।

एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारवान्।

प्रयुञ्जानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥२४८॥

यदि इनमें कोई विद्यमान न रहे तो आचार्यकी अग्निके समीप ही स्नान, आसन, विहार करके अग्निकी सेवा करता हुआ ब्रह्मप्राप्तिके हेतु अपनी देहको साधे।

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः।

स गच्छत्युत्तमस्थानं न चेहाजायते पुनः ॥२४९॥

इस प्रकार जो ब्राह्मण अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर फिर इस लोकमें जन्मग्रहण नहीं करता।

# अध्याय ३



षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥१॥

गुरुके आश्रममें रह, ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करता हुआ ३६ वर्षतक तीनों वेद पढ़े। यदि इतने समयतक न पढ़ सके तो १८ वर्ष या ९ वर्षमें ही तीनों वेद पढ़े; अथवा नियत समयसे पहले या पीछे जितने दिनोंमें वेद पढ़ना समाप्त कर सके उतने ही दिनोंतक पढ़े।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥२॥

अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ क्रमसे तीनों वेद, या दो वेद, या एक वेद पढ़कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे।

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥३॥

स्वधर्माचरणसे प्रसिद्ध उस ब्रह्मचारीको जो पितासे या अन्य आचार्यसे वेद पढ़ चुका हो, पुष्प-माला पहनाकर अच्छी शय्यापर बैठाकर पहले उसका मधुपर्क विधिसे पूजन करना चाहिये।

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥४॥

( तब ) गुरुसे आज्ञा पाकर, विधिपूर्वक स्नानादि समावर्तन संस्कार जिसका हो चुका है ऐसा द्विज शुभ लक्षणयुक्त सजातीय कन्यासे विवाह करे।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥५॥

जो कन्या माताकी सात पीढ़ीके भीतरकी न हो, पिताके सगोत्रकी न हो, वह द्विजातियोंके द्वारा व्याहने और सन्तानोत्पादन करने-योग्य है ।

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥६॥

गाय, बैल, बकरे, भेड़ें और धनधान्यसे पूर्ण धनी होनेपर भी ( नीचे लिखे ) इन कुलोंमें सम्बन्ध न करे ।

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥७॥

जो क्रियाहीन ( जातकर्मादि संस्काररहित ) हों, जिनमें पुरुष सन्तति न होती हो, जो वेदके पठन-पाठनसे रहित हों, जिनमें स्त्री-पुरुषोंके शरीरोंपर बहुत और लम्बे केश हों, जिनमें अर्श ( ववासीर ), क्षय ( राजयक्ष्मा ), मन्दाग्नि, मृगी, श्वेत दाग और कुष्ठरोग जैसे रोग हों ।

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिंगलाम् ॥८॥

जिस कन्याके बाल भूरे हों, जो अधिकाङ्गी हो (जिसे हाथ पैरों-में छः उंगलियां हों ), जो सदा बीमार रहती हो, जिसके शरीरमें रोम न हों, या बहुत हों, जो बहुत बोलनेवाली हो, जिसकी आंखें पीली हों, उसके साथ व्याह न करे ।

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥९॥

नक्षत्र, वृक्ष, नदी, म्लेछ, पहाड़, पक्षी, सांप और दासीके नामपर जिसका नाम हो उससे तथा भयानक नामवाली कन्यासे व्याह न करे ।

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥१०॥

जिसका कोई अङ्ग बिगड़ा न हो, सुखसे उच्चारण करने योग्य सुन्दर नाम हो, हंस या हाथीकी-सी मन्द गति हो, सूक्ष्म रोम, केश और छोटे दाँतोंवाली हो और कोमलाङ्गी हो, उससे व्याह करे।

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ।
नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥११॥

जिसके भाई न हो अथवा जिसके बापको कोई न जानता हो, ( अर्थात् वह लड़की किसकी है, यह किसीको मालूम न हो ) तो पुत्रिका* धर्मकी आशङ्कासे बुद्धिमान् पुरुष उस लड़कीके साथ व्याह न करे।

सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः ॥१२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्योंके लिये पहले सवर्णा ( स्वजातिकी कन्या ) से ही विवाह करना श्रेष्ठ है। कामवश विवाह करनेवालेको क्रमसे ये स्त्रियाँ भी प्रशस्त कही गयी हैं। ( यथा )—

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते ।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः ॥१३॥

शूद्रकी शूद्रा ही स्त्री होती है। वैश्यको निज वर्णवाली और शूद्रा, क्षत्रियको क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा, ब्राह्मणको चारों वर्णोंकी कन्यासे व्याह करनेका अधिकार है।

न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः ।
कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते ॥१४॥

---

* पुत्रिका उसे कहते हैं, पिता जिसके पुत्रद्वारा अपने पिण्ड-पानीकी आशा करे।

विवाह करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियोंको सवर्णा स्त्री न मिलनेपर भी शूद्राको स्त्री बनानेका उपदेश किसी इतिहासमें भी नहीं पाया जाता।

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससंतानानि शूद्रताम् ॥१५॥

जो द्विज अज्ञानवश हीन जाति (शूद्र) की कन्यासे व्याह करते हैं, वे सन्तानसहित अपने वंशको शीघ्र शूद्र बना डालते हैं।

शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतनयस्य च।
शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥१६॥

शूद्रासे व्याह करनेवाला ब्राह्मण पतितके तुल्य हो जाता है, यह अत्रि और उतथ्य-पुत्र गौतमका मत है। शूद्रासे पुत्रोत्पन्न होनेपर क्षत्रिय क्षत्रियत्वसे गिर जाता है, यह शौनकका कथन है, उसी प्रकार शूद्रासे अपत्य होनेसे वैश्य भी पतित हो जाता है,यह भृगुने कहा है।

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥१७॥

ब्राह्मण शूद्राके साथ शयन कर अधोगति (नरक) को प्राप्त होता है और उससे पुत्र उत्पन्न करके तो वह ब्राह्मणत्वसे ही रहित हो जाता है।

दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु।
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति ॥१८॥

ब्राह्मणकी विवाहिता शूद्राके हाथका बनाया हव्य-कव्य देवता-पितर ग्रहण नहीं करते। उस शूद्रापतिको ऐसे आतिथ्यसे स्वर्ग नहीं मिलता।

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥१९॥

जो ब्राह्मण शूद्राका अधर चूमते समय उसका थूक चाटता है, उसे अपनी शय्यापर सुलाकर उसके निःश्वाससे अपने प्राणवायुको दूषित करता है और जो उसमें सन्तान उत्पन्न करता है, उसके निस्तारका कोई उपाय नहीं है।

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान्।
अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥२०॥

चारों वर्णोंके इस लोक और परलोकमें हिताहितके साधकस्वरूप जो आठ प्रकारके विवाह हैं, उन्हें संक्षेपसे कहता हूं, सुनिये।

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥२१॥

१ ब्राह्म, २ दैव, ३ आर्ष, ४ प्राजापत्य, ५ आसुर, ६ गान्धर्व, ७ राक्षस और आठवां विवाह पैशाच है, जो सबमें अधम है।

यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ।
तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥२२॥

जिस वर्णका जो धर्मानुकूल विवाह है, जिस विवाहके जो गुण-दोष हैं, और जिस विवाहसे उत्पन्न सन्तानोंमें जो गुणागुण होते हैं, उन सबको विशेष रूपसे कहूंगा।

षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान्।
विट्शूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराक्षसान् ॥२३॥

ब्राह्मणको आदिसे अर्थात् ब्राह्मादि क्रमसे छः प्रकारके विवाह, क्षत्रियको आसुरादि क्रमसे ४ प्रकारके, और वैश्य तथा शूद्रको राक्षस-रहित तीन प्रकारके विवाह धर्मानुकूल कहे गये हैं।

चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः।
राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥२४॥

ब्राह्मणके लिये उन पूर्वोक्त छः प्रकारके विवाहोंमें प्रथम चार अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य, क्षत्रियके लिये केवल राक्षस और वैश्य तथा शूद्रके लिये आसुर विवाहको पण्डितगण श्रेष्ठ समझते हैं।

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह ।
पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन ॥२५॥

प्राजापत्य आदि पांच विवाहोंमें तीन ( प्राजापत्य, गान्धर्व और राक्षस ) धर्मानुकूल और दो ( आसुर और पैशाच ) अधर्मयुक्त कहे गये हैं। इसलिये ब्राह्मणको किसी भी अवस्थामें आसुर और पैशाच विवाह न करना चाहिये।

पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृता ॥२६॥

पूर्व-कथित गान्धर्व और राक्षस ये दोनों विवाह पृथक् पृथक् अथवा दोनों एक दूसरेमें मिले हुए क्षत्रियके लिये धर्मानुकूल कहे गये हैं।

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥२७॥

अच्छे शीलस्वभाववाले गुणवान वरको स्वयं बुलाकर उसे भूषण-वस्त्रसे अलंकृत और पूजित कर कन्या देना ब्राह्म विवाह है।

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥२८॥

यज्ञमें सम्यक् प्रकारसे कर्म करते हुए ऋत्विजको अलङ्कारादिसे पूजित कर कन्या देनेको मुनियोंने दैव विवाह कहा है।

एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥२९॥

वरसे एक या दो जोड़े गाय-बैल धर्मार्थ लेकर विधिपूर्वक कन्या देनेका नाम आर्ष विवाह है ।

**सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।**
**कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥३०॥**

"तुम दोनों साथ मिलकर गृहधर्मकी रक्षा करो," वरसे यह कह कर और पूजन करके जो कन्यादान किया जाता है, वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है ।

**ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।**
**कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥३१॥**

कन्याके बाप या चाचा आदिको और कन्याको भी यथाशक्ति धन देकर स्वच्छन्दतापूर्वक कन्याका ग्रहण करना आसुर विवाह है ।

**इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।**
**गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥३२॥**

कन्या और वरकी इच्छासे उनका संयोग होना गान्धर्व विवाह है । यह काम-भोगकी इच्छासे होता है और यह मैथुनके लिये हितकर है ।

**हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।**
**प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥३३॥**

( बाधा डालनेवालोंको ) मारकर, घायल कर किले या फाटकको तोड़कर रोती-बिलपती कन्याको जबर्दस्ती घरसे हरण कर ले जानेका नाम राक्षस विवाह है ।

**सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।**
**स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥३४॥**

नींदमें सोयी हुई, या मदमाती, या जो कन्या अपने होशमें न हो

उसके साथ एकान्तमें उपभोग करना विवाहमें अत्यन्त निकृष्ट पापोंसे भरा हुआ यह आठवां पैशाच विवाह है।

अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं विशिष्यते।
इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥३५॥

ब्राह्मणके लिये उदकदानपूर्वक कन्यादान करना प्रशस्त है। क्षत्रियादि वर्णोंमें बिना उदकके, परस्परकी इच्छा मात्रसे ( दाता ग्रहीताके वचनमात्रसे ) कन्यादान हो सकता है।

यो यस्यैषां विवाहानां मनुना कीर्तितो गुणः।
सर्वं शृणुत तं विप्राः सर्वं कीर्तयतो मम ॥३६॥

इन विवाहोंमें जिसका जो गुण मनुने कहा है, हे विप्रगण, वह सब कहता हूं, सुनिये।

दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम्।
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितॄन् ॥३७॥

ब्राह्म विवाहसे उत्पन्न धर्माचारी पुत्र अपनेसे दस पीढ़ी पीछेका और दस पीढ़ी आगेका और इक्कीसवें अपना नरकसे उद्धार करता है।

दैवोढाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान्।
आर्षोढाजः सुतस्त्रींस्त्रीन्षट्षट् कायोढजः सुतः ॥३८॥

दैव विवाहके अनुसार विवाहिता स्त्रीसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह सात पुरखे पीछेके और सात आगेके और आर्ष विवाहसे उत्पन्न पुत्र तीन पित्रादि और तीन पुत्र-पुरखोंको तथा प्राजापात्यसे उत्पन्न पुत्र छः पीछेके और छः आगेके पुरखोंको तारता है।

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसंमताः ॥३९॥

ये जो ब्राह्मादिक चार विवाह क्रमसे कथन किये इनसे ब्रह्मवर्चस, तेजस्वी और शिष्ट-जन--मान्य पुत्र उत्पन्न होते हैं।

रूपसत्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः।
पर्यासभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥४०॥

ये रूपवान, सात्विक तथा गुणसम्पन्न, धनवान्, यशस्वी, समृद्धिशाली, धार्मिक और शतायुषी होते हैं।

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥४१॥

बाकी बचे चार हीन विवाहोंसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे निर्दय, मिथ्यावादी, वेदनिन्दक और धर्मद्वेषी होते हैं।

अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्विवर्जयेत् ॥४२॥

अनिन्दित स्त्रीके साथ विवाह करनेसे उससे अनिंद्य प्रजा उत्पन्न होती है और निन्दित विवाहसे निन्दित सन्तानका जन्म होता है, इसलिये निंद्य विवाह न करे।

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते।
असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि ॥४३॥

पाणिग्रहण-संस्कार सवर्ण कन्याके विवाहमें ही बताया है असवर्णा ( भिन्न ज्ञातीया ) कन्याके विवाहमें यह ( निम्नलिखित ) विधि है।

शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया।
वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥४४॥

क्षत्रियबालिका विवाहके समय ब्राह्मणके हाथके बाणका एक भाग पकड़े। वैश्यकी कन्या ब्राह्मण और क्षत्रियके हाथके चाबुकको और शूद्रकी लड़की ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके वस्त्रकी दशाको पकड़े।

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥४५॥

( पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे ) ऋतुकालमें ही स्त्री-समागम करना चाहिए। सदा अपनी स्त्रीसे ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। रतिको संतुष्ट करनेके लिये पर्व दिनोंको छोड़कर और समय स्त्री-समागम कर सकते हैं।

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥४६॥

शोणित दर्शनसे १६ रात्रिपर्यन्त स्त्रीका ऋतुकाल रहता है। शिष्ट निन्दित प्रथम चार दिन भी इसीमें सम्मिलित हैं।

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥४७॥

उन सोलह रात्रियोंमें प्रथम चार रात, ग्यारहवीं और तेरहवीं रात स्त्री-समागमके लिये निन्दित हैं, शेष दस रात प्रशस्त हैं।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥४८॥

सम-रात्रिमें ( अर्थात् छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, और चौदहवीं तथा सोलहवीं रातको ) स्त्रीके साथ सहवास करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है। विषम रात्रिमें ( अर्थात् पांचवीं, सातवीं आदि रात्रिमें ) स्त्री-गमनसे कन्या जन्म लेती है। इसलिये जो पुत्रार्थी हो, वह युग्म-रात्रिमें ऋतुमती स्त्रीके साथ शयन करे।

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥४९॥

पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे विषम रात्रिमें भी पुत्र और स्त्रीका रज अधिक होनेसे सम रात्रिमें भी कन्या होती है। स्त्रीपुरुषका रज-वीर्य तुल्य होनेसे नपुंसकका जन्म होता है, या यमल सन्तान होती है। दूषित या अल्प वीर्य होनेसे गर्भका धारण नहीं होता।

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन् ॥५०॥

जो पूर्वोक्त छः दूषित रात्रिके साथ अन्य और निन्दित आठ रातमें स्त्रीका त्यागकर सोलह रातमें केवल पर्वरहित दो रात स्त्रीसंगम करता है; वह चाहे जिस आश्रममें रहकर भी ब्रह्मचारी बना रहता है।

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि।
गृह्णंश्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥५१॥

द्रव्यग्रहणके दोषको जाननेवाला, कन्याका पिता कन्यादानके लिये थोड़ा भी धन न ले। लोभसे धन ग्रहण करनेपर मनुष्य संतान बेचनेवाला होता है।

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः।
नारी यानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥५२॥

जो पति पिता आदि सम्बन्धिवर्ग मोहवश स्त्रीधनसे अर्थात् बेटी अथवा पत्नी आदिके भूषण, वस्त्र और सवारी इत्यादि बेचकर गुजर करते हैं, वे पातकी नरकगामी होते हैं।

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैव तत्।
अल्पोऽप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥५३॥

आर्ष विवाहमें गाय-बैलका एक जोड़ा शुल्क लेनेकी बात जो किसीने कही है वह मिथ्या ही है। थोड़ा ले या अधिक वह बेचना ही हुआ।

यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः ।
अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् ॥५४॥

कन्याओंके निमित्त वरका दिया हुआ जो भूषण-वस्त्रादिरूप शुल्क है वह पिता-भ्राता आदि नहीं लेते, प्रत्युत् कन्याको ही देते हैं। इसलिये वह विक्रय नहीं है। यह कुमारियोंका पूजन है। इसमें कोई हिंसादि दोष नहीं है।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥५५॥

विशेष कल्याणकी इच्छा रखनेवाले, मां, बाप, भाई, पति और देवरोंको चाहिये कि कन्याका पूजन ( सत्कार ) करें और वस्त्रालङ्कारादिसे भूषित करें।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥५६॥

जिस कुलमें स्त्रियां पूजित ( सम्मानित ) होती हैं, उस कुलपर देवता प्रसन्न होते हैं। जहां स्त्रियोंका अपमान होता है, वहीं सभी यज्ञादिक कर्म निष्फल होते हैं।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥५७॥

जिस कुलकी बहू-बेटियां क्लेश भोगती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है। किन्तु जहां इन्हें किसी तरहका दुःख नहीं होता, वह कुल सब प्रकारसे समृद्धिशाली होता है।

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥५८॥

सम्मानित न होनेके कारण बहू-बेटियां जिन घरोंको कोसती हैं, वे घर अभिचारसे नष्ट होकर सर्वथा नाशको प्राप्त होते हैं।

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥५९॥

इसलिये ये स्त्रियां सदा भूषण, वसन और भोजनसे सन्तुष्ट करने योग्य हैं। जिन पुरुषोंको समृद्धिकी इच्छा हो, वे मंगलकार्यों और उत्सवोंमें सब प्रकार भूषण-वसनादिसे उन्हें संतुष्ट रखें।

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥६०॥

जिस कुलमें स्त्रीसे स्वामी और स्वामीसे स्त्री प्रसन्न रहती है, उस कुलमें सदा कल्याण होता है।

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमादात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ॥६१॥

यदि स्त्री भूषण-वसनसे सुशोभित न हो तो वह खिन्न-हृदय होनेके कारण स्वामीको आनन्दित नहीं कर सकती, और स्वामी अप्रसन्न हो तो सन्तानोत्पादन नहीं होता।

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥६२॥

( अलंकारादिसे ) स्त्री कांतियुक्त होती है। उससे सारा कुल दीप्तियुक्त होता है। परन्तु स्त्री यदि असंतुष्ट हो तो सारा कुल ही मलिन हो जाता है।

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥६३॥

आसुर आदि विवाहोंसे, जातकर्मादि क्रियाओंका लोप होने और वेद न पढ़नेसे तथा ब्राह्मणका अपमान करनेसे ऊंचे कुलोंकी कुलीनता भी नष्ट होती है।

शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः।
गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥६४॥

चित्रकर्मादि शिल्प, व्याजका व्यवहार, शूद्रा स्त्रीमें सन्तानोत्पत्ति, गाय, बैल, घोड़े और गाड़ीके क्रय-विक्रय व्यापार, खेती और राज-सेवासे तथा—

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम्।
कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥६५॥

यज्ञके अनधिकारीको यज्ञ कराने और वेदोक्त कर्मोंमें नास्तिक बुद्धि रखनेसे तथा वेदाध्ययनसे च्युत हो जानेसे कुल शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥६६॥

थोड़े धनवाले कुल भी यदि वेदाध्ययनसे समृद्ध हैं तो वे अच्छे कुलोंमें गिने जाते हैं और महद् यश लाभ करते हैं।

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि।
पञ्चयज्ञविधानं च पक्तिं चान्वाहिकीं गृही ॥६७॥

विवाहके समय स्थापित अग्निमें यथाविधि गृह्योक्त कर्म्म (होम) करे, तथा गृहीको चाहिये कि नित्य पञ्चयज्ञ और पाक करे।

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥६८॥

गृहस्थके लिये चूल्हा, चक्की, (सील, लुढ़िया आदि) झाड़ू, ऊखल, मूसल, पानीका घड़ा—ये पांचों हिंसाके स्थान हैं, इनसे काम लेनेसे गृहस्थ पापभागी होता है।

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥६९॥

महर्षियोंने उन पापोंके नाशके लिये गृहस्थोंको प्रति दिन क्रमसे पञ्चमहायज्ञ करनेका आदेश किया है ।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥७०॥

वेदका पठनपाठन ब्रह्मयज्ञ; पितरोंका तर्पण करना पितृयज्ञ; होम करना देवयज्ञ; जीवोंको अन्नकी बलि देना भूतयज्ञ और अतिथिका आदरसत्कार करना नृयज्ञ है ।

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः ।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥७१॥

जो इन पांच महायज्ञोंको प्रतिदिन यथाशक्ति करता है वह घरमें रहकर भी हिंसा-दोषोंसे लिप्त नहीं होता ।

देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः ।
न निर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥७२॥

जो देवता, अतिथि और माता-पिता आदि पोष्यवर्ग तथा अपना संरक्षण नहीं करता वह साँस लेता हुआ भी जीवित न रहनेके समान है ।

अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च ।
ब्राह्मयं हुतं प्राशितं च पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ॥७३॥

अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्म्यहुत और प्राशित, ये पञ्चयज्ञ कहलाते हैं ।

जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको बलिः ।
ब्राह्मयं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ॥७४॥

अहुत कहते हैं ब्रह्मयज्ञसंज्ञक जपको, हुत देवयज्ञसंज्ञक होमको, प्रहुत भूतयज्ञसंज्ञक भूतबलिको, ब्राह्म्यहुत नृयज्ञसंज्ञक अतिथि ब्राह्मणके सत्कारको और प्राशित पितृयज्ञसंज्ञक नित्यश्राद्धको कहते हैं ।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि ।
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ॥७५॥

दरिद्रताके कारण अतिथिको भोजन देनेमें असमर्थ हो तो वह नित्य ब्रह्मयज्ञ करे। कारण, दैव कर्ममें लगा हुआ पुरुष इस चराचरको धारण करता है।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥७६॥

अग्निमें सम्यक् प्रकारसे दी हुई आहुति सूर्यको प्राप्त होती है। सूर्यसे वर्षा होती है, वर्षासे अन्न उपजता है, उससे प्रजाकी उत्पत्ति होती है।

यथा वायु समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजंतवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥७७॥

जैसे वायुका आश्रय कर सब प्राणी जीते हैं वैसे ही सब आश्रम गृहस्थाश्रमका आश्रय किये रहते हैं।

यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥७८॥

तीनों आश्रमी ( ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी ) गृहस्थोंके द्वारा नित्य वेदार्थज्ञानकी चर्चा और अन्नदानसे उपकृत होते हैं, इस कारण सब आश्रमोंमें बड़ा गृहस्थ ही है।

स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेंद्रियैः ॥७९॥

अक्षय स्वर्ग प्राप्त करनेकी जिसे इच्छा हो और इहलोकमें भी जो सुख चाहता हो वह यत्नपूर्वक ऐसे गृहस्थाश्रमका पालन करे। गृहस्थाश्रमका धारण करना दुर्बल इंद्रियोंसे नहीं होता।

ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा ।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ॥८०॥

ऋषि, पितर, देवता, जीवजन्तु और अतिथि, ये गृहस्थोंसे कुछ पानेकी आशा रखते हैं; इसलिये शास्त्रज्ञ पुरुष उन्हें संतुष्ट करे ।

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन्श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥८१॥

वेदाध्ययनसे ऋषियोंका, होमसे देवताओंका, श्राद्ध और तर्पणसे पितरोंका, अन्नसे अतिथियोंका और बलिकर्मसे प्राणियोंका यथाविधि सत्कार करे ।

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥८२॥

अन्नादिकसे या जलसे या दूधसे या फल मूलोंसे पितरोंके प्रीत्यर्थ नित्य श्राद्ध करे ।

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके ।
न चैवात्राशयेत्किंचिद्वैश्वदेवं प्रति द्विजम् ॥८३॥

पञ्चयज्ञके अन्तर्गत पितरके निमित्त कमसे कम एक ब्राह्मणको तो अवश्य भोजन करावे; पर वैश्वदेवके निमित्त ब्राह्मणको भोजन करानेकी आवश्यकता नहीं ।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥८४॥

वैश्वदेवके निमित्त पकाये अन्नसे ब्राह्मण गार्हपत्य अग्निमें इन (आगे कहे हुए) देवताओंके लिये प्रति दिन हवन करे ।

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च ॥८५॥

पहले अग्नि और सोमको अलग अलग, फिर दोनोंको एक साथ ('अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' ऐसा कहकर ) आहुति दे, तदनन्तर विश्वेदेव और धन्वन्तरिको आहुति दे।

कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय एव च।
सहद्यावपृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥८६॥

(फिर) कुहूको, अनुमतिको, प्रजापतिको आहुति दे। द्यौः पृथिवी ( द्यावा पृथिवीभ्यां) को एक साथ आहुति दे। अन्तमें (अग्नये स्विष्टकृते ) स्विष्टकृत् अग्निको आहुति दे।

एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम्।
इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥८७॥

इस प्रकार अनन्य चित्तसे होम करके पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिण क्रमसे इन्द्र, यम, वरुण और सोमको तथा साथ साथ उनके अनुयायियोंको बलि देना चाहिये। (यथा पूर्वदिशामें 'इन्द्राय नमः इन्द्रपुरुषेभ्यो नमः', दक्षिण दिशामें, 'यमाय नमः यमपुरुषेभ्यो नमः', पश्चिम दिशामें 'वरुणाय नमः वरुणपुरुषेभ्यो नमः,' उत्तर दिशामें 'सोमाय नमः सोमपुरुषेभ्यो नमः।')

मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि।
वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥८८॥

मरुतको द्वारपर, आप (जल) को जलमें तथा वनस्पतिको मूसल और उलूखलमें बलि दे।

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥८९॥

बलिनिर्मित वास्तुके शीर्ष भागमें लक्ष्मीको, पदप्रदेशमें भद्रकालीको, ब्रह्मा और वास्तुपतिको वास्तुके मध्य भागमें बलि दे।

विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥९०॥

वैश्यदेवको आकाशमें और दिनचर रात्रिचर प्राणियोंको क्रमसे दिन और रातमें बलि दे ।

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ।
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥९१॥

वास्तुके पृष्ठभागमें सर्वात्मभूतको, और जो कुछ अन्न बचे वह लेकर वास्तुके दक्षिण भागमें पितरोंको बलि दे ।

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥९२॥

कुत्तों, पतितों, श्वपचों, पापरोगियों, कौओं, और कीड़े-मकोड़ोंके लिये धरतीपर धीरेसे बलि रखे ।

एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति ।
स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तिं पथर्जुना ॥९३॥

इस प्रकार जो ब्राह्मण सब प्राणियोंकी नित्य सेवा करता है वह सीधे रास्तेसे तेजोमय परमस्थानको प्राप्त करता है ।

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥९४॥

इस प्रकार बलिवैश्वदेव कर्म्म करके पहले अतिथिको भोजन करावे और संन्यासी तथा ब्रह्मचारीको उचित रीतिसे भिक्षा दे ।

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्वा विधिवद्गुरोः ।
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्वा द्विजो गृही ॥९५॥

गुरुको विधिपूर्वक गौ देनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, वह गृहस्थ द्विजको केवल भिक्षा देनेसे प्राप्त होता है ।

भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥९६॥

गृहस्थको अधिक अन्नके अभावमें चाहिये कि वह थोड़ासा भी पवित्र अन्न या जल विधिपूर्वक सत्कार करके वेदके तत्त्वार्थ जाननेवाले ब्राह्मणको दे ।

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् ।
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः ॥९७॥

देवता और पितरोंकी तृप्तिके लिये दाता जो हव्यकव्य वेदाध्ययनरहित निस्तेज ब्राह्मणोंको अज्ञानवश देता है, वह निष्फल हो जाता है ।

विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥९८॥

विद्या और तपके तेजसे परिपूर्ण ब्राह्मणोंकी मुखाग्निमें प्रक्षिप्त हव्य-कव्य ( इस लोकमें ) अनेक प्रकारके संकटोंसे और ( परलोकमें ) महान् पापसे बचाता है ।

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥९९॥

स्वयं आये हुए अतिथिको बैठनेके लिये आसन और पैर धोनेके लिये जल देना चाहिये । तदनन्तर यथाशक्ति विधिपूर्वक व्यंजनादिसे युक्त अन्न खिलाना चाहिये ।

शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः ।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽनर्चितो वसन् ॥१००॥

फसल कटनेपर खेतमें बचे हुए अन्नको चुनकर उसपर निर्वाह करनेवाला और नित्य पञ्चाग्नि सेवन करनेवाला ऐसा पुरुष भी है।

पर उसके यहां अतिथिके आनेपर यदि उस अतिथिका सत्कार न हो तो यह अतिथि उसका सारा पुण्य ले लेता है।

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥१०१॥

अतिथिके लिये और न कुछ तो तृणासन, ठहरनेकी जगह, पैर धोनेके लिये पानी और मधुर और सत्य वाणी, इन चारों वस्तुओंका अभाव तो सज्जनोंके यहां कभी नहीं रहता।

एकरात्रं तु निवसन्नातीथिर्ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥१०२॥

दूसरेके घरपर एक रात जो ब्राह्मण निवास करे वह अतिथि है। उसका रहना नित्य नहीं होता, इसीसे वह अतिथि कहलाता है। ( अर्थात् जो एक तिथिमें किसीके यहां रहकर दूसरी तिथिको न रहे।)

नैकग्रामीणमीतीथं विप्रं सांगतिकं तथा।
उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोऽपि वा ॥१०३॥

उसी गांवमें रहनेवाला, बैठकबाजीसे अपनी जीविका चलानेवाला कोई मनुष्य यदि ( वैश्वदेव कर्मके समय भी ) अतिथि बनकर घरपर उपस्थित हो तो भार्यायुक्त अग्निहोत्री गृहस्थ उसे अतिथि न जाने।

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥१०४॥

जो अज्ञानी गृहस्थ दूसरेका अन्न खाते फिरते हैं, वे उस दोषसे जन्मान्तरमें अन्नदाताओंके पशु होते हैं।

अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योढो गृहमेधिना।
काले प्राप्तास्त्वकाले वा नास्यानश्नन्गृहे वसेत् ॥१०५॥

सूर्यास्त समयमें यदि कोई अतिथि ( अभ्यागत ) घरपर आवे तो उसे नहीं टालना चाहिये । अतिथि समयपर आवे या असमयमें गृही अवश्य उसे भोजन करा दे ।

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनम् ॥१०६॥

अतिथिको जो पदार्थ न परोसा गया है उसे गृहस्थी न खाय । अतिथि-पूजनसे धन, यश और आयुकी वृद्धि होती है, तथा जन्मान्तरमें स्वर्गसुख प्राप्त होता है ।

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ।
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम् ॥१०७॥

आसन, विश्रामस्थान, शय्या, अनुगमन, और परिचर्या—ये अतिथियोंकी योग्यता देखकर करे, जो जैसे हों उनके साथ वैसा ही व्यवहार करे, अर्थात् एक साथ अधिक आये अतिथियोंमें बड़े छोटे-का खयाल रखकर उनके सम्मानकी व्यवस्था करे ।

वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योऽतिथिराव्रजेत् ।
तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ॥१०८॥

वैश्वदेव कर्म समाप्त हो जानेपर यदि दूसरा अतिथि आवे तो उसे भी पुनः पाक करके यथाशक्ति भोजन करावे । पर उस अन्नसे "बलिहरण" न करे ।

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत् ।
भोजनार्थं हि ते शंसन्वान्ताशीत्युच्यते बुधैः ॥१०९॥

भोजनके लिये ब्राह्मण किसीसे अपने कुल गोत्रका निवेदन न करे; क्योंकि जो ऐसा करता है,पण्डितगण उसे वमनभोक्ता कहते हैं ।

न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते ।
वैश्यशूद्रौ सखा चैवं ज्ञातयो गुरुरेव च ॥११०॥

ब्राह्मणके घर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मित्र, बिरादरीके लोग और गुरु आवें तो वे अतिथि नहीं कहे जाते।

यदि त्वतिथिधर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत्।
भुक्तवत्सु च विप्रेषु कामं तमपि भोजयेत् ॥१११॥

यदि कोई क्षत्रिय अतिथि-धर्मसे घरपर आ जाय तो उपस्थित ब्राह्मणोंको भोजन करानेके बाद गृहस्थ उसे भी भोजन करा दे।

वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ।
भोजयेत्सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन् ॥११२॥

यदि वैश्य या शूद्र अतिथिरूपमें ब्राह्मण गृहस्थके यहां आ जायँ तो उन्हें दयाधर्मपूर्वक भृत्योंके साथ भोजन कराना चाहिये।

इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान्।
सत्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥११३॥

( क्षत्रियादिकोंके अतिरिक्त घरपर आये हुए ) अन्य बान्धवोंको भी जो प्रेमसे अपने यहां आये हों पत्नीके भोजनावसरमें यथाशक्ति उत्तम भोजन कराना चाहिये।

सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीः स्त्रियः।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥११४॥

नयी बहू, कन्या, रोगी और गर्भिणी स्त्रियां, इन सबको अतिथियोंके पहले बिना विचारे भोजन करा दे।

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुङ्क्तेऽविचक्षणः।
स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥११५॥

जो अज्ञानी इन सबको न खिलाकर पहले स्वयं खाता है, वह खानेवाला यह नहीं जानता कि मरनेके बाद उसके शरीरको कुत्ते और गीध नोंच नोंचकर खायेंगे!

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि ।
भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥११६॥

पहले अतिथि ब्राह्मणों और अपने भृत्योंको भोजन कराकर पीछे जो अन्न बचे वह पति-पत्नी भोजन करें।

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्गृह्याश्च देवताः ।
पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥११७॥

पहले देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर और गृहदेवताओंका अन्नादिसे पूजन करके पीछे बचा हुआ अन्न गृहस्थ आप भोजन करे।

अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् ।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥११८॥

जो अपने ही लिये भोजन बनाकर देवता-पितर आदिको नहीं देता वह अन्न न खाकर केवल पाप खाता है। सज्जनोंके लिये तो यज्ञावशिष्ट अन्न ही भोजनके लिये प्रशस्त है।

राजर्त्विक्स्नातक गुरून्प्रियश्वशुरमातुलान् ।
अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात्पुनः ॥११९॥

राजा, यज्ञपुरोहित, स्नातक, गुरु, जमाई, ससुर और मामा, ये लोग जब एक वर्षके बाद पुनः घरपर आवें तो मधुपर्कसे उनकी पूजा करनी चाहिये।

राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युपस्थितौ ।
मधुपर्केण संपूज्यौ न त्वयज्ञ इति स्थितिः ॥१२०॥

राजा और वैदिक यज्ञकर्ममें उपस्थित हों तो मधुपर्कसे उनकी पूजा करनी चाहिये, यज्ञातिरिक्त समयमें नहीं। ( किन्तु जामाता आदि वर्षान्तर आवें तो यज्ञावसर न रहनेपर भी मधुपर्कसे पूजा करनेयोग्य हैं।

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ।
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायंप्रातर्विधीयते ॥१२१॥

सायंकालको स्त्री बिना मन्त्रके सिद्धान्नका बलि दे। यह वैश्वदेव नामक कर्म्म गृहस्थको दोनों साँझ करना चाहिये।

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्दुक्षयेऽग्निमान् ।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥१२२॥

अग्निहोत्री ब्राह्मण अमावास्या तिथिमें पितृयज्ञ करके प्रति मास पिण्डान्वाहार्य्यक श्राद्ध करे।

पितॄणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः ।
तच्चामिषेण कर्तव्यं प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥१२३॥

पण्डित पितरोंके इस मासिक श्राद्धको अन्वाहार्य कहते हैं। जो प्रयत्नपूर्वक विहित मांसद्वारा करना चाहिये।

तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः ।
यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥१२४॥

इस श्राद्धमें कौन ब्राह्मण खिलानेयोग्य हैं और कौन नहीं हैं, किन अन्नोंसे कितने ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये इत्यादि सब बातें कहता हूं।

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥१२५॥

देवकार्यमें दो ब्राह्मण, पितृश्राद्धमें तीन या दोनोंमें एक एक ब्राह्मणको भोजन करावे। अधिक ब्राह्मणभोजन करानेका सामर्थ्य हो तौभी इस संख्याको न बढ़ावे।

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसंपदः ।
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥१२६॥

इस संख्याको बढ़ानेसे सत्कार, देश, काल, शुचिता और ब्राह्मणत्व श्राद्धके इन पांचों आवश्यक अंगोंको साधनेमें बाधा पड़ती है। इसलिये श्राद्धमें ब्राह्मणोंकी संख्या नहीं बढ़ानी चाहिये।

प्रथिता प्रेतकृत्यैषा पित्र्यं नाम विधुक्षये ।
तस्मिन्युक्तस्यैति नित्यं प्रेतकृत्यैव लौकिकी ॥१२७॥

अमावास्यामें किया हुआ यह पितृश्राद्ध प्रेतकृत्या ( पितृक्रिया ) नामसे अभिहित है । उस कर्म्ममें जो तत्पर रहता है, उसको नित्य लौकिकी प्रेतकृत्या प्राप्त होती है अर्थात् उसके पुत्र-पौत्रादि और धनकी वृद्धि होती है।

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः ।
अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥१२८॥

वेदाध्यायीको ही हव्य कव्य देना चाहिये; क्योंकि उस पूज्यतम ब्राह्मणको देवान्न या श्राद्धान्न देनेसे बहुत फल होता है।

एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ।
पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्बहूनपि ॥१२९॥

देवकर्म और पितृकर्ममें एक विद्वान ब्राह्मणको भी भोजन कराने से जो विशेष फल प्राप्त होता है, वह वेद-विद्यासे विहीन बहुत ब्राह्मणोंको खिलानेसे भी नहीं होता।

दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥१३०॥

वेदनिष्णात ब्राह्मणको दूरसे अर्थात् उसके पिता, पितामहादिकी वंशपवित्रताके निरूपणसे जांच ले, क्योंकि वह हव्य-कव्योंका पात्र और दानके लिये अतिथिके तुल्य पवित्र कहा गया है।

सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ।
एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः ॥१३१॥

जिस श्राद्धमें वेदविहीन दस लाख ब्राह्मण भोजन करते हैं, उसमें यदि वेद जाननेवाला एक ही ब्राह्मण प्रसन्न होकर भोजन करे तो वह अकेला ही उन सबसे प्राप्त होनेवाला फल यजमानको देता है।

ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च।
न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुद्ध्यतः ॥१३२॥

जो विद्यामें बड़ा हो, उसीको हव्य (देवान्न) और कव्य (पित्रन्न देना चाहिये, मूर्खको नहीं, क्योंकि लहूसे भींगे हुए हाथ लहूसे शुद्ध नहीं होते, किन्तु निर्मल जलसे ही शुद्ध होते हैं।

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान् ॥१३३॥

वेद-विद्यारहित ब्राह्मण हव्य-कव्योंमें जितने कौर खाते हैं, श्राद्ध-कर्त्ताको मरनेके उपरांत उतने ही आगके तपाये शूलर्ष्टि नामक लोहेके गोले निगलने पड़ते हैं।

ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथाऽपरे।
तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥१३४॥

कोई ब्राह्मण आत्मज्ञानी, कोई तपस्वी, कोई वेदव्रतनिष्ठ और कोई यज्ञकर्मपरायण होते हैं।

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः।
हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि ॥१३५॥

ज्ञाननिष्ठोंको यत्नपूर्वक कव्य ( श्राद्धान्न ) और हव्य तो यथा योग्य उन चारों ब्राह्मणोंको देना चाहिये।

अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः।
अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥१३६॥

जिसका पिता वेद न जानता हो और पुत्र वेदपारङ्गत हो, अथवा बाप वेदपारङ्गत हो, बेटा वेद न जानता हो—

ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ।
मन्त्रसंपूजनार्थं तु सत्कारमितरोऽर्हति ॥१३७॥

इन दोनोंमें बड़ा वही है जिसका बाप वेदविज्ञ है, किन्तु वह वैदिक जो मूर्ख पिताका पुत्र है, केवल पढ़े हुए वेदके सम्मानार्थ सत्कार पानेयोग्य है।

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।
नारिं न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् ॥१३८॥

श्राद्धमें मित्रको न खिलावे, किन्तु अन्य उपहार-प्रदानसे मैत्रीकी रक्षा करे। जो न शत्रु हो न मित्र, उसी ब्राह्मणको श्राद्धमें भोजन करावे।

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ।
तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च ॥१३९॥

जिनके श्राद्ध और हव्य मित्र-प्रधान होते हैं (अर्थात् मित्रोंको ही जिनमें भोजनादि कराया जाता है ) उन्हें मरनेपर हव्य-कव्यका फल नहीं मिलता।

यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः ।
स स्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः ॥१४०॥

जो मनुष्य अज्ञानतासे श्राद्धके ही द्वारा किसीके साथ मैत्री जोड़ता है, वह श्राद्धमित्र द्विजाधम स्वर्गलोकसे वञ्चित होता है।

संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः ।
इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि ॥१४१॥

जिस दान-क्रियामें मित्रादिकोंके साथ भोजनादि होता है उस दानक्रियाको पैशाची दान-क्रिया कहते हैं, क्योंकि वह दानदक्षिणा इसी लोकमें रह जाती है, जैसे अन्धी गाय एक ही घरमें रहती है।

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ।
तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥१४२॥

ऊसरमें बीज बोनेसे जैसे बोनेवालेको कुछ फल लाभ नहीं होता, वैसे ही मूर्खको हवि (देवान्न) देनेसे देनेवालेका कोई फल नहीं मिलता।

दातृन्प्रतिग्रहीतृंश्च कुरुते फलभागिनः ।
विदुषे दक्षिणां दत्त्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च ॥१४३॥

जो दानदक्षिणा विधिपूर्वक वेदविज्ञ ब्राह्मणको दी जाती है वह इस लोक और परलोकमें दाता और प्रतिग्रहीता दोनोंको यथोक्त फल देती है।

कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥१४४॥

( विद्वान् ब्राह्मणके अभावमें ) गुणवान् मित्रको सादर भोजन करावे, पर विद्वान् शत्रुको नहीं। कारण शत्रुका खाया हुआ श्राद्ध परलोकमें निष्फल होता है।

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् ।
शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥१४५॥

बहुत ऋचाओं ( मन्त्रों ) को जाननेवाले वेदपारङ्गत ब्राह्मणको अथवा उस ऋत्विजको जिसने वेदकी कोई शाखा पूरी पढ़ी हो, या उस ब्राह्मणको जिसका सम्पूर्ण वेद पढ़ा हो, श्राद्धमें यत्नपूर्वक भोजन करावे।

एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धमर्चितः ।
पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छाश्वती साप्तपौरुषी ॥१४६॥

ऐसा एक भी वेदज्ञ ब्राह्मण यदि सम्यक् प्रकारसे पूजित होकर श्राद्धमें भोजन करे तो श्राद्धकर्त्ताके पितरोंको सात पीढ़ियोंतक शाश्वत तृप्ति होती है।

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥१४७॥

हव्य कव्य देनेमें यह मुख्य विचार हुआ। अब साधु पुरुषोंने जिस गौण विचारका भी सदा अनुष्ठान किया है वह भी जानना चाहिये, जो इस प्रकार है।

मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विटपतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥१४८॥

मातामह (नाना), मामा, भांजा, श्वशुर, गुरु, दौहित्र, जामाता, मौसेरा-फुफेरा भाई, पुरोहित,और यज्ञकर्ता—इनको श्राद्धमें भोजन करावे (यदि कोई योग्य अधिकारी दूसरा ब्राह्मण न मिले)।

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्माणि धर्मवित् ।
पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥१४९॥

धर्मज्ञ पुरुष दैवकर्ममें ब्राह्मणकी जांच न करे, किन्तु पितृकर्ममें (उसके आचार,विचार, विद्या,कुलशीलकी) अच्छी तरह जांच कर ले।

ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ।
तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥१५०॥

जो ब्राह्मण चोर हों, पतित हों, नपुंसक हों, नास्तिक हों—वे हव्य-कव्यके योग्य नहीं हैं, ऐसा मनुजीने कहा है।

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा ।
याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ॥१५१॥

वेदपाठरहित जटिल ब्रह्मचारी, दुर्बल (अजितेन्द्रिय), जुआरी और ग्राम्य पुरोहित—इनको श्राद्धमें न खिलावे।

चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥१५२॥

वैद्य, पुजारी ( देवांश खानेवाले ), मांस बेचनेवाले और वणिक्वृत्तिसे जीनेवाले ब्राह्मण देवकर्म्म और श्राद्ध—दोनोंमें त्याज्य हैं।

**प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः।**
**प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा ॥१५३॥**

राजा या गांवका दूतत्व करनेवाला, जिसके नह खराब हों, जिसके दांत काले हों, गुरुकी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेवाला, अग्निहोत्र न करनेवाला, गायनादि कलाओंपर जीविका चलानेवाला ब्राह्मण हव्य-कव्यमें त्याज्य है।

**यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः।**
**ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥१५४॥**

यक्ष्मा ( क्षय ) रोगवाला, भेड़-बकरी पोसकर गुजर करनेवाला, परिवेत्ता * परिवित्ति † देव-पितृकर्म्मादिरहित, ब्राह्मणद्वेषी और किसी लोकसमूहके अर्थ पैदा किये हुए धनपर अपनी जीविका चलानेवाला—ये सब देवकर्म और श्राद्धमें त्याज्य हैं।

**कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च।**
**पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥१५५॥**

नाचगानपर जीविका चलानेवाला, जिसका ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट हुआ है ऐसा ब्रह्मचारी या यती, शूद्रा स्त्री जिसकी है या जो पुनर्विवाहिता स्त्रीका पुत्र है, तथा काना, और जिसके घरमें स्त्रीका उपपति हो, ये सब देवकर्म और श्राद्धमें त्याज्य हैं।

---

* ज्येष्ठ बंधु अविवाहित और अनग्नि रहनेपर यदि छोटा भाई ब्याह करके अग्निहोत्र करे तो उसे परिवेत्ता कहते हैं।

† परिवेत्ताके बड़े भाईको परिवित्ति कहते हैं।

भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ।
शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ॥१५६॥

वेतन लेकर पढ़ानेवाला, वेतन देकर पढ़नेवाला, शूद्रसे पढ़नेवाला या शूद्रको पढ़ानेवाला, कटुभाषी, सधवा या विधवाके पेटसे परपुरुषद्वारा उत्पन्न ब्राह्मण देवान्न या श्राद्धान्न खिलानेके उपयुक्त पात्र नहीं है ।

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।
ब्राह्मैर्यौनैश्च संबन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ॥१५७॥

माता, पिता और गुरुको निष्कारण त्यागनेवाला अर्थात् उनकी सेवा न करनेवाला, पतितोंके साथ विवाहादि सम्बन्ध या पठनपाठनका व्यवहार करनेवाला त्याज्य है ।

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥१५८॥

घरमें आग लगानेवाला, विष देनेवाला, जारजका अन्न खानेवाला, मादक वस्तु बेचनेवाला, समुद्रयात्रा करनेवाला, भाट, तिलादिसे तेल निकालनेवाला, और झूठी गवाही देनेवाला श्राद्धादिमें त्याज्य हैं ।

पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ।
पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥१५९॥

पिताके साथ वृथा विवाद करनेवाला, अपने लिये दूसरोंसे जुआ करानेवाला, शराबी, महारोगी, महापापापवादयुक्त, दांभिक और रसोंको बेचनेवाला देवान्न श्राद्धान्नके लिये उपयुक्त नहीं है ।

धनुःशराणां कर्ता च यश्चाग्रेदिधिषूपतिः ।
मित्रध्रुग्द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥१६०॥

धनुषबाण बनानेवाला, उस कन्यासे ब्याह करनेवाला जिसकी

बड़ी बहन कुँवारी हो, मित्रद्रोही, द्यूत (जुआ) वृत्तिसे निर्वाह करनेवाला, बेटेसे वेद पढ़नेवाला श्राद्धादि कर्ममें त्याज्य हैं।

**भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा।**
**उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥१६१॥**

जिसे मृगी, गण्डमाला, श्वेतकुष्ट जैसे रोग हों, चुगली खानेवाला, पागल, अन्ध और वेदनिन्दक श्राद्धमें वर्जित हैं।

**हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति।**
**पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥१६२॥**

हाथी, बैल, घोड़े और ऊँटको आज्ञापालनकी शिक्षा देनेवाला, राशि-नक्षत्रकी गणनासे जीवननिर्वाह करनेवाला, पक्षियोंको पोसनेवाला, और युद्ध सिखानेवाला श्राद्धादिमें त्याज्य हैं।

**स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः।**
**गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च ॥१६३॥**

नदीसे नहर काटकर उसका जल दूसरी ओर ले जानेवाला, अथवा उसके प्रवाहको रोकनेवाला, वास्तुविद्यापर जीविका चलानेवाला, प्यादेका काम करनेवाला और दाम लेकर पेड़ रोपनेवाला श्राद्धादि कर्म्ममें त्याज्य हैं।

**श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च।**
**हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥१६४॥**

कुत्तेके साथ क्रीड़ा करनेवाला, बाज पक्षीको शिकारी बनाकर उसके द्वारा जीविका चलानेवाला, कन्याको दुराचारसे दूषित करनेवाला, हिंसारत, शूद्रकी वृत्तिवाला, और विनायक आदि गणोंके यज्ञ करनेवाला—ये सब श्राद्धादि कर्ममें त्याज्य हैं।

**आचारहीनः क्लीवश्च नित्यं याचनकस्तथा।**
**कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥१६५॥**

गुरु और अतिथियोंके प्रति शिष्टाचार-रहित, स्वधर्मपालनमें कातर, नित्य याचना करके दूसरोंको कष्ट देनेवाला, खेती करके जीनेवाला और पीलपांववाला, इन सबको पण्डितोंने श्राद्धान्नके लिये निन्दित बताया है ।

औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ।
प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥१६६॥

भेड़ और भैंसोंसे जीविका चलानेवाला, विधवासे विवाह करनेवाला और द्रव्यके लिये प्रेतका दाहादि करनेवाला श्राद्धमें यत्नसे त्यागनेयोग्य हैं ।

एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान्द्विजाधमान् ।
द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् ॥१६७॥

विद्वान् ब्राह्मण इन निन्दित आचारवाले अपांक्तेय ( पंक्तिमें न बैठानेयोग्य ) अधम ब्राह्मणोंको देवकर्म्म और पितृकर्म दोनोंमें त्याग दे ।

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥१६८॥

वेदाध्ययनसे रहित ब्राह्मण तिनकेकी आगके समान निस्तेज होता है । उसको हव्य नहीं देना चाहिये, क्योंकि भस्ममें होम नहीं दिया जाता ।

अपाङ्क्तदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः ।
दैवे हविषि पित्र्ये वा तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥१६९॥

पंक्तिमें बैठाकर न खिलाने योग्य ब्राह्मणको देवकर्म या श्राद्धमें भोजन करानेका जो फल होता है वह सब मैं अब कहूंगा ।

अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्रादिभिस्तथा ।
अपाङ्क्तेयैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥१७०॥

ब्रह्मचर्यव्रतहीन और परिवेत्ता आदि जितने अपांक्तेय ब्राह्मण हैं, उनका किया हुआ भोजन राक्षसके पेटमें चला जाता है।

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥१७१॥

बड़े भाईके रहते यदि छोटा भाई व्याह कर ले और अग्निहोत्रकी क्रिया करे तो वह परिवेत्ता और उसका बड़ा भाई परिवित्ति होता है।

परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते।
सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपञ्चमाः ॥१७२॥

परिवित्ति, परिवेत्ता, और वह कन्या जिससे इनका विवाह होता है, कन्यादान करनेवाला और विवाहमें होम करनेवाला, ये पांचों नरकगामी होते हैं।

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः।
धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः ॥१७३॥

बड़े भाईके मरनेपर उसकी स्त्रीसे धर्मपूर्वक नियोग करनेपर यदि कामवश वह उस स्त्रीमें अनुरक्त हो तो उसे दिधिषूपति कहते हैं।

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ।
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः ॥१७४॥

परस्त्रियोंमें कुण्ड और गोलक नामक दो पुत्र उत्पन्न होते हैं। जिसका स्वामी जीता हो, उस स्त्रीमें दूसरे पुरुषसे जो पुत्र जन्म ग्रहण करता है उसे कुण्ड और पतिके मरनेपर जो अन्य पुरुषसे पुत्र उत्पन्न होता है उसे गोलक कहते हैं।

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च।
दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥१७५॥

परस्त्रियोंमें उत्पन्न ये दोनों पुत्र (कुण्ड और गोलक) दाताओंके

दिये हुए हव्य-कव्यको नष्ट करते हैं। इस लोकमें या परलोकमें कहीं इनको फल नहीं मिलता।

अपाङ्क्त्यो यावतः पाङ्क्त्यान्भुञ्जानाननुपश्यति ।
तावतां न फलं तत्र दाता प्राप्नोति बालिशः ॥१७६॥

श्राद्धमें भोजन करते समय जितने सद्ब्राह्मणोंपर त्याज्य ब्राह्मण-की दृष्टि पड़ती है, यज्ञ श्राद्धकर्त्ताको उतने ब्राह्मणोंको भोजन कराने-का फल नहीं मिलता।

वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः षष्टेः श्वित्री शतस्य तु ।
पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥१७७॥

श्राद्धमें भोजन करनेवाला १ अन्धा ९० सद्ब्राह्मणोंको, काना ६० ब्राह्मणोंको, श्वेतकुष्टवाला १०० ब्राह्मणोंको और पापरोगी दाताके १००० ब्राह्मणोंको खिलानेका फल नाश करता है।

यावतः संस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणाञ्छूद्रयाजकः ।
तावतां न भवेद्दातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥१७८॥

शूद्रोंको यज्ञ करानेवाला विप्र जितने ब्राह्मणोंको अपने शरीरसे स्पर्श करता है उतने ब्राह्मणोंको भोजन करानेका पूरा फल श्राद्धकर्त्ता-को नहीं मिलता।

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ।
विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥१७९॥

वेद जाननेवाला ब्राह्मण भी यदि लोभसे शूद्र पुरोहितका दान ले तो वह पानीमें डाले हुए मिट्टीके कच्चे घड़ेकी तरह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम् ।
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषौ ॥१८०॥

सोमरस बेचनेवालेको दिया हुआ श्राद्धान्न विष्ठा और वैद्यको

खिलाया हुआ हव्य-कव्य पीब-लहू होकर प्राप्त होता है। देवांश-भोजीको दिया हुआ नष्ट हो जाता है और सूद खानेवालेको देनेसे कोई फल नहीं होता।

यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद्भवेत् ।
भस्मनीव हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ॥१८१॥

वणिक्वृत्तिसे जीनेवालेको श्राद्धान्न खिलानेसे न इस लोकमें और न परलोकमें ही कुछ फल मिलता है। पुनर्विवाहिता स्त्रीके पुत्रको दिया हुआ हव्य भी भस्ममें डाली हुई आहुतिके समान निष्फल है।

इतरेषु त्वपाङ्क्त्येषु यथोद्दिष्टेष्वसाधुषु ।
मेदोसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥१८२॥

हव्य-कव्यके लिये अन्य जितने नीच वृत्तिवाले ब्राह्मण त्याज्य कहे गये हैं, उन्हें श्राद्धादिमें दिया हुआ अन्न श्राद्धकर्त्ताके लिये मेद, मांस, रक्त, मज्जा और हड्डी होता है; ऐसा पण्डित लोग कहते हैं।

अपाङ्क्त्योपहता पङ्क्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः ।
तान्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पङ्क्तिपावनान् १८३

अपांक्तेयों ( जो पंक्तिमें बैठनेयोग्य नहीं हैं ) के द्वारा दूषित पंक्ति जिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे पवित्र होती है, उन पंक्तिपावन ब्राह्मणोंका पूरा परिचय सुनिये।

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥१८४॥

जो षडङ्ग सहित चारों वेदोंमें अग्रगण्य हों, श्रोत्रियके वंशमें जिनका जन्म हो, उन्हें पंक्तिपावन जानना चाहिये।

त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।
ब्रह्मदेयात्मसंतानो ज्येष्ठसामग एव च ॥१८५॥

त्रिणाचिकेत् ( अर्थात् यजुर्वेद जिसने पढ़ा और उसका व्रत साधा है ), और अग्निहोत्री, त्रिसुपर्ण ( ऋग्वेद भागज्ञाता या तदुक्त व्रतका व्रती ), शिक्षा आदि छः अङ्गोंका ज्ञाता तथा उसकी शिक्षा देनेवाला, ब्राह्मविवाहसे विधिपूर्वक व्याही हुई स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न और आरण्यक उपनिषदोंमें गीयमान सामवेदका गानेवाला ये छः पंक्तिपावन हैं।

**वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ।**
**शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥१८६॥**

वेदका अर्थ जाननेवाला, वेदवक्ता, ब्रह्मचारी, सहस्रों गौओंका दान करनेवाला और सौ वर्षका वृद्ध ब्राह्मण ये सभी पंक्तिपावन हैं।

**पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ।**
**निमन्त्रयेत त्र्यवरान्सम्यग्विप्रान्यथोदितान् ॥१८७॥**

श्राद्धकर्म उपस्थित होनेपर श्राद्धके एक दिन पहले या उसी दिन पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त कमसे कम तीन ब्राह्मणोंको विनयपूर्वक निमन्त्रण दे ।

**निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा ।**
**न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥१८८॥**

श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मण (निमन्त्रण पानेके समयसे) संयतेन्द्रिय होकर रहे । नित्यके कर्तव्य जपादिके अतिरिक्त अन्य वेदपाठ न करे । श्राद्धकर्ता भी इस नियमका पालन करे ।

**निमन्त्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ।**
**वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥१८९॥**

उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें पितर गुप्तरूपसे अधिष्ठान करते हैं । प्राणवायुकी भांति उनके चलते समय वे चलते हैं और बैठते समय उनके साथ बैठते हैं ।

केतितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः ।
कथंचिदप्यतिक्रामन्पापः सूकरतां व्रजेत् ॥१९०॥

देवकर्म या पितृकर्ममें विधिपूर्वक निमन्त्रित ब्राह्मण निमन्त्रण स्वीकार करके किसी कारणसे यदि भोजन न करे तो उस पापसे जन्मांतरमें वह सूअर होता है ।

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते ।
दातुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥१९१॥

श्राद्धमें निमन्त्रित होकर जो ब्राह्मण शूद्राके साथ विहार करता है, वह श्राद्धकर्ताके किये हुए सभी पापोंका भार अपने सिर चढ़ाता है।

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ।
न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥१९२॥

क्रोधरहित, अंतर्बहिः शुद्धिसे युक्त, सर्वदा ब्रह्मचारी, क्षमाशील, न्यस्त शस्त्र दयादि गुणोंसे युक्त अनादि देवतारूप, ऐसे पितर होते हैं ।

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ।
ये च यैरुपचर्याः स्युर्नियमैस्तान्निबोधत ॥१९३॥

जिसके द्वारा इन सब पितरोंकी उत्पत्ति हुई है, जो पितर हैं, जिन नियमोंसे उनकी उपचर्या करनी चाहिये, यह सब विषय अब सुनिये ।

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ।
तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥१९४॥

हिरण्यगर्भके पुत्र मनुजीके जो मरीचि आदि पुत्र हैं उन सब ऋषियोंके पुत्र ही पितर कहे गये हैं ।

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ।
अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः ॥१९५॥

विराटके पुत्र जो सोमसद् हैं वे ही साध्यगणके पितर हैं। मरीचि-के प्रसिद्ध पुत्र जो अग्निष्वात्त हैं वे देवताओंके पितर हैं।

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ॥१९६॥

अत्रिके पुत्र जो बर्हिषद हैं वे दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग, राक्षस, सुपर्ण और किन्नरोंके पितर हैं।

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः।
वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥१९७॥

ब्राह्मणोंके पितर सोमप, क्षत्रियोंके हविष्मन्त, वैश्योंके आज्यप और शूद्रोंके सुकालिन हैं।

सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥१९८॥

सोमप भृगुके, हविष्मन्त अङ्गिराके, आज्यप पुलस्त्यके और सुकालिन वसिष्ठके पुत्र हैं।

अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा।
अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत् ॥१९९॥

अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद, अग्निष्वात्त और सौम्य—ये ब्राह्मणोंके पितर हैं।

य एते तु गणा मुख्याः पितॄणां परिकीर्तिताः।
तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥२००॥

पितरोंके जो इतने मुख्य गण कहे गये हैं उनके फिर असंख्य पुत्र-पौत्रादि भी हैं, ऐसा समझिये।

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः।
देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥२०१॥

ऋषियोंसे पितर, पितरोंसे देवता और मनुष्य उत्पन्न हुए। देवताओंसे यह सारा चराचर जगत् क्रमसे उत्पन्न हुआ।

**राजतैर्भाजनैरेषामथो वा राजतान्वितैः।**
**वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥२०२॥**

इन पितरोंको चांदीके बर्तनमें या चांदी मिले ताँबेके पात्रोंमें श्रद्धासे दिया हुआ जल अक्षय सुखके लिये होता है।

**देवकार्याद्‌द्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते।**
**दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम् ॥२०३॥**

द्विजातियोंका देवकर्मसे पितृकर्म विशेष है; क्योंकि देवकर्म पितृकर्मका ही पूर्व पखिपूरक कहा गया है।

**तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत्।**
**रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥२०४॥**

उन पितरोंके रक्षास्वरूप दैवकर्म ( वैश्वदेव ) पहले करे, क्योंकि जो श्राद्ध रक्षारहित है, उसे राक्षस लोप कर देते हैं।

**दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्राद्यन्तं न तद्भवेत्।**
**पित्राद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥२०५॥**

श्राद्धकर्म्मका अन्त भी देवकर्मसे ही करे ( अर्थात् पूर्वमें देवताका आवाहन और अन्तमें विसर्जन करे, ) पित्राद्यन्त न करे। आरम्भ और अन्तमें इस प्रकार देवतार्चन किये बिना जो श्राद्ध करता है वह सवंश नष्ट होता है।

**शुचिं देशं विविक्तं च गोमयेनोपलेपयेत्।**
**दक्षिणाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥२०६॥**

श्राद्धका स्थान पवित्र और निर्जन हो। गोबरसे लीपपोतकर वह स्वच्छ किया जाय। स्थान दक्षिण ओर ढलता हो। यत्नपूर्वक ऐसा करना चाहिये।

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि ।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ॥२०७॥

उपवन या वनकी पवित्रभूमिमें या नदीतटमें या निर्जन स्थानमें पिण्डदानादिसे पितर सदा सन्तुष्ट होते हैं ।

आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक्पृथक् ।
उपस्पृष्टोदकान्सम्यग्विप्रांस्तानुपवेशयेत् ॥२०८॥

सम्यक् प्रकारसे स्नान और आचमन किये हुए उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंको पृथक् पृथक् कुशायुक्त पवित्र आसन या कुशासनपर बैठावे ।

उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ।
गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥२०९॥

उन विशुद्ध ब्राह्मणोंको आसनपर बैठाकर चन्दन, माला और धूप आदिसे देवपूर्वक* पूजन करे ।

तेषामुदकमानीय सपवित्रांस्तिलानपि ।
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥२१०॥

उन ब्राह्मणोंको तिल और दर्भसे युक्त अर्घ्य देकर, उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर, श्राद्धकर्ता अग्निमें मन्त्रपूर्वक होम करे ।

अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वाप्यायनमादितः ।
हविर्दानेन विधिवत्पश्चात्संतर्पयेत्पितॄन् ॥२११॥

पहले अग्नि, सोम और यमके निमित्त विधिपूर्वक पर्युक्षण करके हविष्य देकर तृप्त करे, पश्चात् पिण्डदानादिसे पितरोंका तृप्त करे ।

---

* वैश्वदेवनिमित्तक ब्राह्मणको पहले पूजित करके तब पितृनिमित्तक ब्राह्मणका पूजन करे ।

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।
यो ह्यग्निः स द्विजो विप्रैर्मन्त्रदर्शिभिरुच्यते ॥२१२॥

अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथमें ही पूर्वोक्त दोनों देवताओंके निमित्त आहुति दे । वेदमन्त्रके तत्वदर्शियोंने ब्राह्मण और अग्निको एक ही कहा है ।

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदन्त्येतान्पुरातनान् ।
लोकस्याप्यायने युक्ताञ्श्राद्धदेवान्द्विजोत्तमान् ॥२१३॥

जो क्रोधरहित, प्रसन्नमुख, अनादि प्रवाहरूप और लोकोपकारमें निरत हैं. ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मन्वादि मुनि श्राद्धीय अन्नके लिये देवतुल्य कहते हैं ।

अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्य विक्रमम् ।
अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥२१४॥

( पितृकर्म*के आरम्भमें देवताओंके निमित्त ) अग्नौकरण होम अपसव्य होकर करे और तब दाहिने हाथसे, पिण्ड रखनेकी जगहमें, जलका प्रक्षेप करे ।

त्रींस्तु तस्माद्धविः शेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ।
औदकेनैव विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥२१५॥

अनन्तर उस होमसे बचे हुए अन्नके तीन पिण्ड† बनावे । उन पिण्डोंको उदक ( जल ) से विधिपूर्वक अभिषिक्त करे और दक्षिण ओर मुंह करके उन पिण्डोंको उनके स्थानमें रखे ।

---

* पितृकर्म अपसव्य होकर करना चाहिये अर्थात् दाहिने कन्धेपर जनेऊ रख, बायां हाथ जनेऊके बाहर रखे ।

† "विल्वप्रमाणं पिण्डं स्यात्" अर्थात् बेलके बराबर उसी आकारका पिण्ड बनाना चाहिये ।

न्युप्य पिण्डांस्तत स्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम्।
तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेप भागिनाम् ॥२१६॥

उन पिण्डोंको विधिपूर्वक उन कुशोंपर रखकर कुशोंके मूलमें लेपभाग पितरोंकी तृप्तिके लिये अपना हाथ निर्लेप करे (अर्थात् धोये)।

आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून्।
षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्यात्पितृनेव च मन्त्रवित् ॥२१७॥

(अनन्तर) आचमन कर उत्तराभिमुख तीन बार यथाशक्ति प्राणायाम करके वसन्तादि ("वसन्ताय नमस्तुभ्यम्" इत्यादि मंत्रसे) छः ऋतुओंको और (दक्षिणाभिमुख होकर) "नमो वः पितरः" इत्यादि मन्त्रसे पितरोंको नमस्कार करे।

उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः।
अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः ॥२१८॥

पिण्डदानके पहले पिण्डाधार भूमिपर उदक छोड़नेके पश्चात् उसमेंसे जो उदक बचा हो वह पुनः प्रत्येक पिण्डके समीप छोड़े और उन पिण्डोंको जिस क्रमसे जल दिया हो उसी क्रमसे उनको एक एक करके सूंघे।

पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः।
तेनैव विप्रानासीनान्विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥२१९॥

पिण्डान्नसे थोड़ा-थोड़ा भाग लेकर, भोजनके पूर्व उन आमन्त्रित ब्राह्मणोंको यथाक्रम खिलावे। (अर्थात् पिताके उद्देश्यसे जो ब्राह्मण निमन्त्रित हों, उन्हें पितृपिण्डका अंश, उसी प्रकार पितामह और प्रपितामहके पिण्डका अंश भी उनके निमित्त निमन्त्रित ब्राह्मणोंको खिलावे।)

ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत्।
विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥२२०॥

यदि पिता जीवित हो तो पितामहादि पितरोंका श्राद्ध* करे और उन्हींको पिण्ड दे; अथवा अपने जीवित पिताको ब्राह्मणके स्थानमें ही भोजन करावे।

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः।
पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥२२१॥

जिसका पिता मर गया हो और पितामह ( बाबा ) जीवित हो वह पितामहको छोड़ पिता और प्रपितामहका श्राद्ध[1] करे।

पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः।
कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥२२२॥

श्राद्धमें जीवित पिताको खिलानेकी जो विधि पहले कही गयी है उसी विधिसे पितामह जीता हो तो उसे भी खिलावे अथवा पितामह अपने लिये जो आज्ञा दे वही करे। और पिता तथा प्रपितामहके निमित्त पिण्डदानपूर्वक ब्राह्मणभोजन करावे।

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सपवित्रं तिलोदकम्।
तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ॥२२३॥

उन ब्राह्मणोंके हाथोंमें पवित्र कुशसहित तिलोदक देकर "एषां स्वधा अस्तु" कहता हुआ पूर्वोक्त पिण्डोंमेंसे थोड़ा उन्हें दे।

पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्धितम्।
विप्रान्तिके पितॄन्ध्यायञ्शनकैरुपनिक्षिपेत् ॥२२४॥

भोजनकी सामग्रियोंसे भरे हुए पात्रको दोनों हाथोंसे लाकर पितरोंका ध्यान करता हुआ धीरे-धीरे ब्राह्मणोंके समीप रखे।

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते।
तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः ॥२२५॥

---

* श्राद्ध शब्दसे यहां पार्वण श्राद्ध समझना चाहिये।

[1] यो यो जीवति तं तं विहाय पिण्डं दद्यात्।

जो अन्न दोनों हाथोंसे पकड़कर नहीं लाया जाता, उसे दुष्ट बुद्धि राक्षस सहसा हरण कर लेते हैं। (इसलिये एक हाथसे अन्न लाकर नहीं परोसना चाहिये।)

गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयो दधि घृतं मधु।
विन्यसेत्प्रयतः पूर्वं भूमावेव समाहितः ॥२२६॥

अचार, चटनी, रायता आदि व्यंजन, सूपशाकादि तथा दूध, दही, घी और मधु आदि सब पदार्थ यत्नपूर्वक सावधानीसे भूमिपर ही लाकर पात्र-स्थानमें रखे।

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च।
हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च ॥२२७॥

विविध प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, फल, मूल, रोचक मांस और सुगन्धित जलादि, ये सब चीजें भी लाकर भूमिपर ही रखे।

उपनीय तु तत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः।
परिवेषयेत प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥२२८॥

धीरे-धीरे बड़ी सावधानीसे भोजनकी सब वस्तुयें लाकर उनके गुण वर्णन करते हुए उन्हें क्रमसे परोसे।

नास्रमापातयज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत्।
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैतदवधूनयेत् ॥२२९॥

ब्राह्मण-भोजनके समय कदापि आंसू न गिरावे, क्रोध न करे, झूठ न बोले, पैरसे अन्नको न छूये और न उसे परोसते हुए हिलावे या झेले।

अस्रं गमयति प्रेतान्कोपोऽरीननृतं शुनः।
पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥२३०॥

आंसू गिरानेसे वह श्राद्धान्न भूतोंको, क्रोध करनेसे शत्रुओंको, झूठ बोलनेसे कुत्तोंको, पैर छुआनेसे राक्षसोंको और उछलकर पात्रमें फेंकनेसे पापियोंको प्राप्त होता है।

यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्द्यादमत्सरः।
ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्यात्पितृणामेतदीप्सितम् ॥२३१॥

ब्राह्मणोंको जो वस्तु खानेमें अच्छी लगे वह प्रसन्न होकर उन्हें खिलावे। परमात्माके सम्बन्धकी कथा-वार्ता करे; क्योंकि पितरोंको ब्रह्मविषयक चर्चा बहुत प्रिय लगती है।

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥२३२॥

श्राद्धमें वेद, धर्मशास्त्र, आख्यान, इतिहास (महाभारत आदि), पुराण ( ब्रह्मपुराण आदि ) और खिल (श्रीसूक्तादि) पितरोंको सुनावे।

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः।
अन्नाद्येनासकृच्चैतान्गुणैश्च परिचोदयेत् ॥२३३॥

प्रसन्नचित्त होकर ब्राह्मणोंको हर्षित करे। उन्हें धीरे-धीरे भोजन करावे। खाद्य पदार्थोंके गुणोंका वर्णन करते हुए बार बार उन्हें आग्रह करे कि और कुछ लें।

व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्।
कुतपं चासनं दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥२३४॥

कन्याका पुत्र ब्रह्मचारी भी हो तो उसे श्राद्धमें यत्नपूर्वक भोजन करावे। नेपाली कम्बल उन्हें बैठनेके लिये दे और जिस स्थानपर श्राद्ध करना हो वहां तिलोंको छिटक दे।

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः।
त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥२३५॥

दौहित्र, कुतप* और तिल, ये तीनों श्राद्धमें पवित्र कहे गये हैं और शौच (पवित्रता), शान्तचित्तता तथा स्थिरता, इन तीनोंकी प्रशंसा की गयी है।

*मध्याह्नके एक दण्ड पूर्व और एक दण्ड परे अर्थात् दो दण्ड

अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्भुञ्जीरंस्ते च वाग्यताः ।
न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणान् ॥२३६॥

भोजनके सभी पदार्थ गरमागरम रहने चाहिये और ब्राह्मण वाणीका संयम करके उन पदार्थोंको पावे। श्राद्धकर्ता भोज्य वस्तुओंका गुण-दोष पूछे तौभी ब्राह्मण कुछ न बतलाये।

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ।
पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥२३७॥

जबतक अन्न गरम रहता है, जबतक ब्राह्मण मौन होकर भोजन करते हैं और जबतक भोज्य वस्तुओंके गुण ब्राह्मण नहीं बतलाते तबतक पितर भोजन करते हैं।

यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।
सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥२३८॥

सिरमें कपड़ा लपेटकर या दक्षिण ओर मुंह करके या खड़ाऊं पहनकर जो भोजन किया जाता है—वह राक्षसोंको प्राप्त होता है, पितरोंको नहीं।

चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च ।
रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् ॥२३९॥

चाण्डाल, सूअर, मुर्गा, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और नपुंसक—ये भोजन करते समय ब्राह्मणोंको न देखें।

होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते ।
दैवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्ययथातथम् ॥२४०॥

---

कुतप काल कहा गया है, जो पितृकर्मके लिये श्रेष्ठ है। कुतप बकरेके ऊनके कम्बलको भी कहते हैं और भांजाको भी। शातातपके मतसे कुतप काल यों लिखा है—दिवसस्याष्टमे भागे मन्दी भवति भास्करः। स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणामन्न भक्षयम् ॥

होम, दान, ब्राह्मणभोजन, देवकर्म और पितृकर्मको यदि ये देख लें तो वह निष्फल हो जाता है।

घ्राणेन सूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः ।
श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनावरवर्णजः ॥२४१॥

सूअर उस अन्नकी गन्धको सूंघकर, मुर्गा अपने पंखकी हवा लगाकर, कुत्ता नजर गड़ाकर और शूद्र छूकर श्राद्धान्नको निष्फल कर डालता है।

खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि वा भवेत् ।
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः ॥२४२॥

लंगड़ा, काना, श्राद्धकर्ताका सेवक, हीनाङ्ग या अधिकाङ्ग, इन सबको श्राद्धस्थलसे हटा दे।

ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रतिपूजयेत् ॥२४३॥

ब्राह्मण या भिक्षुक कोई भोजनार्थ उपस्थित हो तो निमन्त्रित ब्राह्मणोंसे आदिष्ट होनेपर श्राद्धकर्ता उन्हें यथाशक्ति भोजन और भिक्षा देकर सत्कृत करे।

सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा ।
समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि ॥२४४॥

सब प्रकारकी भोजन-सामग्रियोंको एकत्र करके और उन्हें जलसे आप्लावित करके, भोजन किये हुए ब्राह्मणोंके आगे भूमिमें कुशोंपर डाल दे।

असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ।
उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ॥२४५॥

अग्निसंस्कारके अनधिकारी मृत बालकों और कुलवधुओंको त्यागनेवालोंका भाग पात्रस्थित जूठन और कुशोंपर डाला हुआ यह अन्न होता है।

उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ।
दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥२४६॥

अच्छे शील स्वभाववाले दासवर्गका श्राद्धमें भूमिपर गिरा हुआ जूठा अन्न भाग होता है, ऐसा ऋषियोंने कहा है।

आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ।
अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥२४७॥

मृत द्विजातिका जो सपीण्डीकरण श्राद्धपर्यन्त करना होता है, वह देवस्थानमें ब्राह्मण न बैठाकर केवल पितृस्थानमें ब्राह्मणको भोजन कराके ही करना चाहिये और एक ही पिण्ड देना चाहिये।

सहपिण्डक्रियायां तु कृतायामस्य धर्मतः ।
अनयैवावृता कार्यं पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥२४८॥

यथोक्त विधिसे सपिण्डीकरण श्राद्ध कर चुकनेपर अमावास्यामें जो पार्वणश्राद्धकी विधि कही है, उसी विधिसे क्षयाहादिमें पुत्रोंको पितृनिमित्त पिण्डदान करना चाहिये।

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ।
स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥२४९॥

श्राद्धान्न खाकर जो ब्राह्मण शूद्रको उच्छिष्ट देता है, वह नीचे मूंडी ऊपर टांग करके कालसूत्र नामक नरकमें जा गिरता है।

श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तदहर्योऽधिगच्छति ।
तस्याः पुरीषे तन्मासं पितरस्तस्य शेरते ॥२५०॥

श्राद्धान्न खाकर यदि ब्राह्मण उस दिन शूद्राके साथ रमण करे तो उसके पितर एक मासतक उस स्त्रीकी विष्ठामें वास करते हैं।

पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ।
आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति ॥२५१॥

ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त जानकर यह पूछे कि अच्छी तरह भोजन तो हुआ। तब उनसे मुखप्रक्षालनादि करावे और उनके आचमन कर चुकनेपर उनसे विनय करे कि अब आपकी जैसी इच्छा हो, यहां रहें या अपने घर जायं।

स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम्।
स्वधाकारः पराह्याशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥२५२॥

इसके अनन्तर ब्राह्मण उसे "स्वधाऽस्तु" ऐसा कहें; क्योंकि पितृकर्मोंमें स्वधाकार सबसे श्रेष्ठ आशीर्वाद है।

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत्।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥२५३॥

जो कुछ भोज्य सामग्री बची हो वह भोजन किये हुए उन ब्राह्मणोंसे निवेदन करे। वे उस अन्नके सम्बन्धमें जो करनेको कहें वह करे।

पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठे तु सुश्रुतम्।
संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि ॥२५४॥

एकोद्दिष्ट श्राद्धमें "स्वदितं", गोष्ठी श्राद्धमें "सुश्रुतं", आभ्युदयिक श्राद्धमें "सम्पन्नं" और देवताप्रीत्यर्थ किये गये श्राद्धमें "रुचितं" इस प्रकार तृप्तिका प्रश्न करे।

अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसम्पादनं तिलाः।
सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥२५५॥

अपराह्ण, कुश, गायके गोबरसे श्राद्धस्थानका संशोधन, तिल, उदारतापूर्वक अन्नदान, भोज्य वस्तुओंका परिष्कार, पंक्तिपावन (वेदाध्यायी) ब्राह्मण, यही सब श्राद्धकी सम्पत्ति हैं।

दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः।
पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसम्पदः ॥२५६॥

कुश, मन्त्र, पूर्वाह्न, सब प्रकारके हविष्य और पूर्व श्लोकमें जो सब पवित्र वस्तुयें कही गयी हैं—यह सब हव्य-सम्पदा अर्थात् देव-कर्मकी सम्पत्ति हैं ।

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ।
अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते ॥२५७॥

वानप्रस्थ मुनियोंके खाद्य अन्न, दूध, सोमरस, अविकृत मांस और सेन्धा नमक—ये स्वभावसे ही हवि कहे गये हैं ।

विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः ।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्याचेतेमान्वरान्पितॄन् ॥२५८॥

उन ब्राह्मणोंको जानेकी अनुमति देनेपर संयतचित्त, वाचंयम और पवित्र होकर दक्षिण दिशाकी ओर देखता हुआ पितरोंसे ये अभिलषित वर मांगे ।

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च ।
श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति ॥२५९॥

हमारे कुलमें दाता-पुरुषोंकी वृद्धि हो, यज्ञादिकोंके अनुष्ठानसे वेदकी वृद्धि हो, पुत्र-पौत्रादि संततिकी वृद्धि हो, वेद-ब्राह्मणोंके प्रति हमारी श्रद्धा न घटे और हमारे पास दातव्य अन्न-धन भी बहुत हो ।*

एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् ।
गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वाक्षिपेत् ॥२६०॥

इस प्रकार पिण्डदान करके वर मांगनेके पश्चात् वे पिण्ड गौ या ब्राह्मण, या बकरेको खिलावे अथवा आग या पानीमें डाल दे ।

*गोत्रन्नो वर्द्धतां दातारो नोभिवर्द्धन्तां वेदासन्ततिरेव च श्रद्धा चनोमा व्यगमद् बहुदेयञ्च नोऽन्नं बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि—इत्यादि ।

पिण्डनिर्वपणं केचित्पुरस्तादेव कुर्वते ।
वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥२६१॥

कोई आचार्य ब्राह्मणभोजनके अनन्तर पिण्डदान करते हैं, कोई अपनी इच्छाके अनुसार वे पिण्ड पक्षियोंको खिलाते हैं, कोई आग या पानीमें डाल देते हैं।

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥२६२॥

जो स्वजातिकी व्याही स्त्री पतिव्रता पितरोंकी पूजामें तनमनसे लगी हो और पुत्रकी इच्छा रखती हो वह तीनों पिण्डोंके बीचका ( पितामहके निमित्त दिया हुआ ) पिण्ड खाय ।

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्त्विकं धार्मिकं तथा ॥२६३॥

उस पिण्डके खानेसे उस स्त्रीके दीर्घजीवी, यशस्वी, बुद्धिमान, धनवान, प्रजावान, सत्वगुणी और धार्मिक पुत्र पैदा होता है।

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं प्रकल्पयेत् ।
ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा बान्धवानपि भोजयेत् ॥२६४॥

इसके बाद हाथ-पैर धो आचमन कर कुटुम्बियोंको सादर भोजन कराकर बान्धवोंको भी खिलावे।

उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ।
ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥२६५॥

जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन न हो तबतक उनका उच्छिष्ट न हटाना चाहिये। श्राद्ध-क्रिया सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न हो जानेपर बलिवैश्वदेव होम आदि नित्यकर्म करना चाहिये।

हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्याय कल्प्यते ।
पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२६६॥

पितरोंको विधिवत् दिया हुआ हव्य जो उन्हें चिरकाल या अनन्त कालके लिये तृप्ति देनेवाला होता है, वह सब अब कहता हूं।

तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा ।
दत्तेन मासं तृप्यन्ति विधिवत्पितरो नृणाम् ॥२६७॥

तिल, धान्य, जव, उर्द, जल, मूल और फल इनमेंसे कोई एक वस्तु विधिवत् देनेसे पितर मनुष्योंके एक महीनेतक तृप्त होते हैं।

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारिणेन तु ।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै ॥२६८॥

पाठीन आदि मछलियोंके मांससे दो महीने, हरिणके मांससे तीन महीने, भेड़के मांससे चार महीने और खाद्य पक्षीके मांससे पाँच महीनेतक पितरोंकी तृप्ति होती है।

षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै ।
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु ॥२६९॥

बकरेके मांससे छः महीने, पृषत् ( चित्र मृग )के मांससे सात महीने, एण जातीय हरिणके मांससे आठ महीने और रुरु नामक मृगके मांससे नौ महीनेतक पितरोंकी तृप्ति होती है।

दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः ।
शशकूर्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु ॥२७०॥

जंगली सूअर और जंगली भैंसेके मांससे दस मास और खरहे तथा कछुएके मांससे ग्यारह मासतक पितर तृप्त होते हैं।

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥२७१॥

गायके दूध या पायस (खीर) से एक वर्षतक और वार्ध्रीणस*के मांससे बारह वर्षतक पितरोंकी तृप्ति होती है।

---

* त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्ध मजापतिम् ॥ वार्ध्रीणसंतुतं

कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु।
आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥२७२॥

कालशाक (सरहची), चँगड़ी मछली, गैंड़े और लाल वर्णके बकरेका मांस, शहद तथा नीवार आदि पवित्र अन्न—इन सबसे पितरोंको अनन्त कालतक तृप्ति होती है।

यत्किंचिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम्।
तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च ॥२७३॥

वर्षाऋतुकी माघायुक्त त्रयोदशी तिथिमें मधुसे मिला हुआ जो कुछ पितरोंको दिया जाता है वह भी अक्षय होता है।

अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्।
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥२७४॥

पितर यह आशा करते हैं कि हमारे कुलमें कोई ऐसा जन्म ले जो हमलोगोंको त्रयोदशी तिथिमें या हाथीकी छाया पूर्व दिशामें हो ऐसे समय किसी भी तिथिमें मधु और घृतसे मिला हुआ पायस (गोदुग्धकी खीर) दे।

यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः।
तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् ॥२७५॥

श्रद्धासहित विधिपूर्वक सम्यक् प्रकारसे जो कुछ पितरोंको दिया जाता है, वह परलोकमें उनकी तृप्तिके लिये सदा अक्षय होता है।

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्।
श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ॥२७६॥

---

प्राहुर्याज्ञिकाः पितृकर्मणि ॥ वार्ध्रीणस उस बकरेको कहते हैं जिसके कान इतने लम्बे हों कि जलाशयमें पानी पीते समय वे जलमें भींगते हों।

कृष्णपक्षकी दशमीसे लेकर अमावास्यापर्यन्त छः तिथियोंमें चतुर्दशीको छोड़ शेष पांच तिथियां श्राद्धके लिये जैसी प्रशस्त हैं वैसी और तिथियां नहीं हैं।

युक्षु कुर्वन्दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ।
अयुक्षु तु पितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥२७७॥

युग्म [ सम ] तिथि नक्षत्रमें यथा दूज, चौथा आदि तिथियों और भरणी, रोहिणी आदि नक्षत्रोंमें पितृश्राद्ध करनेसे सकल कामना सिद्ध होती है। विषम तिथि नक्षत्रमें यथा प्रतिपदा, तृतीया आदि तिथियों और अश्विनी, कृत्तिका आदि नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेसे धन-विद्यासे परिपूर्ण सन्तानें प्राप्त होती हैं।

यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ।
तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते ॥२७८॥

श्राद्धमें जैसे पूर्व ( शुक्ल ) पक्षसे अपर ( कृष्ण ) पक्ष विशेष है, वैसे ही पूर्वाह्णकी अपेक्षा अपराह्ण विशेष है।

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ।
पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ॥२७९॥

दाहिने कन्धेपर जनेऊ रख ( अपसव्य होकर ) आलस्यरहित हो हाथमें कुशा लेकर शास्त्रोक्त विधिसे जबतक जिये पितृकर्म्म करे।

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा ।
संध्ययोरुभयोश्चैव सूर्ये चैवाचिरोदिते ॥२८०॥

रातमें श्राद्धक्रिया न करे, क्योंकि रात राक्षसी कही गयी है। दोनों सन्ध्याओं (प्रातःसायंकाल) में श्राद्ध न करे और सूर्योदय समकालमें भी न करे।

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ।
हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहं ॥२८१॥

इस प्रकार वर्षमें कम-से-कम तीन बार अर्थात् हेमन्त, ग्रीष्म और वर्षामें श्राद्ध अवश्य करना चाहिये और पञ्चमहायज्ञान्तर्गत श्राद्ध तो नित्य ही करे।

न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते।
न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः ॥२८२॥

पितृयज्ञीय होम लौकिक अग्निमें करना विधि नहीं है। आहिताग्नि द्विजको अमावास्या तिथिके अतिरिक्त अन्य तिथिमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये।

यदेव तर्पयत्यद्भिः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तमः।
तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥२८३॥

ब्राह्मण स्नान करके जो जलसे पितृतर्पण करता है, उसीसे वह नित्य श्राद्धक्रियाका फल पाता है।

वसून्वदन्ति तु पितॄन्रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी ॥२८४॥

मनु आदि ऋषियोंने पिताको वसु, पितामहको रुद्र और प्रपितामहको आदित्य कहा है। (इसलिये पितरोंका ध्यान देवता रूपमें करे।) यह सनातन श्रुति है।*

विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं वामृतभोजनः।
विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथामृतम् ॥२८५॥

नित्य विघसाशी हो या नित्य अमृतभोजी हो। अतिथि ब्राह्मणोंको खिलाकर जो अन्न बचे उसे विघस कहते हैं और यज्ञावशिष्ट अन्नको अमृत कहते हैं।

---

* पैठीनसिने कहा है—य एवं विद्वान् पितॄन् यजते वसवो रुद्रा आदित्याश्चास्य प्रीता भवन्ति।

एतद्वोऽभिहितं सर्वं विधानं पाञ्चयज्ञिकम् ।
द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥२८६॥

यह पञ्चयज्ञ-सम्बन्धी सारा विधान आप लोगोंसे कहा, अब ब्राह्मणोंकी वृत्तिका विधान सुनिये ।

* तृतीय अध्याय समाप्त *

---

## अध्याय ४



चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥१॥

ब्राह्मण अपने जीवनका पहला चौथा हिस्सा गुरुके आश्रममें रह-कर बितावे । (वेदमें लिखा है "शतायुर्वैपुरुषः" । इसके अनुसार १०० वर्ष पूर्णायु मान लें तो २५ वर्षतक ब्रह्मचर्यपूर्वक वेद पढ़े ।) जीवनका दूसरा हिस्सा विवाह करके गृहस्थाश्रममें व्यतीत करे ।

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः ।
या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥२॥

ब्राह्मणको चाहिये कि किसी प्राणीको बिना कष्ट पहुंचाये (अर्थात् शिलोञ्छवृत्तिसे ) अथवा इसके अभावमें दूसरेको थोड़ा कष्ट देकर (अर्थात् याचना-वृत्तिसे ) निरापद अवस्थामें जीवननिर्वाह करे ।

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः ।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम् ॥३॥

अपने विहित कर्मोंके द्वारा, शरीरको कष्ट न देकर, केवल प्राण-रक्षाके निमित्त धन-धान्यका संग्रह करे ।

ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥४॥

निरापद अवस्थामें ब्राह्मण ऋत या अमृतसे, मृत या प्रमृतसे अथवा सत्य या असत्यसे जीये, परन्तु कुत्तेकी वृत्तिका अवलम्बन कभी न करे।

ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम्।
मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥५॥

शिलोञ्छ* वृत्तिसे जो कुछ मिले वह ऋत, बिना मांगे जो मिले वह अमृत, याचना करनेसे जो मिले वह मृत और कृषिकर्मसे जो मिले वह प्रमृत कहाता है।

सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते।
सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥६॥

सत्यानृत वाणिज्यको कहते हैं, इससे भी जीवन-निर्वाह करे; परन्तु सेवा कुत्ते की वृत्ति कही गयी है, इसलिये इसका त्याग करना चाहिये।

कुसूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा।
त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥७॥

गृहस्थ कुसूलधान्यक हो (अर्थात् वह इतना अन्न सञ्चय करे जिससे तीन वर्ष या उससे भी अधिक समयतक घरका खर्च चला सके) अथवा कुंभीधान्यक हो (अर्थात् एक सालके खर्चयोग्य अन्न संचित करे) अथवा त्र्यहैहिक हो (अर्थात् तीन दिनयोग्य अन्न संचित करनेवाला हो); अथवा अश्वस्तनिक हो (अर्थात् उतना ही अन्न संग्रह करे जो कलके लिये न बचे)।

---

* धानकी फलियोंको चुननेका नाम शिल है। खेतमें गिरे हुए दानेको चुनना उञ्छ कहाता है।

चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् ।
ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥८॥

इन चारों प्रकारके गृहस्थ ब्राह्मणोंमें एक दूसरेसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं; क्योंकि ( वृत्तिके लिये जिसे जितनी कम चिन्ता रहती है ) वह उतना ही सुखी और सन्तोषधर्मसे स्वर्गादि लोकोंको जीतनेवाला होता है ।

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते ।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥९॥

इन गृहस्थोंमें कोई तो षट्कर्म्मी होता है अर्थात् जिसके पोष्यवर्ग बहुत हैं, वह ऋत, अयाचित, याचित, कृषि, वाणिज्य और व्याज, इन छओंसे जीता है । कोई तीन कर्मोंसे अर्थात् याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह ( दान लेने ) से और कोई याजन, अध्यापनसे तथा अवशिष्ट चौथा ब्राह्मण वेदाध्यापनसे ही जीता है । (सारांश यह कि चार प्रकारके संचयी गृहस्थोंमें कुसूलधान्यक पूर्वोक्त छः प्रकारके कर्मोंसे जीता है । कुम्भीधान्यक, उञ्छशिल, अयाचित या याचित, इन तीनोंमें किसी एकका या तीनों वृत्तियोंका आश्रयण कर जीता है । तीन दिनके योग्य अन्न संचित करनेवाला शिलोञ्छ या अयाचित वृत्तिसे निर्वाह करता है और नित्य-का-नित्य सञ्चय करनेवाला गृहस्थ ब्राह्मण केवल वेदाध्यापनसे जीवन व्यतीत करता है । )

वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ।
इष्टीः पार्वायनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सदा ॥१०॥

शिलोञ्छवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करता हुआ अग्निहोत्र करे और अमावास्या और पूर्णिमा आदि पर्वों तथा अयनोंपर होनेवाले यज्ञोंको सदा करे ।

न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥११॥

जीविकाके लिये साधारण लोगोंकी भांति कभी मिथ्या प्रिय भाषण, मसखरापन आदि नीच वृत्तिका अवलम्बन न करे। झूठी आत्मप्रशंसा और दम्भ-कपट आदि त्यागकर ब्राह्मणकी जो शुद्ध जीविका हो उसीसे जीये।

संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥१२॥

जिसे सुखकी इच्छा हो वह परम सन्तोष धारण कर मनको किसी ओर बहकने न दे; क्योंकि सन्तोष सुखका और असन्तोष दुःखका मूल है।

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः।
स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥१३॥

गृहस्थ ब्राह्मणको चाहिये कि पूर्वोक्त वृत्तियोंमें किसी एक वृत्तिका अवलम्बन कर अपनी जीविका चलाता हुआ स्वर्ग, आयु और यशको देनेवाले आगे कहे व्रतोंका पालन करे।

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१४॥

आलस्यरहित होकर नित्य अपना वेदोक्त कर्म करे, क्योंकि यह यथाशक्ति करनेसे कर्म करनेवाला परमगतिको प्राप्त होता है।

नेहेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः ॥१५॥

ब्राह्मण गाने-बजानेकी वृत्तिसे या शास्त्रविरुद्ध कर्मसे धन प्राप्त करनेकी इच्छा न करे। धन रहते या न रहते, आपत्कालमें भी जिस-तिससे अर्थात् पतितोंसे द्रव्य न ले।

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्तयेत् ॥१६॥

इन्द्रियोंके रूप, रस, गन्ध आदि जो पांच विषय हैं उनमें उप-भोग-बुद्धिसे किसी एकमें भी आसक्त न हो। विषयोंको अनित्य जान इनकी अत्यासक्तिको मनसे रोके।

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ।
यथातथाध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१७॥

वेद-विरुद्ध सभी अर्थोंको त्याग, जिस प्रकारसे हो वेद पढ़ाता हुआ परिवार-पोषणके साथ अपनी जीविका चलावे। गृहस्थ ब्राह्म-णकी सार्थकता इसीमें है। ( अभिप्राय यह कि जिस वृत्तिके अव-लम्बनसे वेदाध्यापनमें बाधा पड़े वह वृत्ति न करे।)

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥१८॥

वयस, क्रिया, धन, विद्या और कुल, इनके अनुरूप भेष, वचन और बुद्धि रखता हुआ संसारमें रहे।

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥१९॥

बुद्धिको शीघ्र बढ़ानेवाले और धन तथा आरोग्यकी शिक्षा देने-वाले शास्त्रोंका नित्य अवलोकन करे और वेदार्थके प्रतिपादक निगम ग्रन्थोंको भी पढ़े।

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥२०॥

पुरुष जैसे-जैसे शास्त्रका विशेषरूपसे अध्ययन करता है, वैसे-वैसे उसका ज्ञान बढ़ता है और विज्ञान उज्ज्वल होता है। ( यहां रुच् धातु अभिलाषार्थक न होकर दीप्त्यर्थक है, इस कारण इसके साथ सम्प्रदानका प्रयोग न करके षष्ठी कारकका प्रयोग किया गया है।)

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥२१॥

ऋषियज्ञ ( वेदाध्ययन ), देवयज्ञ (होम), भूतयज्ञ ( वलि ), नृयज्ञ (अतिथि-सेवा) और पितृयज्ञ (तर्पण) इनका यथाशक्ति कभी त्याग न करे ।

एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो जनाः ।
अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ॥२२॥

यज्ञशास्त्रके जाननेवाले कितने ही श्रेष्ठ गृहस्थ लोग इन महा-यज्ञोंको न करते हुए भी सदा ज्ञानेन्द्रियोंमें विषयोंका हवन करके इस प्रकार इन यज्ञोंका सम्पादन करते हैं ।

वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा ।
वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम् ॥२३॥

कोई-कोई ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ वाणी और प्राणमें यज्ञका अक्षय फल देखते हुए वाणीमें प्राण और प्राणमें वाणीका हवन करते हैं अर्थात् प्राण और वचन दोनोंको अपने अधीन कर लेते हैं ।

ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतैर्मखैः सदा ।
ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥२४॥

कितने ही ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण ज्ञानचक्षुसे इन यज्ञोंकी क्रियाको ज्ञानमूलक जानकर ज्ञानके द्वारा ही इन पञ्चमहायज्ञोंका फल पा लेते हैं ।

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ।
दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥२५॥

कोई गृहस्थ नित्य भोर और सांझको अग्निहोत्र करता है और पक्षके अन्तमें अर्थात् अमावास्या और पूर्णिमाको देवताओंका यजन करता है ।

सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते द्विजोऽध्वरैः ।
पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥२६॥

पुराने धानकी समाप्ति होनेपर नये अन्नसे यज्ञ करे। ऋतुके अन्तमें चातुर्मासक यज्ञ करे ( यहां चार-चार महीनेकी ऋतु मानी गयी है । ) दक्षिणायन और उत्तरायणके आरम्भमें पशुके द्वारा यज्ञ करे तथा वर्षके अन्तमें (चैत्रशुक्ल प्रतिपदासे नवीन वर्षका आरम्भ माननेसे शिशिरमें वर्षकी समाप्ति होती है ।) सौमिक अर्थात् सोमरस-साध्य अग्निष्टोम आदि यज्ञ करे ।

नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः ।
नवान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥२७॥

दीर्घ जीवनकी इच्छा रखनेवाला अग्निहोत्री ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आग्रयणेष्टि किये विना नवान्न और चातुर्मासिक यज्ञ किये विना मांस न खाय ।

नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुहव्येन चाग्नयः ।
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्धिनः ॥२८॥

क्योंकि नये अन्न और मांसके परम अभिलाषी अग्निदेव नवान्न और पशुसे पूजित न होनेपर अर्थात् उन दोनों वस्तुओंकी आहुति न पानेपर अग्निहोत्रीके ही प्राणका हवन चाहते हैं ।

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ।
नास्य कश्चिद्वसेद्गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥२९॥

गृहस्थके घरमें यथाशक्ति आसन, भोजन, शय्या और कन्द, मूल, फल तथा जलसे सत्कृत हुए बिना कोई अतिथि न रहे (अर्थात् गृहस्थको अपनी शक्तिके अनुसार अतिथिकी सेवा अवश्य करनी चाहिये ) ।

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥३०॥

पाषंडी ( वेदबाह्य व्रतोंके चिह्न धारण करनेवाले ) निषिद्ध कर्म करनेवाले, वैडालव्रतिक *, बकवृत्ती † शठ (गुरु, देवता और शास्त्रों-में जिनकी श्रद्धा न हो ) और हैतुक ( वेदके विरुद्ध तर्क करनेवाले ), ये लोग यदि अतिथिरूपसे घरपर आवें तो वचनसे भी उनका सत्कार न करे।

वेदविद्याव्रतस्नाताञ्श्रोत्रियान्गृहमेधिनः।
पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत् ॥३१॥

वेदविद्यास्नातक, व्रतस्नातक, या विद्याव्रतस्नातक वैदिक गृहस्थ ब्राह्मण घरपर आवें तो हव्य-कव्यसे उनकी पूजा करे और जो इनके विपरीत हों उन्हें न पूजे।

शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना।
संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥३२॥

जो संन्यासी या ब्रह्मचारी अपने हाथसे पाक नहीं करते, गृहस्थ-को चाहिये कि उन्हें यथाशक्ति अन्न दे। कुटुंबके लोगोंको बिना कष्ट दिये अन्य प्राणियोंको भी यथाशक्ति अन्न-जलका भाग देना चाहिये।

राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा।
याज्यान्तेवासिनोर्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः ॥३३॥

अन्नाभावसे कष्ट पानेपर गृहस्थ ब्राह्मण पहले राजासे और यज-मान तथा विद्यार्थियोंसे भी द्रव्यकी अभिलाषा प्रकट करे, परंतु दूसरेसे कुछ न मांगे, यही शास्त्रकी मर्यादा है।

---

* धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः।
बैड़ालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १ ॥

† अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकी स्वार्थसाधनतत्परः।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ २ ॥

न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन ।
न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति ॥३४॥

जो स्नातक ब्राह्मण विद्यादि गुणोंसे दान लेनेमें समर्थ है, वह पूर्वोक्त राजा आदि सत्पात्रोंसे दान ले, पर भूखों न मरे। धन मिलनेपर मैले, फटे पुराने वस्त्रोंको धारण न करे।

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ।
स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥३५॥

ब्राह्मणको केश, नख और दाढ़ी मुड़ाकर साफ रहना चाहिये। दान्त* रहे, स्वच्छ वस्त्र धारण करे, पवित्रात्मा हो और वेदका नित्य अध्ययन करे, तथा अपने कल्याणका सदा ध्यान रखे।

वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम् ।
यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥३६॥

बांसका डंडा, सजल कमण्डलु, यज्ञोपवीत, और वेदोक्त कर्म करनेके लिये कुश तथा दो सुन्दर सोनेके कुण्डल धारण करे।

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तंयन्तं कदाचन ।
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥३७॥

उदय और अस्तकालमें, ग्रहण लगते या ऐसे ही किसी उपसर्गकी अवस्थामें जलमें प्रतिबिंबित और आकाशके मध्यभागमें उपगत होनेपर सूर्यको न देखे।

न लङ्घयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति ।
न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणा ॥३८॥

बछड़ा बांधनेकी रस्सीको न लांघे, मेघ बरसते समय न दौड़े, और अपना प्रतिबिम्ब पानीमें न देखे—यह शास्त्र-निश्चय है।

---

* तपः क्लेशसहो दान्तः ।

मृदं गां दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम् ।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥३९॥

घरसे बाहर जाते हुए, सामने रक्खा हुआ मिट्टीका ढेर, गाय, पाषाणादिनिर्मित देवमूर्ति, ब्राह्मण, घृत, मधु, चौराहा और बड़े-बड़े प्रसिद्ध वृक्ष—इन सबको मार्गमें अपने दाहिने हाथकी ओर करके आगे चले ।

नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने ।
समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥४०॥

कामार्त होनेपर भी रजोदर्शनमें (पहले चार दिन) स्त्रीसे प्रसङ्ग न करे और न उसके साथ एक बिछौनेपर सोये ।

रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥४१॥

क्योंकि रजस्वला स्त्रीके साथ प्रसङ्ग करनेवाले पुरुषकी बुद्धि, तेज, बल, दृष्टि और आयु क्षीण होती है ।

तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥४२॥

जो पुरुष रजस्वला स्त्रीको स्पर्श नहीं करते उनकी प्रज्ञा, तेज, बल, दृष्टि और आयुकी वृद्धि होती है ।

नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् ।
क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीनां यथासुखम् ॥४३॥

स्त्रीके साथ एक थालीमें न खाय, भोजन करती हुई, छींकती हुई, जंभाई लेती हुई, या एकान्तमें स्वच्छन्द बैठी हुई स्त्रीको न देखे ।

नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम् ।
न पश्येत्प्रसवन्तीं च तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥४४॥

जो स्त्री अपनी आंखोंमें काजल दे रही हो, या तेल उबटन लगा रही हो, या खुले अङ्ग बैठी हो, और जो बच्चोंको स्तन्य (दूध) पिला रही हो, उसे तेजस्काम ब्राह्मण न देखे ।

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥४५॥

एक वस्त्रसे भोजन न करे ( अर्थात् भोजन करते समय द्वितीय वस्त्र देहपर रख ले ) । नग्न होकर स्नान न करे । रास्तेपर, राखके ढेरपर या गोशालामें मलमूत्र न करे ।

न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ।
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥४६॥

जोते हुए खेतमें, पानीमें, ईंटके भट्ठे पर, पहाड़पर, पुराने देव-मन्दिरमें और दीमककी भीड़पर कभी मलमूत्रका त्याग न करे ।

न ससत्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः ।
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥४७॥

जो विवर या गढ़े प्राणियोंसे युक्त हों उनमें, चलते-चलते या खड़े होकर, नदीके तटपर या पहाड़की चोटीपर मलमूत्र न करे ।

वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाः ।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥४८॥

वायु जिस ओरसे बहती हो उस ओर मुंह करके तथा अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल और गायको देखता हुआ कदापि मलमूत्र न करे ।

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना ।
नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥४९॥

सूखी लकड़ी, पत्ते, तृण, मिट्टी आदिसे भूमिको ढककर, वस्त्रसे शरीरको आवृत कर, सिरमें कपड़ा लपेट, मौन धारण कर, स्थिर चित्तसे मलमूत्रका त्याग करे ।

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादुदङ्मुखः।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्ययोश्च तथा दिवा ॥५०॥

दिनमें उत्तर ओर और रातमें दक्खिन ओर मुख करके मलमूत्र-त्याग करे। प्रातःकाल और सायंकालमें दिनका ही नियम पालन करे।

छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः।
यथासुखमुखः कुर्यात्प्राणबाधाभयेषु च ॥५१॥

रात हो या दिन, छायामें या अन्धेरेमें या ऐसे स्थानमें जहां प्राणपर बाधा आ पड़नेका भय हो वहां ब्राह्मण जिधर मुख कर मल-मूत्र त्यागना चाहे त्यागे।

प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोदकद्विजान्।
प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥५२॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जलाशय, ब्राह्मण, गाय और वायु, इनके सामने मुख करके लघुशंका करनेसे बुद्धि नष्ट होती है, अतएव ऐसा न करे।

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्।
नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥५३॥

आगको मुंहसे न फूंके, नग्न स्त्रीको न देखे, आगमें अपवित्र वस्तु न डाले; और पैर उठाकर आगमें न तपावे।

अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलंघयेत्।
न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणाबाधमाचरेत् ॥५४॥

चारपाईके नीचे आगकी अंगीठी न रखे, आगको फांदकर इस ओरसे उस ओर न जाय, पायतानेमें आग न रखे और जिससे प्राण-पर संकट आवे ऐसा कोई काम न करे।

नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ।
न चैव प्रलिखेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजम् ॥५५॥

सायंकालमें भोजन, ग्रामान्तरकी यात्रा, और शयन न करना चाहिये। धरतीपर लकीर न खींचे। धारण की हुई मालाको आप ही अपने गलेसे न उतारे।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं समुत्सृजेत् ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥५६॥

पानीमें मल-मूत्र न करे, थूके नहीं, अथवा अन्य दूषित पदार्थ, रक्त, मांस या विष आदि न डाले।

नैकः सुप्याच्छून्यगेहे श्रेयांसं न प्रबोधयेत् ।
नोदक्ययाभिभाषेत यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ॥५७॥

सूने घरमें अकेला न सोवे, अपनेसे श्रेष्ठ पुरुष सोये हों तो उन्हें न जगावे, रजस्वला स्त्रीसे संभाषण न करे, विना आमन्त्रणके यज्ञमें न जाय।

अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ।
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥५८॥

अग्निशालामें, गोशालामें, ब्राह्मणोंके समीपमें, और वेद पढ़ने तथा भोजन करनेके समयमें दाहिना हाथ वस्त्रके बाहर कर ले।

न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीत कस्यचित् ।
न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः ॥५९॥

पानी या दूध पीती हुई गौको न रोके और वह किसीका दाना-घास खाती हो तो उससे यह न कहे। आकाशमें इन्द्रधनुष देखनेपर, निषिद्ध पदार्थको देखनेमें दोष है यह जाननेवाला पुरुष औरोंको वह इन्द्र-धनुष न दिखावे।

नाधार्मिके वसद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ।
नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥६०॥

जिस गांवमें अधार्मिक लोग बसते हों और जहाँ असाध्य रोगोंसे पीड़ित अनेक लोग रहते हों वहां भी बहुत काल निवास न करे, अकेले मार्ग न चले, और चिरकालतक पहाड़पर न रहे ।

न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृते ।
न पाषण्डिगणाक्रांते नोपसृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥६१॥

जिस देशमें राजा शूद्र हो उस देशमें निवास न करे, जो गांव चोर-डाकू, छली-कपटी आदि दुरात्माओंकी बस्तियोंसे घिरा हो या नास्तिक वेद-निन्दकोंसे आक्रान्त हो, या चाण्डाल आदि अधम जातियोंमें जिसे पीड़ा हो रही हो, वहां भी न रहे ।

न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत् ।
नातिप्रगे नाति सायं न सायं प्रातराशितः ॥६२॥

ऐसे पदार्थ न खाये जिनमेंसे स्निग्धता निकाल ली गयी हो । एक बार तृप्तिपूर्वक भोजन करके ऊपरसे और कुछ न खाये । सूर्योदय और सूर्यास्तके समय भोजन न करे । सवेरे जिसने अति भोजन किया हो वह सांझको न खाये ।

न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत् ।
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली ॥६३॥

निरुद्देश्य कोई कार्य न करे, अञ्जलिसे जल न पीये, जांघपर भक्ष्य पदार्थोंको रखकर न खाय । प्रयोजन न रहते केवल कौतूहलवश बेमतलब किसीसे कोई बात न पूछे ।

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् ।
नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडन्न च रक्तो विरावयेत् ॥६४॥

ब्राह्मण नृत्य न करे, गायन न करे, बाजा न बजावे, ताल न ठोंके, दांत न कटकटाये, और उमङ्गमें आकर गधे आदि पशुओंकी बोली न बोले।

न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने।
न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते ॥६५॥

कांसेके बर्तनमें कभी पैर न धोवे। तांबा, चांदी और सोनेके बर्तनको छोड़ अन्य किसी कांसेके बर्तनमें यदि वह बर्तन फूटा हो तो, भोजन न करे। जहां मनमें शंका हो वहां भी भोजन न करे।

उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्।
उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेव च ॥६६॥

दूसरे किसीका व्यवहार किया हुआ जूता, वस्त्र, जनेऊ, आभूषण, माला और कमण्डलु धारण न करे।

नाविनीतैर्व्रजेद्धुर्यैर्न च क्षुद्व्याधिपीडितैः।
न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालाधिविरूपितैः ॥६७॥

उन बैलोंके रथपर सवारी न करे जो सिखाये हुए न हों, जो भूख, प्यास और व्याधिसे पीड़ित हों, जिनके सींग, नेत्र और खुर टूटे फूटे और फटे हों, और जिनकी पूंछ कटी हो।

विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः।
वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् ॥६८॥

जो सिखाये हुए हों, शीघ्रगामी हों, शुभलक्षणोंसे युक्त हों, जिनका वर्णरूप अच्छा हो, ऐसे जुते हुए बैलोंके रथमें सवार होकर बैलोंको बिना बार बार चाबुकसे मारे चाहे जब यात्रा करे।

बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम्।
न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥६९॥

सूर्योदय समयकी धूप, मुर्देका धुआं और टूटे-फूटे आसनको

त्याग देना चाहिये। बढ़े हुए नख और रोम छिन्न न करे और नहको दांतसे न उखाड़े।

न मृल्लोष्ठं च मृद्नीयान्न च्छिन्द्यात्करजैस्तृणम् ।
न कर्म निष्फलं कुर्यान्नायत्यामसुखोदयम् ॥७०॥

मिट्टीके ढेलोंको न मले, नाखूनोंसे तिनके न तोड़े, व्यर्थ कर्म न करे; और परिणाममें दुःख देनेवाला कर्म कभी न करे ( यथा अजीर्णमें भोजनादि )।

लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ।
स विनाशं व्रजत्याशु सूचकोऽशुचिरेव च ॥७१॥

ढेलेको मलनेवाला, तिनके तोड़नेवाला, और दांतोंसे नख काटनेवाला, पिशुन और अनाचारी ( शौच-रहित ) ये सब शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होते हैं।

न विगर्ह्य कथां कुर्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत् ।
गवां च यानं पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् ॥७२॥

अभिमानके साथ किसीसे बात न करे, केशकलापके बाहर माला न धारण करे। गाय या बैलकी पीठपर चढ़कर जाना सब प्रकारसे निंद्य है।

अद्वारेण च नातीयाद्ग्रामं वा वेश्म वावृतम् ।
रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् ॥७३॥

जो गांव या घर दीवारसे घिरा हो, उसके भीतर सदर फाटक छोड़कर दूसरे रास्तेसे न जाय। दीवार लांघकर गांव या घरमें प्रवेश न करे। रातमें पेड़की जड़को दूरसे ही त्याग दे अर्थात् क्षणमात्र भी वृक्षके नीचे अवस्थान न करे।

नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नोपानहौ हरेत् ।
शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चासने ॥७४॥

कभी पासोंसे न खेले, स्वयं हाथसे जूता उठाकर न चले, बिछौनेपर या आसनपर या हाथमें कोई चीज रखकर न खाय ।

सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ।
न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥७५॥

सूर्यास्तके अनन्तर तिल मिला हुआ कोई मोदक या मिठाई आदि न खाय । नग्न होकर न सोये, जूठे मुंह कहीं न जाय ।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥७६॥

भींगे पैर भोजन करे, पर भींगे पैर सोये नहीं । भींगे पैर भोजन करनेवाला दीर्घ आयु लाभ करते हैं । (इसलिये पानीसे पैर पखारकर नित्य भोजन करना चाहिये ।)

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रपद्येत कर्हिचित् ।
न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीं तरत् ॥७७॥

जिस रास्तेमें जंगल ऐसा घना हो कि उस ओरकी वस्तु इस ओरसे न दिखायी दे ऐसे दुर्गम स्थानमें न जाय । मलमूत्र न देखे, बांहोंसे तैरकर नदीके उस पार न जाय ।

अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थिकपालिकाः ।
न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥७८॥

दीर्घजीवनकी इच्छा रखनेवाला पुरुष केश, भस्म, हड्डी, ठीकरे, बक्कुठे और कपासकी सरकियोंपर पैर देकर खड़ा न हो ।

न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुल्कसैः ।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः ॥७९॥

पतित, चाण्डाल, पुल्कस ( निषादसे शूद्रीमें उत्पन्न ), मूर्ख, धनमदसे गर्वित, अन्त्यजों और अन्त्यावसायियोंके साथ भी न बैठे ।

न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ।
न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥८०॥

शूद्रको बुद्धि न बताये। (जो दास न हो ऐसे शूद्रको) उच्छिष्ट और हविका शेषांश न दे। उसे धर्म और व्रतका प्रत्यक्ष उपदेश भी न दे (प्रत्युत ब्राह्मणको मध्यमें करके उस ब्राह्मणको उपदेश दे जिसे शूद्र सुने)।

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् ।
सोऽसंवृतं नाम तमः सह तेनैव मज्जति ॥८१॥

जो इसे धर्मका उपदेश और व्रतका आदेश करता है वह उस शूद्रके साथ असंवृत नामक घोर नरकमें जा गिरता है।

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ।
न स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ॥८२॥

एक साथ दोनों हाथोंसे अपने सिरको न खुजलाये, जूठे मुंह माथा न छुए, और पहले सिर धोये बिना स्नान न करे (यह नियम अशक्तके लिये नहीं)।

केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ।
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ॥८३॥

क्रोधमें आकर चोटी पकड़ किसीके सिरमें प्रहार न करे। सिरसे नहाया हुआ पुरुष तेलसे किसी अङ्गका स्पर्श न करे।

न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः ।
सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीवताम् ॥८४॥

जिस राजाका जन्म क्षत्रियसे न हो, उसका दान न ले। पशु मारकर मांस बेचनेवाला कसाई, तेली, कलाल और वेशोपजीवी (कुटना-कुटनियों) से भी दान न ले।

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।

दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥८५॥

दस वधिकोंके समान एक तेली होता है, दस तेलियोंके बराबर एक कलाल होता है, दस कलालोंके बराबर एक वेशोपजीवी होता है और दस वेशोपजीवियोंके समान एक राजा होता है।

दश सूनासहस्राणि यो वाहयति सौनिकः ।

तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥८६॥

जो वधिक दस हजार प्राणियोंकी हिंसा करता है, (मन्वादि महर्षियोंने) राजाको उसके तुल्य कहा है। इसलिये उसका प्रतिग्रह भयानक है।

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ।

स पर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥८७॥

कृपण और शास्त्रकी आज्ञा न माननेवाले राजासे जो दान लेता है, वह क्रमसे इन इक्कीस नरकोंमें गिरता है।

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ।

नरकं कालसूत्रं च महानरकमेव च ॥८८॥

तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कालसूत्र, महानरक,

संजीवनं महावीचिं तपनं सम्प्रतापनम् ।

संहातं च सकाकोलं कुड्मलं प्रतिमूर्तिकम् ॥८९॥

संजीवन, महावीचि, तपन, संप्रतापन, संहात, सकाकोल, कुड्मल, प्रतिमूर्तिक,

लोहशंकुमृजीषं च पन्थानं शाल्मलीं नदीम् ।

असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च ॥९०॥

लोहशंकु, ऋजीष, पन्था, शाल्मली, नदी, असिपत्र वन और लोहदारक (ये वे इक्कीस नरक हैं)।

एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणाः ब्रह्मवादिनः ।
न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः ॥९१॥

प्रतिग्रह विविध नरकोंका कारण है, यह जानते हुए वेदाध्यायी ब्राह्मण, जो जन्मान्तरमें विशेष कल्याणकी इच्छा रखते हैं, राजाका दान नहीं लेते ।

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥९२॥

ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् रातके पिछले पहरमें जागकर धर्म और अर्थकी चिन्ता करे और उसके लिये जो कायिक क्लेश उठाना पड़ता है उसका भी विचार करे और वेदके तत्वार्थका चिंतन करे ।

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।
पूर्वां संन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥९३॥

(अनन्तर) शय्यासे उठ; आवश्यक कृत्य कर, शौचादिसे निवृत्त हो, प्रातःकालिक सन्ध्या कर (सूर्योदय पर्यन्त) गायत्री मन्त्र जपे । सायंकालिक सन्ध्या भी ठीक समयपर करके देरतक गायत्री जपे ।

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥९४॥

ऋषिगण देरतक सन्ध्योपासनादि करनेसे दीर्घजीवी होते थे और बुद्धि, यश, अक्षयकीर्ति तथा ब्रह्मतेज प्राप्त करते थे ।

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि ।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपञ्चमान् ॥९५॥

ब्राह्मणको चाहिये कि सावन या भादोंकी पूर्णिमाको वेदविधिसे उपाकर्म करके साढ़े चार महीनेतक उद्यक्त होकर वेद पढ़े ।

पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः ।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥९६॥

उसके अनन्तर पुष्य नक्षत्रको गांवसे बाहर जा यथा-शास्त्र उत्सर्जन कर्म करे अथवा माघ शुक्लकी पहली तिथिके पूर्वाह्णमें करे।

यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः ।
विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं तदेवैकमहर्निशम् ॥९७॥

यथोक्त रीतिसे गांवके बाहर वेदका उत्सर्जन कर्म करके दो दिन और उनके बीचकी रातको विश्राम अर्थात् अनध्याय करे।

अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् ।
वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥९८॥

इस कर्मके अनन्तर शुक्लपक्षमें संयतचित्त होकर वेद पढ़े और कृष्णपक्षमें वेदका अङ्ग शिक्षा व्याकरण आदि पढ़े।

नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसंनिधौ ।
न निशांते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् ॥९९॥

स्वर वर्ण आदिका स्पष्ट उच्चारण किये बिना या शूद्रोंके समीपमें वेद न पढ़े। रातके पिछले पहरमें वेद पढ़कर थके हुए ब्राह्मणको न सोना चाहिये।

यथोदितेन विधिना नित्यं छन्दस्कृतं पठेत् ।
ब्रह्म छन्दस्कृतं चैवं द्विजो युक्तो ह्यनापदि ॥१००॥

यथोक्त विधिसे नित्य गायत्री आदि छन्दोंसे युक्त मन्त्रोंका ही पाठ करे। निरापद अवस्थामें ब्राह्मण और मन्त्र दोनों भागोंका नित्य अध्ययन करे।

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् ।
अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥१०१॥

विधिपूर्वक नित्य वेद पढ़नेवाले और शिष्योंको पढ़ानेवाले अध्यापक इन ( आगे कहे हुए ) अनध्यायोंका त्याग करें।

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसुसमूहने।

एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥१०२॥

रातमें यदि वायु बहनेका शब्द सुनायी दे और दिनमें धूल उड़ाने वाली हवा बहे, तो वे दोनों रात दिन वर्षा ऋतुमें अनध्याय होते हैं, ऐसा अध्यापन-विधिके जाननेवाले मुनि कहते हैं।

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे।

आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥१०३॥

वर्षाऋतुमें एक साथ बिजली दमकती और मेघ गरजते हों और महान उल्कापात होता हो ऐसे समयको मनुजी महाराजने आकालिक अनध्याय कहा है अर्थात् यह अनध्याय इस समयसे लेकर दूसरे दिनके इसी समयतक रहता है।

एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु।

तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥१०४॥

( वर्षाऋतुमें ) यह विद्युत् मेघ-गर्जन आदि होमार्थ अग्नि प्रज्वलित करते समय सायंकालमें हो तो अनध्याय जानना। अन्य ऋतुमें अग्नि प्रज्वलित करनेके समय अभ्र ( मेघ ) देखनेसे ही अनध्याय हो जाता है।

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने।

एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ॥१०५॥

दिग्गर्जन, भूकम्प, और ग्रह-ताराओंके परस्पर युद्ध होनेसे वर्षाऋतुमें भी यह आकालिक अनध्याय जानना।

प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिःस्वने।

सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा ॥१०६॥

होमार्थ अग्नि प्रज्वलित करनेपर सन्ध्या-समय यदि बिजली चमकनेके साथ साथ मेघ गरजे, ( पर वृष्टि न हो ) तो यह सज्योति अनध्याय है अर्थात् प्रातः संध्यामें आरंभ हुआ अनध्याय रात्रिके अन्तमें शेष होता है।

नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ।
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥१०७॥

जिन्हें धर्मकी विशेष अभिलाषा है, उनके लिये ग्राममें, नगरमें तथा जहां दुर्गन्ध आती हो वहां सर्वदा ही अनध्याय है।

अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ ।
अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥१०८॥

गांवमें मुर्दा पड़ा हो, रोने-पीटनेकी आवाज आती हो, अधार्मिक मनुष्य समीपमें हो और जहां लोगोंकी भीड़ हो वहां अनध्याय होता है।

उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने ।
उच्छिष्टः श्राद्धभुक्चैव मनसापि न चिन्तयेत् ॥१०९॥

जलमें खड़े होकर, मध्य रात्रिमें, मल-मूत्र विसर्जन करते समय, जूठे मुंह, श्राद्धका निमन्त्रण लेनेसे श्राद्ध भोजन करनेके पश्चात् दिनतक मनसे भी वेदका चिन्तन न करे।

प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् ।
त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके ॥११०॥

विद्वान ब्राह्मण एकोद्दिष्ट ( श्राद्ध ) का निमन्त्रण स्वीकार करके तीन दिनतक वेदपाठ न करे। राजाके पुत्र-जन्मादि अशौचमें, सूर्य-चन्द्रके ग्रहणमें भी तीन दिनतक अनध्याय करे।

यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति ।
विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥१११॥

विद्वान ब्राह्मणके शरीरपर जबतक एकोद्दिष्ट श्राद्धका गन्ध और लेप रहता है तबतक वह वेदाध्ययन न करे।

शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम्।
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥११२॥

बिछौनेपर लेटकर, पांवपर पांव रखकर, घुटनोंके बल बैठकर तथा अशौचान्न और मांस खाकर वेद न पढ़े।

नीहारे बाणशब्दे च सन्ध्ययोरेव चोभयोः।
अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च ॥११३॥

धूल उड़ती हो ऐसे समय, बाणका शब्द सुनायी देनेपर, प्रातः सायं संध्याके समय और अमावास्या, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अष्टमी—इन तिथियोंमें वेद न पढ़े।

अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी।
ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥११४॥

अमावास्या गुरुका और चतुर्दशी शिष्यका नाश करती है। पूर्णिमा और अष्टमी पढ़े हुए वेदमन्त्रोंको भुला देती है, इसलिये वेदके पठन-पाठनमें इन तिथियोंको त्याग देना चाहिये।

पांसुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा।
श्वखरोष्ट्रे च रुवति पङ्क्तौ च न पठेद्द्विजः ॥११५॥

धूल बरस रही हो; दिग्दाह हो रहा हो; शृगाल, कुत्ते, गधे, और ऊंट उच्च स्वरसे शब्द कर रहे हों; ऐसे समय और इनके साथ बैठकर वेदाध्ययन न करे।

नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा।
वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥११६॥

श्मशानके समीप, ग्रामके समीप, गोशालामें, रतिकालमें पहने हुए वस्त्र धारण कर और श्राद्धीय वस्तुयें प्रतिग्रह कर वेद न पढ़े।

प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किंचिच्छ्राद्धिकं भवेत् ।
तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजःस्मृतः॥११७॥

श्राद्धीय वस्तु सजीव हो ( गौ घोड़े आदि ) अथवा निर्जीव हो (वस्त्र भूषण आदि), उनका ग्रहण करनेसे अनध्याय होता है, क्योंकि ब्राह्मणके हाथको मुनियोंने मुख कहा है ।

चोरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते ।
आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥११८॥

गांवमें चोरोंका उपद्रव, गृहदाहादिका भय, और सब प्रकारके अद्भुत उत्पात दृष्टिगोचर होनेपर, आकालिक अनध्याय जानना ।

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ।
अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु ॥११९॥

उपाकर्म और उत्सर्गमें तीन दिनतक पाठक्षति होती है । मार्गशीर्षकी पूर्णिमाके अनन्तर कृष्णपक्षकी अष्टमीमें एक अहोरात्र और ऋतुके अन्तकी रात्रियोंमें भी एक अहोरात्र ( दिनरात ) अनध्याय होता है ।

नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं न च हस्तिनम् ।
न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः ॥१२०॥

घोड़े, हाथी, गधे, ऊँट, नाव और पेड़पर चढ़कर वेद न पढ़े । ऊसरभूमिमें या रथपर बैठा हुआ भी वेदमन्त्रोंका पाठ न करे ।

न विवादे न कलहे न सेनायां न संगरे ।
न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न शुक्तके ॥१२१॥

किसीके साथ विवाद होता हो, या झगड़ा होता हो ऐसे समय, और सेनाके बीचमें, युद्ध होते समय, भोजन करके तुरन्त, अजीर्ण होनेपर, वमन करके और खट्टी डकार आनेपर वेदका पाठ न करे ।

अतिथिं चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम् ।
रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥१२२॥

अतिथिको जताये बिना, हवा खूब तेज बहती हो उस समय, शरीरसे लहू गिरने या कोई अङ्ग हथियारसे कट जानेपर अध्ययन न करना चाहिये।

सामध्वनावृग्यजुषी नाधीयीत कदाचन ।
वेदस्याधीत्य वाप्यन्तमारण्यकमधीत्य च ॥१२३॥

सामवेदकी ध्वनि सुनायी देनेपर ऋग्वेद और यजुर्वेदका कदाचित् अध्ययन न करे। किसी वेदको या आरण्यक संज्ञक वेदके एक अंशको समाप्त कर उस दिन या उस रातमें पुनः वेदका कोई भाग न पढ़े।

ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः ।
सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः॥१२४॥

ऋगवेदके देवता देव हैं, यजुर्वेदके मनुष्य और सामवेदके पितृ देवता हैं। इसलिये उसकी ध्वनि अशुचिसी होती है।

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ।
क्रमतः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते ॥१२५॥

इन तीनों वेदोंके देवताओंको जानता हुआ विद्वान पुरुष पहले प्रणव, व्याहृति और सावित्रीका क्रमसे अभ्यास करके पश्चात् वेदका अध्ययन करे।

पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः ।
अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् ॥१२६॥

पशु ( गाय, भैंस आदि ), मेढ़क, बिल्ली, कुत्ता, सांप, नेवला, और चूहा, इनमेंसे कोई गुरु और शिष्यके बीचमेंसे होकर निकल जाय तो एक दिन रात अनध्याय जानना।

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः ।
स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धामात्मानं चाशुचिं द्विजः॥१२७॥

स्वाध्यायकी अशुद्ध भूमि और अपना अशुद्ध शरीर, इन दो अनध्यायोंको नित्य यत्नपूर्वक त्यागे।

अमावास्यामष्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥१२८॥

स्नातक ब्राह्मण अमावास्या, अष्टमी, पूर्णिमा और चतुर्दशी तिथिको ऋतुमती स्त्रीके साथ भी समागम न करे।

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥१२९॥

भोजन करके स्नान न करे। रोगी स्नान न करे। (अरोगी भी) रातके दूसरे तीसरे पहरमें स्नान न करे। बहुत कपड़े साथ लेकर स्नान न करे। जलाशय जाना हुआ नहीं है, उसमें भी स्नान न करे।

देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा ।
नाक्रामेत्कामतश्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥१३०॥

देवता, गुरु, राजा, स्नातक, आचार्य, अग्नि और दीक्षित—इनकी छांह न लांघे।

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सामिषम् ।
संध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् ॥१३१॥

दोपहर दिन या आधी रातको, मांससहित श्राद्धान्न खानेपर और दोनों सांझ, चौराहेपर देरतक न रहे।

उद्वर्तनमपस्नानं विण्मूत्रे रक्तमेव च ।
श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः ॥१३२॥

उबटनका मैल, स्नानजल, मल, मूत्र, लहू, कफ, थूक और वमन आदि दूषित वस्तुओंके समीप जानकर न बैठे।

वैरिणं नोपसेवेत सहायं चैव वैरिणः।
अधार्मिकं तस्करं च परस्यैव च योषितम् ॥१३३॥

शत्रु या शत्रुके मन्त्री, अधर्मी, चोर और पराई स्त्रीकी सेवा न करे।

न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥१३४॥

संसारमें पुरुषकी आयु घटानेवाला ऐसा कोई पाप नहीं है जैसा कि परस्त्रीगमन।

क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम्।
नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदाचन ॥१३५॥

क्षत्रिय, सांप, और वेदपाठी ब्राह्मण निर्बल भी हो तोभी अपना हित चाहनेवाला कभी इनका अपमान न करे।

एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम्।
तस्मादेतत्त्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥१३६॥

ये तीनों अपमानित होनेपर अपमान करनेवालेको भस्म कर डालते हैं। इसलिये बुद्धिमान मनुष्य कभी इनका अपमान न करे।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम् ॥१३७॥

पूर्वमें उद्योग करके सम्पत्ति न मिली इससे अपनेको अपमानित न करे ( अर्थात् कोई उद्यम सफल न होनेपर यह न कहे कि मैं भाग्य-हीन हूं )। मरते दमतक लक्ष्मीप्राप्तिके लिये यत्न करे, उसे दुर्लभ न समझे।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥१३८॥

सत्य बोले, प्रिय बोले, ऐसा सत्य न बोले जो अप्रिय हो, ऐसा प्रिय भी न बोले जो असत्य हो—यह सनातन धर्म है।

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥१३९॥

अभद्र ( अशुभ वार्ता ) को भी भद्र शब्दोंसे ही कहे अथवा केवल भद्र वचन (शुभ वार्ता) ही बोले। बेमतलब किसीसे वैर या विवाद न करे।

नातिकल्यं नातिसायं नातिमध्यंदिने स्थिते।
नाज्ञातेन समं गच्छेन्नैको न वृषलैः सह ॥१४०॥

बहुत तड़के, पूरी सांझ हो जानेपर, बीच दोपहरमें, अपरिचित व्यक्तिके साथ, अधार्मिकोंके साथ या अकेला कहीं न जाय।

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोधिकान्।
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥१४१॥

हीन अङ्गवाले, अधिक अङ्गवाले, मूर्ख, वृद्ध, कुरूप, दरिद्र और हीन जातिके मनुष्योंको यह कहकर तिरस्कृत न करे कि तुम हीन हो या दरिद्र हो इत्यादि।

न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान्।
न चापि पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान्दिवि ॥१४२॥

जूठे मुंह गौ, ब्राह्मण और आगको हाथसे स्पर्श न करे। सुस्थ रहते कभी अशुचि अवस्थामें आकाशके ग्रह नक्षत्रोंकी ओर न देखे।

स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत्।
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितलेन तु ॥१४३॥

अशुचि अवस्थामें ब्राह्मण इन गाय ब्राह्मण आदिको स्पर्श करे तो आचमन करे और हाथमें जल लेकर नासिका और नेत्र आदि इन्द्रियों-को, और सिर, कन्धा, घुटने, पैर और नाभीको जलसे स्पर्श करे।

अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः ।
रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत् ॥१४४॥

स्वस्थ अवस्थामें इन्द्रियोंके छिद्र तथा गुप्त स्थानके रोमोंको निष्कारण न छूए ।

मङ्गलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः ।
जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ॥१४५॥

शुभ आचारोंसे युक्त, पवित्र हृदय, जितेन्द्रिय पुरुष आलस्यरहित हो नित्य गायत्रीमन्त्र जपे और अग्निमें हवन करे ।

मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च प्रयतात्मनाम् ।
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते ॥१४६॥

जो पवित्रात्मा शुभ आचारोंसे युक्त होकर नित्य जप और हवन करते हैं, उन्हें किसी प्रकारका ( दैवी या मानुषी ) उपद्रव नहीं होता ।

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः ।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥१४७॥

नित्य यथाकाल आलस्यरहित होकर प्रणव गायत्री आदि वेद-मन्त्रोंको जपे । ब्राह्मणके लिये मनु आदि महर्षियोंने यही मुख्य धर्म कहा है । बाकीको उपधर्म कहा है ।

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ।
अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥१४८॥

सतत वेदके अभ्यास, शौच, तप और प्राणियोंकी अहिंसासे पूर्वजन्मकी जातिका स्मरण होता है ।

पौर्विकीं संस्मरञ्जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः ।
ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते ॥१४९॥

पूर्वजन्मका जातिस्मरण जिसे हुआ है वह पुनः नित्य ब्रह्मका ही अभ्यास करता है। निरन्तर ब्रह्माभ्याससे वह अनन्त सुख (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

सावित्राञ्छान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः ।
पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥१५०॥

सावित्री देवतासम्बन्धी होम और अनिष्ट निवृत्यर्थ अमावास्या और पूर्णिमा, इन दोनों पर्वोंपर सदा शान्ति-होम करना चाहिये। उसी प्रकार अष्टका * और अन्वष्टकामें पितरोंका श्राद्ध-कर्म करे।

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टान्ननिषेकं च दूरादेव समाचरेत् ॥१५१॥

अग्निशालासे दूर जाकर मल-मूत्रका त्याग करे, पैर धोये, उच्छिष्ट फेंके, गर्भाधानकी क्रिया भी वहांसे दूर ही करे।

मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम् ।
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥१५२॥

जंगल जाना, तैलाभ्यङ्ग, दन्तधावन, स्नान, अञ्जन, और देवताओंका पूजन पूर्वाह्णमें ही करना चाहिये।

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ।
ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥१५३॥

अपनी रक्षाके लिये देवताओं, धार्मिकों, ब्राह्मणों और गुरुओं तथा राजा या शासकके दर्शनार्थ ( अमावास्यादि ) पर्वोंमें उनके सम्मुख जाय।

---

* पौषकी कृष्णाष्टमीको पूपाष्टका, माघकी कृष्णाष्टमीको मांसाष्टका और फागुनकी कृष्णाष्टमीको शाकाष्टका कहते हैं। इन तीनों अष्टकाओंमें क्रमसे पूप, मांस और शाकसे पार्वण श्राद्ध करना चाहिये।

अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ १५४॥

गुरु या श्रेष्ठ पुरुष घरपर आवें तो उठकर उन्हें प्रणाम करे; अपना आसन बैठनेको दे और अञ्जलिबद्ध होकर आगे खड़ा रहे। जब वे जाने लगें तब कुछ दूरतक उनके पीछे पीछे जाय।

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥१५५॥

श्रुति और स्मृतिमें जो सदाचार कहा गया है, जो अपने कर्ममें सम्यक् रूपसे मिला हुआ है और जो धर्मका मूल है; आलस्यरहित होकर उस सदाचारका पालन करना चाहिये।

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥१५६॥

आचारसे दीर्घ आयु मिलती है, आचारसे अभिमत सन्तानें प्राप्त होती हैं, आचारसे अक्षय धनलाभ होता है। आचारसे अशुभ लक्षणोंका नाश होता है।

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥१५७॥

दुराचारी पुरुष संसारमें निन्दित, सर्वदा दुःखी, रोगी और अल्पायु होता है।

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥१५८॥

सब लक्षणोंसे हीन होनेपर भी जो पुरुष सदाचारी और श्रद्धालु होता है तथा दूसरोंके दोष नहीं कहा करता वह सौ वर्ष जीता है।

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥१५९॥

जो जो कर्म पराधीन हो, उस उस कर्मको यत्न करके छोड़ दे और जो जो कर्म अपने अधीन हो, उस उस कर्मका यत्नपूर्वक अनुष्ठान करे ।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥१६०॥

सब पराधीन कर्म दुःख देनेवाले और सब स्वाधीन कर्म सुख देनेवाले होते हैं । संक्षेपमें यही सुख दुःखका लक्षण जानिये ।

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत् ॥१६१॥

जिस कर्मके करनेसे अन्तरात्माको परितोष हो, वह यत्नपूर्वक करे । इसके विपरीत जो कर्म हो [ अर्थात् जो कर्म करनेसे चित्तको शान्ति न मिले ] वह न करे ।

आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम् ।
न हिंस्याद्ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः ॥१६२॥

उपनयनपूर्वक वेदोंका अध्यापन करनेवाला आचार्य; वेदार्थ-व्याख्याता; पिता, माता, गुरु, ब्राह्मण, गाय और तपस्वी—इनकी हिंसा न करे [ दुःख न दे—विरुद्धाचरण न करे ] ।

नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषं दम्भं च मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्जयेत् ॥१६३॥

नास्तिकता ( ईश्वरमें अविश्वास ), वेद और देवताओंकी निन्दा, ईर्ष्या-भाव, दम्भ, अभिमान, क्रोध और क्रूरता न करो ।

परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैव निपातयेत् ।
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्टयर्थं ताडयेत्तु तौ ॥१६४॥

दूसरेको मारनेके लिये क्रुद्ध होकर लाठी न उठावे और न मारे। पुत्र तथा शिष्यके अतिरिक्त अन्य व्यक्तिको दण्डप्रहार न करे। किन्तु पुत्र तथा शिष्यको अनुशासनके लिये ( अवश्य ) ताड़न करे।

ब्राह्मणायावगूर्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया।
शतं वर्षाणि तामिस्रे नरके परिवर्तते ॥१६५॥

जो द्विजाति ब्राह्मणको मारनेकी इच्छासे क्रुद्ध होकर लाठी उठाता है वह सौ वर्षतक तामिस्र नामक नरकमें चक्कर खाता है।

ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम्।
एकविंशतिमाजातीः पापयोनिषु जायते ॥१६६॥

जो क्रोधमें आकर ज्ञानतः एक तिनकेसे भी ब्राह्मणको मारता है वह उस पापके फलसे २१ बार पापयोनियोंमें [ अर्थात् कुत्ते आदि नीच योनियोंमें ] जन्म लेता है।

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगङ्गतः।
दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥१६७॥

जो कोई अयुद्ध्यमान ब्राह्मणके शरीरसे, शास्त्र न जाननेके कारण लहू बहाता है, वह अपनी मूर्खताके कारण मरनेपर परलोकमें बहुत कष्ट पाता है।

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतलात्।
तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते ॥१६८॥

ब्राह्मणका गिरा हुआ रक्त मिट्टीके जितने अणुओंको भिगोता है, उतने वर्ष परलोकमें उस रक्त बहानेवालेको दूसरे ( अर्थात् शृगाल, कुत्ते आदि हिंस्र जीव ) काटते खाते हैं।

न कदाचिद्द्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि।
न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्स्रावयेदसृक् ॥१६९॥

इस कारण दोषाभिज्ञ पुरुष ब्राह्मणपर भूलकर भी कभी दण्ड न उठावे, तृणसे भी न मारे और उसके शरीरसे रक्त न बहावे।

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम्।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते ॥१७०॥

जो मनुष्य अधर्मी है, झूठ ही जिसका धन है, जो दूसरेकी हिंसामें लगा रहता है, वह इस लोकमें भी सुख नहीं पाता।

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत्।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम् ॥१७१॥

अधर्माचारी पापियोंका शीघ्र विपर्यय होता देखकर (अर्थात् उन्हें दुर्दशापन्न देखकर) धर्माचरणसें दुःख पाता हुआ भी मनुष्य मनको अधर्ममें न लगावे।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥१७२॥

किया हुआ पाप पृथिवीमें बोये हुए बीजकी भांति तत्काल ही फल नहीं देता। किन्तु धीरे धीरे फलित होनेका समय आनेपर पाप-कर्त्ताका मूलोच्छेदन करके ही छोड़ता है।

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु।
न त्वेव तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥१७३॥

यदि पाप अपनेमें ही फलित न हुआ तो पुत्रोंमें, पुत्रोंमें न हुआ तो पौत्रोंमें फलित होता ही है। पापीका किया हुआ पाप कभी निष्फल नहीं होता।

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥१७४॥

(परपीड़न आदि) अधर्मसे कुछ काल वृद्धि होती है, उससे सब

प्रकारका वैभव दिखायी देता है। उससे शत्रुओंपर विजय प्राप्त होती है। उसके बाद उसका जड़मूलसे नाश हो जाता है।

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥१७५॥

सत्य, धर्म, सदाचार और पवित्रतामें सदा अनुराग करे। और धर्मपूर्वक शिष्योंको शिक्षा दे। वाणी* बाहु† और पेट‡को संयत रखे।

परित्यजेदर्थकामौ या स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च ॥१७६॥

जो अर्थ और काम धर्मके विरुद्ध हों उन्हें त्याग दे और उस धर्मको भी न करे जिससे पीछे दुःख हो, लोगोंको रुलानेवाला कार्य भी न करे।

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः।
न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्मधीः ॥१७७॥

हाथ पैरोंको वृथा न चलावे अर्थात् अनुपयुक्त वस्तु लेनेके लिये हाथ न बढ़ावे और निष्प्रयोजन घूमे नहीं। नेत्र चपल न हों, अर्थात् परस्त्री या उन वस्तुओंका, जिनका देखना शास्त्रमें निषेध किया है साकांक्ष दृष्टिसे न देखे, व्यर्थ बहुत न बोले, कुटिल न हो, दूसरेकी हानि करनेकी चेष्टा या बुद्धि न करे।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥१७८॥

जिस मार्गसे बाप-दादा चले हों उसी अच्छे मार्गसे आप भी चले, उस मार्गसे चलनेपर दोषभागी नहीं होना पड़ता।

---

* वाणीका संयम—मितभाषण और सत्यता है।
† बाहुका संयम—किसीको बाहुबलसे पीड़ित न करना।
‡ उदर-संयम—जो कुछ खानेको मिले उसमें सन्तोष करना।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥१७९॥
मातापितृभ्यां जामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥१८०॥

यज्ञ करानेवाला, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रितवर्ग, बालक, वृद्ध, रोगी, वैद्य, दायाद, सम्बन्धी, ( साले, जामाता आदि ) और मातृकुलके लोगोंके साथ तथा मां, बाप, बहन, पतोहू, भाई, बेटा, बेटी, स्त्री और नौकरोंके साथ विवाद न करे।

एतैर्विवादान्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते।
एभिर्जितैश्च जयति सर्वांल्लोकानिमान्गृही ॥१८१॥

जो इन लोगोंसे विवाद नहीं करता, वह सब पापोंसे छूट जाता है। इनके साथ झगड़ा न करनेसे वह इन (आगे कहे हुए) लोकों-को जीत लेता है।

आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः।
अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ॥१८२॥

आचार्य ब्रह्मलोकका, पिता प्राजापत्य लोकका, अतिथि इन्द्रलो-कका और यज्ञपुरोहित देवलोकका स्वामी होता है। ( इसलिये जो इनसे विवाद नहीं करता, वह ब्रह्मलोकेशत्त्व आदि महान पदको प्राप्त होता है। )

जामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः।
संबन्धिनो ह्यपां लोके पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥१८३॥

बहन और बधूका अप्सरा लोकपर, बान्धवोंका वैश्वदेवलोकपर, सम्बन्धियोंका वरुणलोकपर, माता और मामाका भूलोकपर प्रभुत्व रहता है।

आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकृशातुराः ।
भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ॥१८४॥

बालक, वृद्ध, आश्रित और रोगियोंका आकाशपर प्रभुत्व रहता है। बड़ा भाई पिताके तुल्य होता है, स्त्री और पुत्र तो अपना शरीर ही ठहरा। (फिर उनके साथ विवाद कैसा ?)

छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ।
तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासंज्वरः सदा ॥१८५॥

दासवर्ग अपनी छायाके समान होते हैं, बेटी बड़ी ही दयापात्र होती है। इस कारण ये लोग तिरस्कार भी करें तोभी चुपचाप सह ले, पर विवाद न करे।

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥१८६॥

दान लेनेकी योग्यता रखता हुआ भी बार बार दान लेनेमें प्रवृत्त न हो, क्योंकि प्रतिग्रहसे ब्रह्मतेज लुप्त हो जाता है।

न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे ।
प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा ॥१८७॥

द्रव्योंके प्रतिग्रहमें धार्मिक विधानको न जानकर क्षुधासे पीड़ित होनेपर भी बुद्धिमान ब्राह्मण दान न ले।

हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान्घृतम् ।
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मी भवति दारुवत् ॥१८८॥

सोना, भूमि, घोड़ा, गाय, अन्न, वस्त्र, तिल और घृत, इन वस्तुओंका दान लेनेवाला मूर्ख ब्राह्मण लकड़ीकी तरह भस्मीभूत हो जाता है ( अर्थात् उसमें ब्रह्मतेजका अंकुर फिर कभी नहीं जमता )।

हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ।
अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ॥१८९॥

सोना और अन्नका दान आयुको, भूमि और गायका दान शरीर-को, घोड़ा नेत्रको, वस्त्र त्वचाको, घृत तेजको, और तिलका दान सन्तानोंको जलाता है।

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥१९०॥

जो ब्राह्मण तपस्या और वेदविद्यासे रहित होकर भी दान लेता है, वह यजमानके साथ नरकमें डूबता है; जैसे पत्थरकी बनी नावसे पार उतरनेवाला उस नावके साथ पानीमें डूबता है।

तस्मादविद्वान्बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ।
स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हि पङ्के गौरिव सीदति ॥१९१॥

इसलिये थोड़ासा भी द्रव्य प्रतिग्रह करनेसे डरे; क्योंकि ऐसे थोड़ेसे प्रतिग्रहसे भी कीचड़में धसी हुई गौकी भांति अविद्वान् ब्राह्मण पापपंकमें धसता और क्लेश भोगता है।

न वार्यपि प्रयच्छेत्तु बैडालव्रतिके द्विजे ।
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥१९२॥

धर्मज्ञको चाहिये कि वह बैडालव्रतिक, बकव्रतिक और वेदान-भिज्ञ ब्राह्मणको जलतक भी न दे।

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥१९३॥

इन तीनोंको न्यायोपार्जित धन भी दिया जाय तो वह परलोकमें दाता और प्रतिग्रहीता दोनोंके लिये अनर्थका कारण होता है।

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥१९४॥

जैसे पत्थरकी नावसे पार उतरनेवाला नावके साथ पानीमें डूब जाता है, वैसे ही मूर्ख दाता और प्रतिग्रहीता दोनों नरकमें डूबते हैं।

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ।
बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः ॥१९५॥

धर्मध्वजी (अर्थात् जो लोगोंको दिखलानेके लिये धर्म करता और संसारमें उसका डंका पिटवाता है—यथार्थमें) दूसरेके धनका लोभी होता है, कपटवेशधारी और वंचक होता है। जो सदा दूसरोंकी निन्दा करता और हिंसामें रत रहता है उसे बैडालव्रतिक जानना चाहिये ( जो विडालकी तरह ध्यान लगाये बड़े विनीत भावसे शिकारके घातमें रहे)।

अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥१९६॥

जो नम्रता दिखलानेके लिये अपनी दृष्टिको सदा नीचे किये रहता है, पर आचरण क्रूरताका करता है, दूसरोंकी हानि करके अपने स्वार्थसाधनमें सर्वदा रहता है, जो कभी सीधी चालसे नहीं चलता, कपटसे विनयका भाव दिखाता है—ऐसे ब्राह्मणको बकव्रती कहते हैं।

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ।
ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा ॥१९७॥

जो ब्राह्मण बकव्रती और बैड़ालव्रतिक होते हैं, वे उस पापकर्मके फलसे अन्धतामिस्र नरकमें गिरते हैं।

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् ।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन्स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥१९८॥

पाप करके ( उसके प्रायश्चित्तके निमित्त ) किसी व्रतका अनुष्ठान करना और फिर उस अनुष्ठानसे स्त्रीशूद्रादि अज्ञजनोंको भरमाकर उस पापको छिपाना और यह दिखाना कि हम धर्म कर रहे हैं, ऐसा कभी न करना चाहिये।

प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ।
छद्मनाचरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ॥१९९॥

ऐसे कपटाचारी ब्राह्मण इस लोक और परलोक दोनों जगह वेद-वक्ताओं द्वारा निन्दित होते हैं। जो व्रत छलसे किया जाता है, उसका फल राक्षसोंको प्राप्त होता है।

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति ।
स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते ॥२००॥

जो ब्राह्मण ब्रह्मचारी न होकर भी ब्रह्मचारीके चिह्न धारण कर भिक्षादि वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करता है, वह ब्रह्मचारियोंके किये पापोंको अपने लिये बटोरता है और मरनेपर कुत्ते आदि तिर्यग् योनियोंमें जन्म लेता है।

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ।
निपानकर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥२०१॥

दूसरेके खुदवाये हुए पुष्कर आदि जलाशयमें कभी स्नान न करे। स्नान* करनेसे स्नानकर्ता पुष्कर खुदवानेवालेके पापोंके अंश (चतुर्थ भाग) से लिप्त होता है।

यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च ।
अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥२०२॥

किसीके रथ, शय्या, आसन, कुआं, उद्यान और गृहको दाताके दिये विना, उपभोग करनेवाले उस पापके चतुर्थांशके भागी होते हैं।

---

* यदि दूसरेके पोखरमें स्नान करनेका अवसर आ पड़े तो मिट्टीके पांच लोंदे निकालकर स्नान करे। याज्ञवल्क्यजीने कहा है—

पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिषु ।
उद्धृत्य चतुरः पिण्डान् पारक्ये स्नानमाचरेत् ॥

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च ॥२०३॥

नदी, देवकुण्ड, पोखर, सरोवर, सोते और झरनेमें (अर्थात् प्रकृति-निर्मित जलाशयोंमें) नित्य स्नान करना चाहिये।

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥२०४॥

नियमों*का नित्य पालन न हो, तोभी यमों†का सेवन सदा करना चाहिये। केवल नियमोंका सेवन करके ही यम न करे तो वह नीचे गिरता है।

नाश्रोत्रियतते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा।
स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित् ॥२०५॥

जिस यज्ञमें वैदिक ब्राह्मणका अभाव हो, जो यज्ञ बहुतोंका यज्ञ करानेवालेके द्वारा किया गया हो, जिस यज्ञमें स्त्री या नपुंसकने हवन किया हो, उस यज्ञमें ब्राह्मण कदापि भोजन न करे।

अश्लीकमेतत्साधूनां यत्र जुह्वत्यमी हविः।
प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥२०६॥

इस प्रकार बहुतोंका यज्ञ करनेवाले, स्त्रियां आदि जिस यज्ञमें होम करते हैं वह साधुओंका अमङ्गलकारी तथा देवताओंके प्रतिकूल होता है। इसलिये ऐसा होम न करना चाहिये।

मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन।
केशकीटावपन्नं च पदा स्पृष्टं च कामतः ॥२०७॥

---

* स्नानं मौनोपवासेज्या स्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः।
नियमो गुरुशुश्रूषा शौचाक्रोधाप्रमादता ॥

† ब्रह्मचर्यं दयाक्षान्तिर्ध्यानं सत्यमकल्कता। अहिंसाऽस्तेयमाधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः ॥ इति याज्ञवल्क्यः।

क्षुब्ध, क्रोधी और रोगियोंका अन्न कभी न खाय। जिस अन्नमें केश और कीड़े पड़ गये हों, जो अन्न जानकर पैरोंसे छुआ गया हो वह न खाय।

भ्रूणघ्नावेक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया।
पतत्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च ॥२०८॥

जो अन्न भ्रूणहत्यादि करनेवालोंसे देखा गया हो, रजस्वलासे छुआ गया हो, कौए आदि पक्षियोंसे जुठाया गया हो, या कुत्तेने जिसे छू दिया हो, वह अन्न न खाय।

गवा चान्नमुपाघ्रातं घुष्टान्नं च विशेषतः।
गणान्नं गणिकान्नं च विदुषां च जुगुप्सितम् ॥२०९॥

जिस अन्नको गौने सूंघा हो, "कौन भोजन करना चाहता है ?" ऐसा पूछकर जो अन्न दिया गया हो, शठ ब्राह्मणोंके गणोंका और वेश्याका अन्न और विद्वानों द्वारा निन्दित अन्न न खाय।

स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च।
दीक्षितस्य कदर्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ॥२१०॥

चोर, गवैये, बढ़ई और सूद खानेवालोंका अन्न न खाय। यज्ञकी दीक्षा लिये हुए यजमानका दिया हवनके पूर्वका अन्न, कृपणका अन्न और कैदीका अन्न न खाय।

अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च।
शुक्तं पर्युषितं चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥२११॥

लोकापवादसे दूषित, नपुंसक, व्यभिचारिणी और कपट धर्मचारी ( अर्थात् बैडालव्रतिक आदि ) का अन्न न खाय। सिरका, बासी अन्न और शूद्रका उच्छिष्ट अन्न भी न खाय।

चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः।
उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्याचान्तमनिर्दशम् ॥२१२॥

वैद्यका, व्याधका, क्रूरका, जूठन खानेवालेका, भयङ्कर कर्म करनेवालेका और सूतिकाके लिये तैयार किया अन्न न खाय। एक पंक्तिमें बैठकर खानेवालोंमें किसीने यदि आचमन कर लिया हो तो शेष अन्न और अशौचान्न न खाय।

अनार्चितं वृथामांसमवीरायाश्च योषितः।
द्विषदन्नं नगर्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् ॥२१३॥

सम्मानपूर्वक जो अन्न न दिया गया हो, वृथा मांस [ जो देवता पितरोंको अर्पित न किया गया हो ], अवीरा [ पुत्ररहित स्त्री ] का अन्न, शत्रुका अन्न, नगरमें मिलनेवाला अन्न, पतितका अन्न तथा जिस अन्नपर किसीने छींक दिया हो वह अन्न न खाय।

पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा।
शैलूषतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥२१४॥

चुगली खानेवाले, झूठ बोलनेवाले, यज्ञविक्रयी अर्थात् "मेरे यज्ञका फल आपको हो" यह कहकर धन जमा करनेवाले, नट, दरजी और कृतघ्न—इनका अन्न नहीं खाना चाहिये।

कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च।
सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥२१५॥

लोहार, निषाद, रङ्गोपजीवी, सुनार, बांसवाला और हथियार बेचनेवालेका अन्न न खाय।

श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिर्णेजकस्य च।
रञ्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥२१६॥

आखेटके लिये कुत्ते पोसनेवाले, मद्य बेचनेवाले, धोबी, रङ्गरेज, निर्दय और जिसके घरमें उपपति अर्थात् परस्त्रीगामी पुरुष हो, इन सबका अन्न न खाय।

मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ।
अनिर्दशं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च ॥२१७॥

घरमें पत्नीके उपपतिको जानकर भी जो सहन करते हैं, जो स्त्रीके वशीभूत हैं, उनका और मृताशौचका अन्न तथा जो तृप्तिकारक न हो उस अन्नको न खाय ।

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥२१८॥

राजाका अन्न तेजको, शूद्रान्न ब्रह्मतेजको, सुनारका अन्न आयुको और चमारका अन्न यशको नष्ट करता है ।

कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ।
गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति ॥२१९॥

सूपकारादिका अन्न सन्तानको और धोबीका अन्न बलको नष्ट करता है । गणोंका और गणिकाओंका अन्न स्वर्गादि लोकोंसे वञ्चित करता है ।

पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ।
विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥२२०॥

चिकित्सकका अन्न पीब, पुंश्चलीका अन्न वीर्य, सूद खानेवालेका अन्न विष्ठा और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न मलके समान है ।

य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्तिताः ।
तेषां त्वगस्थिरोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥२२१॥

जिन जिनका अन्न खाना निषिद्ध है ऐसा यहांतक बताया गया तथा और भी जिन जिनका अन्न अभोज्य है उनका अन्न चमड़े, हड्डी और रोमके बराबर है; ऐसा विद्वान् कहते हैं ।

भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम् ।
मत्या भुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च ॥२२२॥

अतएव इनमें किसीका अन्न अज्ञानतासे खाकर तीन दिन उपवास करे और जानकर खाय तो कृच्छ्रव्रत करे; वीर्य, विष्ठा और मूत्र खानेसे भी यही प्रायश्चित्त करे।

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः।
आददीताममेवास्मादवृत्तावेकरात्रिकम् ॥२२३॥

विद्वान् ब्राह्मणको श्राद्धादि पञ्चयज्ञके अनधिकारी शूद्रका पक्वान्न भी नहीं खाना चाहिये। किन्तु खानेकी कोई वस्तु न मिलनेपर एक रातके निर्वाहयोग्य कच्चा अन्न उससे ले ले।

श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः।
मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥२२४॥

एक वेद पढ़ा हुआ है, पर कृपण है; दूसरा दाता है पर सूद खानेवाला है—देवताओंने इन दोनोंके गुण-दोषोंको विचारकर दोनोंके अन्नको तुल्य बताया।

तान्प्रजापतिराहैत्य मा कृध्वं विषमं समम्।
श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धयेतरत् ॥२२५॥

(तब) ब्रह्माने उन देवताओंसे कहा, इन विषम अन्नोंको सम मत करो, क्योंकि दाताका श्रद्धासे दिया अन्न पवित्र होता है और कृपणका अश्रद्धासे दिया हुआ अन्न दूषित होता है।

श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः ॥२२६॥

इसलिये इष्ट और पूर्त कर्मोंको सदा आलस्यरहित होकर श्रद्धापूर्वक करना चाहिये। न्यायोपार्जित धनसे श्रद्धाद्वारा किये गये ये दोनों शुभ कर्म मोक्षके कारण होते हैं।

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥२२७॥

यज्ञ और पूर्त* सम्बन्धी दान धर्म सत्पात्रको पाकर सदा प्रसन्न मनसे यथाशक्ति करना चाहिये ।

यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया ।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥२२८॥

किसीके याचना करनेपर जो कुछ बन पड़े उसे श्रद्धापूर्वक देना चाहिये, क्योंकि दानशील पुरुषके पास किसी दिन ऐसा पात्र ( अतिथि ) आ जायगा जो सब पापोंसे उसका उद्धार कर देगा ।

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥२२९॥

प्यासेको पानी देनेवाला तृप्त होता है, भूखेको अन्न देनेवाला अक्षय सुख लाभ करता है, तिल दान करनेवाला अभिलषित सन्तान और दीप दान करनेवाला उत्तम नेत्र प्राप्त करता है ।

भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥२३०॥

भूमि देनेवाला भूमि, स्वर्ण देनेवाला दीर्घ आयु, गृह उत्सर्ग करनेवाला उत्तम भवन, और चांदी दान करनेवाला सुन्दर रूप पाता है ।

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥२३१॥

वस्त्रदाता चन्द्रलोक, घोड़ा दान करनेवाला अश्विलोक, वृषभका दाता लक्ष्मी और गोदान करनेवाला सूर्यलोक प्राप्त करता है ।

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् ॥२३२॥

---

* वापी कूप तड़ागादि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ इति जातुकर्णः ।

रथ और पलङ्कका दाता पत्नीको, अभयदाता ऐश्वर्यको, अन्न-दाता चिरस्थायी सुखको और वेदकी शिक्षा देनेवाला ब्रह्मतुल्य गतिको प्राप्त होता है।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥२३३॥

जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सोने और घी आदि सब दानोंमें वेदज्ञानका दान बढ़कर है।

येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति।
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥२३४॥

जिस जिस अभिप्रायसे जिस फलको लक्ष्य कर जो जो दान करता है, जन्मान्तरमें प्रति सम्मानित होकर वह उन वस्तुओंको उसी भावसे पाता है।

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु विपर्यये ॥२३५॥

जो दाता आदरसे प्रतिग्राहीको दान देता है, और प्रतिग्राही आदरसे उस दानको ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गको जाते हैं। अप-मानसे जो दान दिया जाता है और अपमानसे लिया जाता है, वह नरकका कारण होता है।

न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम्।
नार्तोऽप्यपवदेद्विप्रान्न दत्त्वा परिकीर्तयेत् ॥२३६॥

तपस्या करके आश्चर्य न करे कि मैंने ऐसा कठिन व्रत कैसे कर लिया। यज्ञ करके झूठ न बोले, विप्रोंसे पीड़ित होनेपर भी उनकी निन्दा न करे और दान करके लोगोंमें उसकी ख्याति न करे।

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात्।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्तनात् ॥२३७॥

यज्ञ झूठ बोलनेसे, तप आश्चर्य करनेसे, आयु ब्राह्मणकी निन्दा करनेसे और दान लोगोंके आगे कहनेसे क्षीण होता है ।

धर्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥२३८॥

किसी प्राणीको न दुखाता हुआ परलोक सुधारनेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार धीरे धीरे धर्मका संचय करे । जैसे दीमक धीरे धीरे मिट्टीकी दीवाल खड़ी करती है ।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥२३९॥

परलोकमें सहायताके लिये मां, बाप, स्त्री, पुत्र या हित परिजन एक भी खड़ा नहीं होता, केवल धर्म ही खड़ा होता है ( इसलिये यत्नपूर्वक धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये ।)

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२४०॥

यह जीव अकेला ही आता है और अकेला ही यहांसे जाता है, अकेला ही पुण्य-पापका फल भी भोगता है ।

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥२४१॥

मृत शरीर (लाश) को काठ और ढेलेकी तरह धरतीपर छोड़कर बान्धव लोग मुंह फेरकर चले जाते हैं, केवल धर्म ही उसके पीछे पीछे जाता है ।

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥२४२॥

इसलिये अपनी सहायताके लिये सदा धर्मका थोड़ा थोड़ा संग्रह करना चाहिये । धर्मकी सहायतासे ही पुरुष घोर तमको पार करता है ।

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥२४३॥

तपस्यासे जिसका पाप नष्ट हो चुका है ऐसे धर्मप्रधान ब्रह्म-स्वरूप हुए तेजस्वी पुरुषको धर्म ही ब्रह्मलोक शीघ्र प्राप्त कराता है।

उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं संबन्धानाचरेत्सह ।
निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् ॥२४४॥

अपने वंशको उन्नत करनेकी इच्छा रखनेवाला पुरुष अच्छे कुल, शील, विद्या, आचारवालोंके साथ विवाहादि सम्बन्ध करे, पर नीचोंके साथ कभी सम्बन्ध न करे।

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनान्हीनांश्च वर्जयन् ।
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥२४५॥

हीन सम्बन्धको त्यागकर उत्तम पुरुषोंके साथ सम्बन्ध करनेसे ब्राह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है। किन्तु इसके विपरीत आचरणसे अर्थात् नीचोंके साथ सम्बन्ध करनेसे वह शूद्रताको प्राप्त होता है।

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥२४६॥

दृढ़ संकल्प, कोमल, दान्त, क्रूर कर्म करनेवालोंके संसर्गसे दूर रहनेवाला, किसीको न सतानेवाला, ऐसा व्रती पुरुष अपने इन्द्रिय-निग्रह और दानसे स्वर्गको जीत लेता है।

एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् ॥२४७॥

लकड़ी, पानी, फल, मूल, कच्चा अन्न और मधु, तथा अभय-दक्षिणा बिना मांगे कोई दे तो ग्रहण कर लेना चाहिये।

आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ।
मेने प्रजापतिर्ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः ॥२४८॥

घरपर लायी हुई, सामने रखी हुई जो किसीसे मांगी न गयी हो और न किसीने पहले उसके देनेकी बात कही हो, ऐसी भिक्षा पापीकी ओरसे भी दी गयी हो तो वह ले ले, प्रजापतिने इस भिक्षाको ग्राह्य माना है।

नाश्नन्ति पितरस्तस्य दश वर्षाणि पञ्च च।
न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥२४९॥

जो उस भिक्षाका अनादर करता है (अर्थात् उसे स्वीकार नहीं करता) उसके पितर उसका दिया हुआ कव्य पन्द्रह वर्षतक नहीं खाते, और अग्नि भी उसका हव्य देवताओंके पास नहीं पहुंचाती ( अर्थात् उसके द्वारा अग्निमें किये गये हवन देवगण स्वीकार नहीं करते )।

शय्यां गृहान्कुशान्गन्धानपः पुष्पं मणीन्दधि।
धाना मत्स्यान्पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुदेत् ॥२५०॥

पलङ्ग, गृह, कुश, गन्ध (कपूर आदि ) जल, फूल, मणि, दही, अन्न, दूध, साग, मछली और मांस कोई बिना मांगे दे तो उसे भी अस्वीकार न करे।

गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन्।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥२५१॥

गुरुवर्ग ( माता, पिता आदि ) और भृत्योंके पोषणार्थ, तथा देवता और अतिथियोंके पूजनार्थ सबसे (अर्थात् शूद्रादिसे भी) धनका दान ले, किन्तु उस धनका उपभोग स्वयं न करे।

गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्गृहे वसन्।
आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृह्णीयात्साधुतः सदा ॥२५२॥

मां, बाप आदि गुरुजनोंके न रहते या उनके जीवित रहनेपर उनसे पृथक् वास करनेवाला पुरुष अपनी वृत्तिके लिये सदा साधु पुरुषोंसे ही दान ले।

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥२५३॥

खेत जोतनेवाला, अपने कुलका मित्र, गौओंका पालक, टहलू और नाई तथा आत्मसमर्पण करनेवाला, ये शूद्रोंमें भोज्यान्न हैं अर्थात् इनका अन्न खानेयोग्य है।

यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृशं च चिकीर्षितम्।
यथा चोपचरेदेनं तथात्मानं निवेदयेत् ॥२५४॥

इस शूद्रका जैसा कुल-शील हो, जो करनेकी इच्छा हो, जिस प्रकार सेवा करनी हो, उस प्रकार शुद्ध भावसे आत्म-निवेदन करे।

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः ॥२५५॥

जो अपना परिचय साधुजनोंको ठीक ठीक नहीं देता अर्थात् कुछका कुछ कहता है, वह संसारमें बड़ा पापी, चोर है; क्योंकि वह आत्माका ही अपहरण करता है।

वाच्यर्था नियताःसर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥२५६॥

सब शब्दार्थ ( वाच्यार्थ ) नियत हैं, शब्द ही उनका मूल है, शब्दोंसे ही उनके अर्थोंका बोध होता है। इसलिये इन शब्दोंकी जो मनुष्य चोरी करता है, वह सब कुछ चुरानेवाला चोर है।

महर्षिपितृदेवानां गत्वानृण्यं यथाविधि।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः ॥२५७॥

महर्षि, पितर और देवता, इनके ऋणसे विधिवत् उत्तीर्ण होकर गृहस्थीका सारा भार पुत्रपर छोड़कर आप माध्यस्थ्य भावका अवलम्बन कर (घरपर) रहे।

एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ।
एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥२५८॥

निर्जन स्थानमें नित्य अकेले बैठकर आत्म-हितकी चिन्ता करे । इस प्रकार एकान्तमें आत्मचिन्तन करनेवाला पुरुष परम कल्याण ( मोक्ष ) को प्राप्त होता है ।

एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती ।
स्नातकव्रतकल्पश्च सत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥२५९॥

गृहस्थ ब्राह्मणकी यह नित्यकी वृत्ति कही गयी । [ उसी प्रकार ] सत्त्व गुणको बढ़ानेवाले स्नातक-व्रतोंकी शुभ विधिका वर्णन हुआ ।

अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेदशास्त्रवित् ।
व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीयते ॥२६०॥

वेद-शास्त्रका ज्ञाता ब्राह्मण, इस आचारका पालन कर, सब पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें महान उत्कर्षको प्राप्त होता है ।

* चतुर्थ अध्याय समाप्त *

---

## अध्याय ५



श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथोदितान् ।
इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभवं भृगुम् ॥१॥

ऋषियोंने स्नातकके यथोक्त धर्म सुनकर अग्निसे उत्पन्न उन महात्मा भृगुसे यह कहाः—

एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ।
कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥२॥

इस प्रकार यथोक्त रीतिसे अपने धर्मका अनुष्ठान करनेवाले ऐसे वेदशास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंकी मृत्यु कैसे होती है ?

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥३॥

मनुके पुत्र धर्मात्मा भृगुजीने उन महर्षियोंसे कहा—जिस दोषसे मृत्यु ब्राह्मणोंको मारनेकी इच्छा करती है, वह सुनिये ।

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥४॥

वेदोंका अभ्यास न करनेसे, अपने आचारको छोड़ देनेसे, कर्तव्यपालनमें आलस्य करनेसे और दूषित अन्न खानेसे मृत्यु ब्राह्मणोंके मारनेकी इच्छा करती है ।

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥५॥

लहसुन, गजरा, प्याज और गोबरछत्ता तथा अशुद्ध उत्पत्तिवाले पदार्थ द्विजातियोंके लिये अखाद्य हैं ।

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वृश्चनप्रभवांस्तथा ।
शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥६॥

पेड़से निकला हुआ लाल गोंद या पेड़के काटनेपर जो गोंद निकलता है, लिसोढ़ेके फल, गायका पेयूष* दूध ये सब यत्नपूर्वक त्याग दे ।

वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च ।
अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च ॥७॥

अपने लिये पकाया हुआ कृसर† संयाव‡ (जो गेहूं का मैदा

---

* आसप्तरात्रप्रभवं क्षीरं पेयूषमुच्यते । इति हारावली ।

† तिलतण्डुलसम्पक्वः कृसरः सोऽभिधीयते ।

‡ संयावो घृतदुग्धेषु सिद्धं गोधमचूर्णकम् ॥

घीमें भूनकर दूध और गुड़में सिद्ध किया जाता है, ) पायस (खीर), मालपूआ, अवैध मांस, देवताके निमित्त रखा हुआ अन्न और हवि, ये सब न खाय ।

अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा ।
आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः ॥८॥

ब्याई हुई गाय जबतक शुद्ध न हो तबतक उसका दूध, ऊँटनीका, घोड़ीका और भेड़ीका तथा उस गायका दूध, जो ऋतुमती होनेके कारण वृषको चाहती हो, और जिस गायके बछड़ा न हो, उसका भी दूध न खाय ।

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना ।
स्त्रीक्षीरं चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि ॥९॥

भैंसको छोड़कर अन्य जंगली पशुओंका और स्त्रीका दूध तथा सब प्रकारकी कांजियोंको त्याग देना चाहिये ।

दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च दधिसंभवम् ।
यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥१०॥

कांजियोंमें दही और दहीकी बनी छाछ आदि और पानीमें सिझाये फल फूल मूल आदि यदि विकृत न हों तो वे भी खाने योग्य हैं ।

क्रव्यादाञ्छकुनान्सर्वांस्तथा ग्रामनिवासिनः ।
अनिर्दिष्टांश्चैकशफांष्टिट्टिभं च विवर्जयेत् ॥११॥

कच्चे मांस खानेवाले (गिद्ध आदि) और गांव घरमें रहनेवाले ( कबूतर आदि ) पक्षीका मांस न खाय । जिनके नामका निर्देश न किया गया हो ऐसे एक खुरवाले घोड़े और गधे आदि भी अभक्ष्य हैं । टिटहरी पक्षीका मांस भी वर्जित है ।

कलविङ्कं प्लवं हंसं चक्राह्वं ग्रामकुक्कुटम् ।
सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुकसारिके ॥१२॥

चटक ( गौरैया ), पपीहा, हंस, चकवा, ग्रामकुक्कुट ( मुरगा ), बत्तक, रज्जुवाल, जलकाक, सुग्गा और मैना—इन पक्षियोंका मांस न खाय।

प्रतुदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्किरान्।
निमज्जतश्च मत्स्यादान्शौनं वल्लूरमेव च ॥१३॥

कठफोड़ा और जिनके चंगुल झिल्लीसे जुटे हों वे, जलमुरगा, नखसे विदीर्ण कर खानेवाला [ बाज आदि ] और पानीमें डूबकर मछली खानेवाला,पक्षी, वधस्थानका मांस और सूखा मांस वर्जित है।

बकं चैव बलाकां च काकोलं खञ्जरीटकम्।
मत्स्यादान्विड्वराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥१४॥

बगुला, बलाका, द्रोणकाक, खञ्जन, मछली खानेवाले जलजीव [ मगर आदि ], ग्राम्य शूकर और सब प्रकारकी मछलियां न खाय।

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते।
मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत् ॥१५॥

जो जिसका मांस खाता है, वह उसका मांस खानेवाला कहलाता है। जो मछली खाता है, वह सब मांसोंका खानेवाला है, इसलिये मछली न खाय।

पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः।
राजीवान्सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः ॥१६॥

पाठीन (बुआरी) और रोहित ( रोहू ) मछली हव्य-कव्यके लिये प्रशस्त कही गयी है। राजीव, सिंहतुण्ड, और चोयटेवाली सब मछलियां खाद्य हैं।

न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान्।
भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥१७॥

अकेले चलने और रहनेवाले सर्पादि जीवोंको, भक्ष्योंमें कहे गये

वे पशुपक्षी जो परिचित न हों उन्हें और पञ्चनखवाले वानरादि प्राणियोंको न खाय ।

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ।
भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥१८॥

पञ्चनखियोंमें सेध, साही, गोह, गैंड़ा, कछुआ और खरहा तथा एक ओर दांतवाले पशुओंमें ऊँटको छोड़कर बकरे आदि भक्ष्य हैं, ऐसा कहा है ।

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ।
पलाण्डुं गृञ्जनं चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः ॥१९॥

गोवरछत्ता, ग्राम्य शूकर, ग्रामकुक्कुट, लहसुन, प्याज और गजरा, ये जानकर खानेसे द्विज पतित होता है ।

अमत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ।
यतिचान्द्रायणं वापि शेषेषूपवसेदहः ॥२०॥

ऊपर कही गयी छः वस्तुओंमेंसे कोई वस्तु विना जाने खाये तो कृच्छ्र सान्तपन या यति चान्द्रायण व्रत करे । और शेष जितने अखाद्य कहे गये हैं, उनमें कोई चीज खा लेनेसे एक दिन उपवास करे ।

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजोत्तमः ।
अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥२१॥

ब्राह्मणको चाहिये कि वर्षमें अज्ञात भक्षणके दोषशान्त्यर्थ कमसे कम एक कृच्छ्रव्रत करे । किन्तु जिसने जानकर खाया हो, उसे विशेष रूपसे व्रत करना चाहिये ।

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः ।
भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा ॥२२॥

ब्राह्मण यज्ञके निमित्त अथवा भरण-पोषणयोग्य स्वजनोंके

रक्षार्थ प्रशस्त पशुपक्षिओंका वध कर सकते हैं; कारण अगस्त्य मुनिने पहले ऐसा किया है।

बभूवुर्हि पुरोडासा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम्।
पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥२३॥

पहले ऋषिकर्तृक जो यज्ञ हुए और ब्राह्मण-क्षत्रियोंने जो यज्ञ किये उनमें भी भक्ष्य पशुपक्षियोंके मांसके पुरोडास हुए हैं।

यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम्।
तत्पर्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत् ॥२४॥

भक्ष्य (पक्वान्न) और भोज्य (पायसादि) पदार्थ जो अनिन्दित हों (प्रशस्त हों) वे बासी होनेपर भी ( घृत, दधि आदिसे ) स्निग्ध करके खानेयोग्य हैं।। ( उसी प्रकार ) हविका शेष भी बासी होने-पर भी ( बिना घृतादि मिलाये ) खानेयोग्य है।

चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः।
यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया ॥२५॥

यव, गेहूं और मावेकी बनी हुई वस्तुमें तेल-घीका सम्बन्ध न हो तो वह बहुत दिनोंकी बनी हुई होनेपर भी खानेयोग्य है, यदि बिगड़ी न हो।

एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशेषतः।
मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं भक्षणवर्जने ॥२६॥

यहांतक द्विजातियोंका भक्ष्याभक्ष्य विचार संपूर्ण रूपसे कहा। अब मांस खाने और छोड़नेकी विधि कहता हूं।

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया।
यथाविधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥२७॥

मन्त्रोंद्वारा पवित्र किया हुआ मांस खाना चाहिये। ब्राह्मणकी मांस खानेकी जब इच्छा हो तब वह (एक बार मांस) खा सकता

है। शास्त्रोक्त विधिमें मांस खाना चाहिये। और प्राणोंपर संकट आवे तभी मांस खा सकता है।

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत्।
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥२८॥

ब्रह्माने यह सब प्राणके लिये अन्न ही कल्पित किया है। स्थावर (अन्न फल आदि) और जंगम (पशुपक्षी आदि) सब प्राणके ही भोजन हैं।

चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः।
अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः ॥२९॥

चरोंका अन्न अचर (तृण आदि), डाढ़वालोंका बिना डाढ़के जीव (हिरन आदि), हाथवालों (मनुष्य) का बिना हाथके जीव (मछली आदि) और शूरोंका अन्न भीरु है।

नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोऽहन्यहन्यपि।
धात्रैव सृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोत्तार एव च ॥३०॥

खानेवाला जीव खानेयोग्य प्राणियोंको प्रतिदिन खाकर भी दोष-भागी नहीं होता, क्योंकि ब्रह्माने ही खाद्य और खादक दोनोंका निर्माण किया है।

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिः स्मृतः।
अतोऽन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते ॥३१॥

यज्ञके निमित्त मांस-भक्षणको दैवी विधि कहा है। इसके विरुद्ध मांसभक्षणकी प्रवृत्ति राक्षसी विधि है (अर्थात् अपने लिये पशुहिंसा करके उसका मांस खाना राक्षसोचित कर्म है)।

क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परोपकृतमेव वा।
देवान्पितॄंश्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति ॥३२॥

खरीदकर या स्वयं कहींसे लाकर या सौगातकी तरह किसीका

दिया हुआ मांस देवता और पितरोंको अर्पित कर खाय तो खानेवाला दोषी नहीं होता।

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः।
जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यतेऽवशः ॥३३॥

विधिनिषेधका जाननेवाला ब्राह्मण सुखावस्थामें अविधिपूर्वक मांस न खाय, क्योंकि अविधिसे मांस खानेवालेको जन्मान्तरमें वे प्राणी खा जाते हैं (जिनका मांस उसने खाया था)।

न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः।
यादृशं भवति प्रेत्य वृथामांसानि खादतः ॥३४॥

धनके निमित्त मृग मारनेवालेको वैसा पाप नहीं लगता जैसा वृथा मांस खानेवालेको परलोकमें होता है।

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः।
स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥३५॥

(श्राद्ध और मधुपर्कमें) यथाविधि नियुक्त होनेपर जो मनुष्य मांस नहीं खाता, वह मरनेके अनन्तर इक्कीस जन्मतक पशु होता है।

असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदाचन।
मन्त्रैस्तु संस्कृतानद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः ॥३६॥

ब्राह्मण कभी वेदोक्त मन्त्रोंसे बिना संस्कार किये पशुओंका मांस न खाय, किन्तु यज्ञविधिमें मन्त्रोंसे संस्कृत किये हुए पशुओंका मांस खाय।

कुर्याद्घृतपशुं सङ्गे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा।
न त्वेव तु वृथा हन्तुं पशुमिच्छेत्कदाचन ॥३७॥

(बड़ी इच्छा हो तो) घृत या मैदेका पशु बनाकर खाय, किन्तु पशुको व्यर्थ मारनेकी इच्छा कदापि न करे (अर्थात् अपने लिये कभी पशुहिंसा न करे)।

यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो ह मारणम् ।
वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि ॥३८॥

पशुओंको वृथा मारनेवाला मनुष्य मरनेपर उन पशुओंकी रोम-संख्याके बराबर जन्म जन्ममें मारा जाता है। [ इसलिये वृथा पशुहिंसा न करे ]

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥३९॥

स्वयं ब्रह्माने यज्ञके लिये और सब यज्ञोंकी समृद्धिके लिये-पशुओंका निर्माण किया है, इसलिये यज्ञमें पशुका वध अवध (अहिंसा) है।

ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा ।
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥४०॥

धन्यादिक, पशु, वृक्ष, कछुए आदि और पक्षी, ये सब यज्ञके निमित्त मारे जानेपर फिर उत्तम योनिमें जन्म ग्रहण करते हैं।

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥४१॥

मधुपर्क, ज्योतिष्टोमादि यज्ञ, पितृकर्म और देवकर्म, इन्हींमें पशु हिंसा करनी चाहिये, अन्यत्र नहीं—यह मनुजीने कहा है।

एष्वर्थेषु पशून्हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः ।
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥४२॥

वेदके तत्त्वको जाननेवाला द्विज इन पूर्वोक्त मधुपर्कादि कर्मोंमें पशुकी हिंसा करता हुआ अपनेको और उस पशुको उत्तम गति प्राप्त कराता है।

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः।
नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत् ॥४३॥

आत्मनिष्ठ ब्राह्मण गृहमें, गुरुकुलमें या वनमें [ अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रममें, या गृहस्थाश्रममें, या वानप्रस्थ-आश्रममें ] रहकर आपत्तिमें भी वेदविरुद्ध हिंसा न करे।

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥४४॥

जो हिंसा वेदविहित है और इस चराचर जगतमें नियत है, उसे अहिंसा ही समझना चाहिये, क्योंकि धर्म वेदसे ही निकला है।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥४५॥

जो अपने सुखकी इच्छासे अहिंसक प्राणियोंको मारता है, वह इस जीवनमें या जन्मान्तरमें कहीं सुख नहीं पाता।

यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥४६॥

जो प्राणियोंको बांधने, मारने या क्लेश देनेकी इच्छा नहीं करता, वह सब जीवोंका हित चाहनेवाला अत्यन्त सुख पाता है।

यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च।
तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्चन ॥४७॥

जो किसी प्राणीको दुःख नहीं देता, वह जिस धर्मको मनसे चाहता है, जो कर्म करता है, जिस परमार्थपर ध्यान लगाता है, वह उसे अनायास ही प्राप्त होता है।

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥

प्राणियोंकी हिंसा किये बिना कभी मांस उत्पन्न नहीं हो सकता। पशुओंका ( व्यर्थ ) वध करना स्वर्गनिमित्तक नहीं होता, इसलिये मांस खाना छोड़ देना चाहिये।

समुत्पत्तिं मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ॥४९॥

मांसकी उत्पत्ति कैसे होती है (रजवीर्यके संयोगसे) इसे और प्राणियोंके वध-बन्धन ( निर्दयतामूलक ) को अच्छी तरह सोचकर सब प्रकारके मांस-भक्षणको त्याग देना चाहिये।

न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत् ।
स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ॥५०॥

जो विधिको छोड़कर पिशाचकी तरह मांस नहीं खाता वह संसारमें सबका प्यारा होता है और रोगों*से पीड़ित नहीं होता।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥५१॥

मारनेकी आज्ञा देनेवाला, उसके खण्ड खण्ड करनेवाला, मारनेवाला, बेचने और मोल लेनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला और खानेवाला—ये आठों घातक हैं।

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
अनभ्यर्च्य पितॄन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥५२॥

जो देवता पितरोंको अर्पित किये बिना दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहता है उससे बढ़कर पापी दूसरा कोई नहीं है।

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥५३॥

---

* अवैध मांस खानेसे रोग होते हैं इसलिये अवैध मांस नहीं खाना चाहिये।

जो प्रति वर्ष सौ वर्षतक अश्वमेध-यज्ञ करता है और जो बिल-कुल ही मांस नहीं खाता, इन दोनोंका पुण्यफल बराबर है।

फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः।
न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥५४॥

पवित्र फल मूल और मुनियोंके नीवार आदि हविष्यान्न खानेसे वह फल नहीं मिलता, जो केवल मांस छोड़ देनेसे मिलता है।

मांस भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५५॥

मैं इस लोकमें जिसका मांस खाता हूं परलोकमें वह मुझे भी खायेगा। यही मांसका मांसत्व है, ऐसा पण्डितोंका कहना है।

ना मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥५६॥

( विधिपूर्वक ) मांस खाने, मद्य पीने, और स्त्रीप्रसङ्ग करनेमें दोष नहीं है; क्योंकि प्राणियोंकी प्रवृत्ति ही ऐसी है। परन्तु उससे निवृत्त होना महाफलदायी है।

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च।
चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः ॥५७॥

अब चारों वर्णोंकी प्रेतशुद्धि और द्रव्यशुद्धि शुद्ध क्रमसे कहता हूं।

दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते।
अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥५८॥

दांत चमकने और दांत निकलनेके पीछे तथा चूड़ाकरण और उपनयनके अनन्तर बालककी मृत्यु होनेपर सपिण्ड और समानोदक बान्धव अशुचि होते हैं और किसीका जन्म होनेपर भी उन्हें अशौच होता है।

दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
अर्वाक् संचयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव वा ॥५९॥

मृताशौचमें दायादोंको दस दिनतक अशौच होता है । अथवा अस्थिसंचयके पूर्व तीन दिन या एक दिनरात अशौच होता है ।

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥६०॥

सातवें पुरुषमें सपिण्डता निवृत्त होती है । जन्म और नामके न जाननेपर समानोदक-भाव निवृत्त होता है ।

यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
जननेऽप्येवमेव स्यान्निपुणं शुद्धिमिच्छताम् ॥६१॥

सपिण्ड गोतियोंमें जैसे यह दस दिन मृतक अशौचका विधान है वैसे ही शुद्धि चाहनेवाले सपिण्डोंके लिये जन्म-सम्बन्धी अशौच-का भी विधान है ।

सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥६२॥

मृताशौच सभी सपिण्डोंको बराबर होता है, जन्माशौच मां-बापको ही होता है । इसमें विशेषता इतनी है कि जननी दस राततक अपवित्र रहती है, किन्तु पिता स्नानमात्रसे ही शुद्ध * होता है ।

निरस्य तु पुमाञ्छुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्ध्यति ।
बैजिकादभिसंबन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् ॥६३॥

इच्छासे वीर्यस्खलन कर पुरुष स्नान करनेसे शुद्ध होता है ।

---

*जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ।
माता शुद्ध्येद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ॥ इति संवर्तः ।

बीजके सम्बन्धसे परस्त्रीमें सन्तानोत्पत्ति होनेपर तीन दिनतक अशौच होता है।

अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः।
शवस्पृशो विशुद्ध्यन्ति त्र्यहादुदकदायिनः ॥६४॥

जो एक या तीन दिनके अशौचाधिकारी हैं, वे यदि मोहवश शवस्पर्श करें तो वे दस दिनमें शुद्ध होते हैं और समानोदक तीन दिनमें।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥६५॥

गुरुके मरनेपर उनका विगोत्र शिष्य दाहादिक्रिया करे तो वह उनके दाहक-वाहक सपिण्डोंके समान दस रातमें शुद्ध होता है।

रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति।
रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥६६॥

गर्भस्राव होनेपर जितने महीनेका गर्भ हो उतने संख्यक रातमें स्त्री शुद्ध होती है। (यह व्यवस्था छः महीनेतकके लिये है) रजस्वला साध्वी स्त्री रज-निवृत्त होनेपर स्नानसे शुद्ध होती है।

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता।
निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥६७॥

चूडाकरणके पूर्व बालककी मृत्यु होनेसे सपिण्ड दायादोंको एक अहोरात्र और चूडाकरणके बाद उपनयनके पूर्व मृत्यु होनेसे तीन राततक अशौच होता है।

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः।
अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥६८॥

दो वर्षसे कम उम्रका बालक मर जाय तो बन्धुवर्ग उसे फूल-

मालाओंसे अलंकृत कर गांवके बाहर पवित्र भूमिमें रखें। उसका अस्थिसंचयन न करें।

नास्य कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया।
अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च ॥६९॥

इसका अग्निसंस्कार न करें, और न इसकी उदकक्रिया ही करें, उसे जंगलमें लकड़ीकी तरह त्याग* कर तीन दिनतक अशौच मानें।

नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया।
जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥७०॥

तीन वर्षसे कम उम्रका बालक मरे तो उसे जलाञ्जलि न दे। अथवा जिसके दांत निकल आये हों और नामकरण हो गया हो उसकी उदक-क्रिया और उसके साथ अग्निसंस्कार करे। (ऐसा करनेसे प्रेतका कुछ उपकार हो सकता है। न करनेसे पाप भी नहीं होता।)

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम्।
जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥७१॥

सहपाठी (ब्रह्मचर्यके साथी) की मृत्युसे एक दिन अशौच होता है। समानोदकोंके यहां पुत्रजन्म होनेसे तीन दिन अशौच होता है।

स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुद्ध्यन्ति बान्धवाः।
यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्ध्यन्ति तु सनाभयः ॥७२॥

अविवाहिता कन्या वाग्दानके अनन्तर मर जाय तो उसका भावी पति और देवर आदि तीन दिनमें शुद्ध होते हैं, और उसके

* यद्यपि मनुजीने त्यागमात्र करनेको कहा है तथापि "ऊनद्विवार्षिकं निखनेत्" याज्ञवल्क्यके इस वचनके अनुसार उसे विशुद्ध भूमिमें गाड़ देना चाहिये। व्यवहार भी ऐसा ही है।

पितृपक्षवाले भी उसी पूर्वोक्त व्यवस्थाके अनुसार अर्थात् तीन दिनमें शुद्ध होते हैं।

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम्।
मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥७३॥

मृताशौचमें क्षार लवण ( कृत्रिम नमक ) न खाय, तीनों दिन नदी या झीलमें स्नान करे। मांस न खाय, धरतीपर अकेला न सोये।

सन्निधावेष वै कल्पः शावाशौचस्य कीर्तितः।
असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः संबन्धिबान्धवैः ॥७४॥

मृताशौचकी यह विधि मृतपुरुषके संनिध ( अर्थात् एक स्थानमें) रहनेवालोंके लिये कही गयी। दूरस्थ बन्धु-बान्धवोंके लिये अशौच-की विधि यह है :—

विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्।
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥७५॥

दशाहाशौचके भीतर विदेशस्थ दायादकी मृत्युवार्ता सुननेपर दशाहमें जितने दिन बाकी रहें उतने दिन अशौच होता है।

अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्।
संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुद्ध्यति ॥७६॥

दशाह बीत जानेपर मृत्युवार्ता होनेसे त्रिरात्राशौच होता है। वर्ष बीत जानेपर स्नान करनेसे ही शुद्धि होती है।

निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च।
सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥७७॥

दशाहके अनन्तर सपिण्ड दायादका मरण या पुत्रजन्मका समाचार सुनकर मनुष्य सचैलस्नानसे शुद्ध होता है, ( अर्थात् संवाद पानेके समय शरीरमें जो कपड़े हों, उनके सहित जलमें स्नान करना चाहिये। )

बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते ।
सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुद्ध्यति ॥७८॥

असपिण्ड ( समानोदक ) बालकके देशान्तरमें मर जानेकी वार्ता पाकर तुरन्त सचैलस्नान करनेसे शुद्ध होता है ।

अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ।
तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम् ॥७९ ॥

दश दिनके भीतर यदि मरणाशौचमें पुनः दूसरा मरण और जननाशौचमें दूसरा जन्म संघटित हो तो ब्राह्मण तभीतक अशुद्ध रहता है जबतक पूर्व दशाहाशौच पूरा नहीं होता ।

त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति ।
तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥८०॥

मुनियोंने आचार्यके मरनेपर तीन दिन अशौच कहा है । किन्तु उनके पुत्र या स्त्रीकी मृत्यु होनेपर एक अहोरात्र ( एक दिन-रात ) अशौच होता है, यह शास्त्रकी आज्ञा है ।

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।
मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥८१॥

कोई वेद-शास्त्रका जाननेवाला पुरुष जिसके घरपर मरता है, उसको त्रिरात्राशौच होता है । मामा, यज्ञपुरोहित, बान्धव और शिष्यकी मृत्यु होनेपर पक्षिणी अर्थात् दो दिन और एक रात अशौच होता है ।

प्रेते राजनि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ।
अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ॥८२॥

जिसके राज्यमें ब्राह्मण निवास करते हों उस राजाकी मृत्यु होनेकी वार्ता दिनको मिले तो सूर्यदर्शनपर्यन्त और रातको मिले तो तारे जबतक दिखायी दें तबतक अशौच होता है । वेदशास्त्र न जान-

नेवाला दिनको जिसके घरपर मरे उसे सारा दिन और रातमें मरे तो सारी रात अशौच होता है। साङ्ग वेदाध्यायी गुरुके मरनेपर भी ऐसे ही एक दिन या एक रात अशौच जानना।

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥८३॥

उपनीत सपिण्डके मरण या जन्ममें ब्राह्मण दस दिनमें, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पन्द्रह दिनमें और शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है।

न वर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः।
न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यशुचिर्भवेत् ॥८४॥

अशौचके दिन न बढ़ाने चाहिये, और अग्निहोत्रकी क्रियामें बाधा नहीं डालनी चाहिये। उस कर्मको करता हुआ सपिण्ड भी अपवित्र नहीं होता।

दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा।
शवं तत्स्पृष्टिनं चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥८५॥

चाण्डाल, रजस्वला, पतित, प्रसूतिका, शव ( मुर्दा ) और शवके स्पर्शकर्ताको छूकर स्नानसे शुद्धि होती है।

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने।
सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः ॥८६॥

स्नान आचमन करके पितृकर्म या देवकर्म करनेवालेकी दृष्टि यदि चाण्डाल आदि अपवित्र लोगोंपर पड़े तो वह यथासाध्य सूर्यका मन्त्र [ उदुत्यं जातवेदसमित्यादि ] और यथाशक्ति पावमानी [ पुनन्तु मां इत्यादि ] मन्त्र जपे।

नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥८७॥

मनुष्यकी मज्जासहित हड्डी छूकर ब्राह्मण स्नान करनेसे शुद्ध

होता है। सूखी हड्डी छूनेपर आचमन करके, गायका स्पर्श कर व सूर्यको देखकर शुद्ध होता है।

आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात्।
समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥८८॥

ब्रह्मचारी अपने व्रतकी समाप्तिपर्यन्त प्रेतकी उदकक्रिया न करे। ब्रह्मचर्य समाप्त होनेपर वह प्रेतको जलाञ्जलि देकर तीन रात्रमें शुद्ध होता है।

वृथासंकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम्।
आत्मनस्त्यागिनां चैव निवर्तेतोदकक्रिया ॥८९॥

जिन्होंने अपने धर्मको छोड़ दिया हो, जो प्रतिलोम वर्णसंकर हों, जो संन्यासी हो गये हों, जिन्होंने स्वेच्छासे आत्महत्या कर ली हो, उनको जलाञ्जलि न देनी चाहिये।

पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां च कामतः।
गर्भभर्तृद्रुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥९०॥

जो स्त्रियां पाखण्डी हों, स्वेच्छाचारिणी हों, गर्भ नष्ट करनेवाली तथा पतिसे द्रोह करनेवाली हों और मद्य पीती हों, उनकी उदकक्रिया न करे।

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम्।
निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते ॥९१॥

अपने आचार्य, उपाध्याय, पिता, माता, और गुरु, इनके शव (मृतक शरीर) ढोनेसे ब्रह्मचारीका व्रत लोप नहीं होता।

दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत्।
पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥९२॥

मृतशूद्रको नगरके दक्षिण द्वारसे, वैश्यको पश्चिम, क्षत्रियको उत्तर और ब्राह्मणको पूर्व द्वारसे श्मशानमें ले जाय।

न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ।
ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥९३॥

राजाओंको सपिण्डके मरण-जननके अशौचका दोष नहीं होता, क्योंकि वे इन्द्रके स्थान [ राज्याभिषेक ] का अधिकार पाये रहते हैं। व्रती [ ब्रह्मचारी और चान्द्रायण आदि व्रत करनेवाले ] और यज्ञ करनेवालेको अशौच नहीं होता; क्योंकि ब्राह्मणके समान ये निष्पाप होते हैं।

राज्ञो महात्मिके स्थाने सद्यः शौचं विधीयते ।
प्रजानां परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम् ॥९४॥

राजसिंहासनपर विराजमान होनेके कारण राजाकी सद्यः शुद्धि कही गयी है। प्रजाओंकी रक्षाके लिये राजसिंहासनपर बैठना ही इस सद्यःशौचका कारण जानना चाहिये।

डिम्भाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च ।
गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥९५॥

जिस युद्धमें राजा नहीं होता ऐसे युद्धमें मारे गये हों, वज्रपातसे जिनकी मृत्यु हुई हो, राजाने जिन्हें प्राणदण्ड दिया हो, गाय और ब्राह्मणके रक्षार्थ जिन्होंने प्राण दे दिये हों और राजा जिन्हें चाहता हो कि अशौच न हो उन्हें सद्यःशौच होता है।

सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ।
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥९६॥

चन्द्रमा, अग्नि, सूर्य, वायु, इन्द्र, कुबेर, वरुण और यम—इन आठों लोकपालोंका वास राजाके शरीरमें रहता है।

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचं विधीयते ।
शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम् ॥९७॥

राजाके शरीरमें लोकपालोंका अंश अधिष्ठित होनेके कारण उसे

अशौचका दोष नहीं होता। कारण, मनुष्यका जो शौच-अशौच हैं, लोकपालोंसे ही उत्पन्न होता और नाश होता है।

उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च।

सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥९८॥

युद्धमें शस्त्रोंके द्वारा, क्षात्र-धर्मसे जो मारा जाता है, उसे उसी क्षण यज्ञका फल और सद्यःशुद्धि प्राप्त होती है, ऐसा शास्त्रका सिद्धान्त है।

विप्रः शुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम्।

वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः ॥९९॥

अशौचके अन्तमें ब्राह्मण श्राद्धादि कर्म करके दाहिने हाथसे जल छूकर, क्षत्रिय वाहन और अस्त्र, वैश्य चाबुक या लगाम और शूद्र बांसकी लाठी छूनेसे शुद्ध होता है।

एतद्वोऽभिहितं शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः।

असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधत ॥१००॥

हे मुनिगण! यह शौच मैंने सपिण्डोंके मरनेका कहा। अब असपिण्डोंकी प्रेतशुद्धि कहता हूं, सो सुनिये।

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत्।

विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान् ॥१०१॥

असपिण्ड ब्राह्मणके शवको बान्धवकी भांति वहन करके और मातृपक्षके समीपी सम्बन्धी [ मामा, मौसी, बहन आदि ] का शव उठाकर तीन रातमें शुद्धि होती है।

यद्यन्नमत्ति तेषां तु दशाहेनैव शुद्ध्यति।

अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन्गृहे वसेत् ॥१०२॥

मृतकको उठानेवाला यदि उसके सपिण्डका अन्न खाये तो वह दशाहाशौचका भागी होता है। [ त्रिरात्रसे उसकी शुद्धि नहीं होती ।]

यदि अशौचान्न न खाये और न उसके घरपर रहे, तो एक अहोरात्रमें वह शुद्ध होता है ।

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च ।
स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्धयति १०३

सपिण्ड या असपिण्ड मृतकके पीछे पीछे कोई अपनी इच्छासे जाय तो सचैल स्नानके अनन्तर अग्निका स्पर्श और घृतप्राशन करनेसे शुद्ध होता है ।

न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत् ।
अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता ॥१०४॥

आत्मीय लोगोंके रहते हुए मृतक ब्राह्मणको शूद्रसे न उठवावें, क्योंकि शूद्रके स्पर्शसे दूषित होनेके कारण मृतकका वह दग्धशरीर स्वर्गनिमित्तक नहीं होता ।

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनो वार्युपाञ्जनम् ।
वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम् ॥१०५॥

ज्ञान, तप, अग्नि, भोजन, मिट्टी, मन, जल, उपलेपन, वायु, कर्म, सूर्य और काल, ये देहधारियोंको पवित्र करनेवाले होते हैं ।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥१०६॥

सब शौचोंमें अर्थशौचको महर्षियोंने श्रेष्ठ कहा है । जो अर्थ [ द्रव्य ] सम्बन्धमें शुद्ध है, वही शुद्ध है । केवल मृत्तिका और जलसे शुद्ध भी शुद्ध नहीं है ।

क्षान्त्या शुद्धयन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः ॥१०७॥

क्षमासे विद्वान्, दानसे अकर्म करनेवाले, जपसे गुप्तपातकी, और तपसे वेद जाननेवाले शुद्ध होते हैं ।

मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुद्ध्यति ।
रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमाः ॥१०८॥

मलसे दूषित पदार्थ, मिट्टी और जलसे शुद्ध होता है। नदी अपने प्रवाहके वेगसे शुद्ध होती है। दूषित मनवाली स्त्री रजसे और ब्राह्मण संन्यास-धर्मके आचरणसे शुद्ध होता है।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥१०९॥

शरीर जलसे, मन सत्यसे, जीवात्मा विद्या और तपसे, और बुद्धि ज्ञानसे शुद्ध होती है।

एष शौचस्य वः प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः ।
नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् ॥११०॥

यह शरीर-सम्बन्धी शौचकी व्यवस्था कही। अब विविध प्रकारके द्रव्योंकी शुद्धि जैसे होती है, उसका निर्णय कहता हूं, सुनिये।

तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ।
भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥१११॥

सुवर्ण आदि धातुओं, मणियों और पत्थरके बने सब पदार्थोंकी शुद्धि भस्म, जल और मिट्टीसे होती है, यह पण्डितोंने कहा है।

निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्ध्यति ।
अब्जमश्ममयं चैव राजतं चानुपस्कृतम् ॥११२॥

सोनेका वह वर्तन, जिसमें कोई लेप न लगा हो, जलसे उत्पन्न होनेवाला शंख और मूंगा आदि, पत्थरके बने पात्र, चांदीके सादे वर्तन केवल पानीसे ही शुद्ध होते हैं।

अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यं च निर्बभौ ।
तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः ॥११३॥

अग्नि और जलके संयोगसे सोना और चांदी उत्पन्न हुई, इसलिये इन दोनोंकी शुद्धि अपने उत्पादक ( जल और अग्नि ) के द्वारा ही श्रेष्ठ होती है।

ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च ।
शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥११४॥

तांबा, लोहा, कांसा, पीतल, राङ्गा और सीसा, इनकी यथायोग्य क्षार, खटाई और जलसे शुद्धि करनी चाहिये।

द्रवाणां चैव सर्वेषां शुद्धिरुत्पवनं स्मृतम् ।
प्रोक्षणं संहतानां च दारवाणां च तक्षणम् ॥११५॥

द्रव ( घी तेल आदि ) पदार्थोंकी शुद्धि उत्पवनसे अर्थात् पवित्र कुशद्वारा उसके ऊपरका कुछ भाग फेंक देनेसे, दरी कम्बल आदिकी शुद्धि जलके द्वारा पोंछनेसे और काठकी बनी वस्तुओंकी शुद्धि उसपर रंदा फेर देनेसे होती है।

मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥११६॥

यज्ञपात्रोंकी शुद्धि हाथसे झाड़ देनेसे होती है। यज्ञकर्ममें चमस, ग्रह आदि पात्रोंकी शुद्धि धोनेसे होती है।

चरूणां स्रुक्स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
स्फ्यशूर्पशकटानां च मुसलोलूखलस्य च ॥११७॥

चरु अर्थात् हवि बनानेका पात्र, स्रुक् और स्रुवा तथा स्फ्य ( खड्गाकार काष्ठनिर्मित पात्र विशेष ) शूर्प, शकट, ऊखल और मूसलकी शुद्धि गरम पानीसे धोनेसे होती है।

अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् ।
प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते ॥११८॥

अन्न और वस्त्रोंका ढेर स्पर्शादि दोषसे दूषित होनेपर जल

छींटनेसे शुद्ध होता है और थोड़ा रहे तो उनकी शुद्धि धोनेसे होती है।

चेलवच्चर्मणां शुद्धिर्वैदलानां तथैव च।

शाकमूलफलानां च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ॥११९॥

स्पृश्य चमड़ोंकी और बांस आदिके पत्तोंकी बनी वस्तुओंकी शुद्धि वस्त्रकी तरह और साग, फल, मूलकी शुद्धि अन्नकी तरह होती है।

कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः ।

श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥१२०॥

रेशमी और ऊनी कपड़ोंकी शुद्धि खारी मिट्टीसे, नेपाली कम्ब-लोंकी रीठोंसे, सनके बने वस्त्रोंकी शुद्धि बेलसे और अलसीके सनके बने वस्त्रोंकी शुद्धि सफेद सरसोंके चूर्णसे होती है।

क्षौमवच्छङ्खशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च।

शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा ॥१२१॥

शंख और सींग, हड्डी तथा हाथीके दांतोंकी शुद्धि तीसीके सन-निर्मित वस्त्रके समान ही है ( अर्थात् सफेद सरसोंके चूर्णसे यह शुद्ध होती है ) इसमें गोमूत्र या जलका योग करना चाहिये।

प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलालं चैव शुद्ध्यति ।

मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥१२२॥

तिनके, लकड़ी और पुआलकी शुद्धि जल छींटनेसे होती है। घर बुहारने और लीपनेसे और मिट्टीका वर्तन पुनः आगमें पकानेसे शुद्ध होता है।

मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः ।

संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥१२३॥

किन्तु जिस मिट्टीके वर्तनमें मद्य, मूत्र, विष्ठा, थूक, लहू, और राद लग जाय, वह पुनः आगसे भी शुद्ध नहीं होता।

संमार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च ।
गवां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः ॥१२४॥

झाड़ने-बुहारने, लीपने, गोमूत्र या गङ्गाजल आदि छिड़कने, ऊपरकी कुछ मिट्टी खोदकर फेंक देने और गौओंको रखनेसे—इन पांच प्रकारसे भूमि शुद्ध होती है ।

पक्षिजग्धं गवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम् ।
दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुद्ध्यति ॥१२५॥

जो अन्न साधारण पक्षियोंसे जुठाया गया हो, गायने जिसे सूंघा हो, जिसपर किसीने छींका हो, जिसमें केश और कीड़े पड़ गये हों, वह मिट्टी डालनेसे शुद्ध होता है ।

यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धो लेपश्च तत्कृतः ।
तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु ॥१२६॥

किसी कपड़े आदिमें विष्ठादिक अपवित्र वस्तु लग जाय, तो जबतक उसका दाग और गन्ध दूर न हो, तबतक मिट्टी और पानीसे उसे शुद्ध करना चाहिये ।

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥१२७॥

देवताओंने ब्राह्मणके लिये इन तीन वस्तुओंको शुद्ध कहा है—जिसकी अपवित्रता आंखसे न देखी हो, जो जलसे धोयी हो, और जो ब्राह्मणकी वाणीसे प्रशस्त कही गयी हो ।

आपः शुद्धा भूमिगता वैतृष्ण्यं यासु गोर्भवेत् ।
अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः ॥१२८॥

धरतीपरका जल, यदि अपवित्र वस्तुओंसे मिला हुआ न हो, गन्ध, वर्ण और रससे युक्त हो और जो इतना हो कि गाय अपनी प्यास बुझा सके तो उसे शुद्ध समझना चाहिये ।

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम्।
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥१२९॥

मालीका हाथ, बाजारमें पसारकर रखे हुए पदार्थ और ब्रह्मचारियोंको प्राप्त भिक्षा, ये सदा शुद्ध हैं।

नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने।
प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥१३०॥

स्त्रियोंका मुख सदा शुद्ध होता है। पक्षियोंद्वारा चोंच मारकर गिराया हुआ फल, दूध दूहनेमें बछड़ेका मुंह और हिरन पकड़नेमें कुत्ता शुद्ध होता है।

श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत्।
क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥१३१॥

कुत्तोंके द्वारा मारे गये हिरन आदिका मांस और कच्चा मांस खानेवाले हिंस्र जन्तुओं तथा चाण्डाल व्याध आदिके द्वारा जो हिरन आदि पशु मारा जाता है, उसका मांस शुद्ध है, यह मनुजीने कहा है।

ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः।
यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः ॥१३२॥

नाभीके ऊपर शरीरके जितने छिद्र हैं वे सब शुद्ध हैं और उसके नीचेवाले सभी छिद्र अशुद्ध हैं। देहसे निकले हुए मैल भी अशुद्ध होते हैं।

मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः।
रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥१३३॥

मक्खी, मुंहसे निकले हुए छोटे जलकण, छाया, गौ, घोड़ा, सूर्यकी किरण, धूल, धरती, वायु और अग्नि, ये स्पर्शमें अशुद्ध नहीं होते।

विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् ।
दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि ॥१३४॥

मल-मूत्र त्याग करनेपर, ( उसी प्रकार ) देहसे उत्पन्न बारह मलोंकी शुद्धिके लिये प्रयोजनके अनुसार मिट्टी और जल लेना चाहिये ।

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविट् घ्राणकर्णविट् ।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥१३५॥

चर्बी, वीर्य, लहू, मज्जा, ( हड्डीके भीतर रहनेवाली ) पेशाब, विष्ठा, नाक कानके मल, कफ, आंसू, आंखोंका कीच और पसीना, ये मनुष्योंके बारह दैहिक मल हैं ।

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश ।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता ॥१३६॥

शुद्धि चाहनेवालेको चाहिये कि लिङ्गमें एक बार और मलद्वारमें तीन बार, बांयें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी लगाकर जलसे धोये ।

एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ।
त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥१३७॥

यह शौच गृहस्थोंका है, ब्रह्मचारियोंको इसका दुगुना, वानप्रस्थोंको तिगुना और संन्यासियोंको चौगुना शौच करना चाहिये ।

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् ।
वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा ॥१३८॥

मूत्र या मल उत्सर्ग करके शौचादिसे निवृत्त हो, जो वेद पढ़ना या भोजन करना चाहे, उसे चाहिये कि आचमन करके इन्द्रियोंके छिद्रों ( आंख, कान आदि ) को स्पर्श करे ।

त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ।
शारीरं शौचमिच्छन्हि स्त्री शूद्रस्तु सकृत्सकृत् ॥१३९॥

शरीर-शुद्धिकी इच्छा करता हुआ पुरुष पहले तीन बार आचमन करे और दो बार मुंह धोये, किन्तु स्त्री और शूद्र एक एक बार करे।

शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम् ।
वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥१४०॥

शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले शूद्रोंको महीने-महीने सिरके बाल बनवाने चाहियें, जनन-मरणमें वैश्यके समान शौच-क्रिया करनी चाहिये और द्विजका उच्छिष्ट खाना चाहिये।

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गं पतन्ति याः ।
न श्मश्रूणि गतान्यास्यं न दन्तान्तरधिष्ठितम् ॥१४१॥

मुखसे निकले जलकण देहपर पड़ें, तो उनसे शरीर जूठा नहीं होता। दाढ़ी-मूंछके बाल मुंहमें प्रविष्ट होनेपर वे जूठे नहीं होते और दांतोंके बीचमें अटका हुआ अन्न मुंहको जूठा नहीं करता।

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
भौमिकैस्ते समा ज्ञेया न तैराप्रयतो भवेत् ॥१४२॥

दूसरोंको आचमन करनेके लिये जल देते समय पैरोंपर जलके छींटे पड़ें, तो उन्हें भूमिष्ठ जलके समान जाने, उससे शरीर अशुद्ध नहीं होता।

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथंचन ।
अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात् ॥१४३॥

हाथमें कोई चीज लिये रहनेपर यदि जूठे मुंहवालेसे किसी तरह स्पर्श हो जाय, तो उस चीजको रखे बिना ही आचमन करनेसे शुद्धि होती है।

वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत् ।
आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥१४४॥

वमन और विरेचन ( जुलाब ) होनेपर स्नान करके घी पीये । भोजनके पीछे वमन होनेसे आचमनमात्र करे । स्नान घृतपान न करे । ऋतुमती स्त्रीके साथ रमण करनेपर स्नान करना चाहिये ।

सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतानि च ।
पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत्प्रयतोऽपि सन् ॥१४५॥

वेद पढ़नेकी इच्छा करनेवाला, सोने, छींकने, खाने, थूकने, झूठ बोलने और पानी पीनेके अनन्तर पवित्र हो, तो भी आचमन करे ।

एष शौचविधिः कृत्स्नो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च ।
उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान्निबोधत ॥१४६॥

यह सब वर्णोंके अशौचकी सारी व्यवस्था और द्रव्यशुद्धिकी विधि आप लोगोंसे कही । अब स्त्रियोंके धर्म सुनिये ।

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि ॥१४७॥

बालिका हो या युवती या वृद्धा, स्त्रीको स्वतन्त्रतापूर्वक घरका कोई काम नहीं करना चाहिये ।

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥१४८॥

स्त्री बाल्यकालमें पिताके अधीन, यौवनावस्थामें पतिके अधीन, और पतिका परलोक होनेपर पुत्रोंके अधीन होकर रहे । कभी स्वतन्त्र होकर न रहे ।

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः ।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्यं कुर्यादुभे कुले ॥१४९॥

पिता, पति या पुत्रसे पृथक् रहनेकी इच्छा न करे। क्योंकि इनसे विलग रहनेवाली स्त्री पतिकुल और पितृकुल दोनोंको निन्दित करती है।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥१५०॥

( पतिके असन्तुष्ट रहनेपर भी ) स्त्रीको सदा प्रसन्न रहकर दक्षताके साथ घरके कामोंको संभालना चाहिये। भूषण और पाकपात्र आदि नित्यव्यवहार्य्य सामग्रियोंको साफ रखना चाहिये और जहांतक हो सके, कम खर्च करना चाहिये।

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत् ॥१५१॥

पिता या पिताकी सम्मतिसे भ्राता जिस पुरुषका हाथ धरा दे, जीवित अवस्थामें उसकी शुद्ध हृदयसे सेवा करे और उसके मरनेपर धर्मका उल्लङ्घन न करे।

मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः।
प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥१५२॥

विवाहमें इन दोनों पति-पत्नियोंके लिये स्वस्त्ययन और प्रजापतिके उद्देशसे जो हवन किया जाता है, वह इनके कल्याणनिमित्तक कर्म है। परन्तु वाग्दानके अनन्तर स्त्रीपर स्वामीका अधिकार हो जाता है।

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः।
सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः ॥१५३॥

मन्त्र-संस्कारके द्वारा पाणिग्रहण करनेवाला पति ऋतुकालमें और अनृतुकालमें स्त्रीको यहां नित्य सुख देता है और परलोकमें भी सुख देनेवाला होता है।

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥१५४॥

पति अनाचारी हो या परस्त्रीमें अनुरक्त हो, या विद्यादि गुणोंसे रहित हो, तथापि साध्वी स्त्रीको सर्वदा देवताकी तरह अपने पतिकी सेवा करनी चाहिये।

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥१५५॥

स्त्रियोंके लिये न अलग यज्ञ है, न व्रत है और न उपवास है। पतिकी जो सेवा करती है, उसीसे वह स्वर्गलोकमें पूजित होती है।

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किंचिदप्रियम् ॥१५६॥

स्वर्गलोक पानेकी इच्छा करनेवाली सुशीला स्त्री, अपने जीते वा मरे पतिके कुछ भी अप्रिय कर्म न करे [ अर्थात् व्यभिचार आदि निन्दित आचरणसे पतिका परलोक न बिगाड़े ]।

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
नतु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥१५७॥

पतिके मरनेपर स्त्री पवित्र फल, फूल और मूल खाकर देहको क्षीण करे, परन्तु परपुरुषका कभी नाम न ले।

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१५८॥

विधवा स्त्री पतिव्रताके उत्तम धर्मोंको चाहती हुई मरते दमतक क्षमायुक्त और नियमपूर्वक ब्रह्मचारिणी होकर रहे।

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥१५९॥

हजारों अविवाहित ब्रह्मचारी ब्राह्मण वंशवृद्धिके लिये पुत्रका उत्पादन न करके भी स्वर्गलोकको गये हैं।

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥१६०॥

जो पतिव्रता स्त्री पतिके मरनेपर ब्रह्मचर्यमें स्थित रहती है, वह पुत्रहीना होनेपर भी ब्रह्मचारी पुरुषोंकी भाँति स्वर्गलोकको जाती है।

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥१६१॥

जो स्त्री सन्तानके लोभसे पतिका अतिक्रमण करती है ( अर्थात् परपुरुषके साथ व्यभिचार करती है, ) इस लोकमें उसकी निन्दा होती है और वह पतिलोकसे भी भ्रष्ट होती है—( उस पुत्रसे उसे स्वर्ग नहीं मिलता )।

नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥१६२॥

अन्य पुरुषसे उत्पन्न की गयी वह सन्तान शास्त्रसम्मत नहीं है। और दूसरेकी स्त्रीमें उत्पादित सन्तान भी उत्पादककी नहीं होती। पतिव्रता स्त्रियोंको दूसरे पतिका उपदेश कहीं नहीं किया गया है।

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ॥१६३॥

जो अपने हीन पतिको छोड़कर किसी अन्य श्रेष्ठ पुरुषको स्वीकार करती है वह समाजमें निन्दनीय होती है। लोग उसे व्यभिचारिणी कहकर निन्दा करते हैं।

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥१६४॥

परपुरुषके साथ व्यभिचार करनेसे स्त्री संसारमें निन्द्य समझी जाती है और मरनेपर गीदड़ होती है तथा कुष्ठादि रोगोंसे पीड़ित होती है।

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥१६५॥

जो मन, वचन और क्रियासे पतिके विरुद्ध आचरण नहीं करती, वह परलोकमें पतिको पाती है और इस लोकमें अच्छे लोग पतिव्रता कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं।

अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता।
इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥१६६॥

इस कथित नारीधर्मके अनुसार जो स्त्री तन,मन, वचनसे पतिकी सेवा करती है, वह इस लोकमें सुयश पाती है और मरनेपर पतिके साथ स्वर्गसुख भोगती है।

एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम्।
दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥१६७॥

शास्त्रोक्त विधिसे चलनेवाली सजातीया स्त्री यदि पहले मर जाय, तो धर्मज्ञ द्विज अग्निहोत्र और यज्ञपात्रोंके द्वारा उसकी दाहक्रिया करें।

भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीनन्त्यकर्मणि।
पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥१६८॥

पतिके पूर्व मरनेवाली स्त्रीको अन्तकर्ममें अग्नि दे चुकनेके पश्चात् पुनः गृहस्थाश्रमकी इच्छासे वह पुरुष पुनर्विवाह करे (श्रौत या स्मार्त अग्नि ले)।

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्न हापयेत्।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥१६९॥

इस विधिसे यथाशक्ति पञ्चयज्ञोंको नित्य नियमपूर्वक करे, कभी इसे छोड़े नहीं और जीवनके दूसरे भागमें विवाह कर गृहस्थाश्रममें रहे।

* पञ्चम अध्याय समाप्त *

## अध्याय ६

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥१॥

इस प्रकार स्नातक द्विज शास्त्रोक्त विधिसे गृहधर्मका पालन कर, पश्चात् जितेन्द्रिय हो, नियमपूर्वक धर्मका अनुष्ठान करता हुआ वनमें निवास करे।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥२॥

गृहस्थ जब देखे कि अपने शरीरपर झुर्रियां पड़ी हैं, केश श्वेत हो गये हैं और अपने पुत्रके भी पुत्र हो चुके हैं, तब वनका आश्रय करे।

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥३॥

ग्राम्य आहार (चावल, आटा आदि) और वस्त्रालंकारादिको त्यागकर स्त्रीको पुत्रके सुपुर्द कर अथवा अपने साथ ले, वनमें जाय।

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥४॥

घरकी होमाग्नि और उसके उपकरण ( स्रुच् स्रुव आदि ) लेकर गांवसे निकल संयतेन्द्रिय होकर वनमें निवास करे ।

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥५॥

वानप्रस्थ होनेपर वनमें नीवार ( मोगरका चावल आदि ) शुद्ध अन्नोंसे अथवा शाक, फल, मूलोंसे विधिपूर्वक इन पञ्चमहायज्ञोंको करे ।

वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा ।
जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥६॥

मृगचर्म या वल्कल पहने, भोर और सांझको स्नान करे । जटा, दाढ़ी, मूंछ और नख, इनका नित्य धारण करे ।

यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः ।
अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥७॥

इस आश्रममें जो विहित भोजन हो, उसीमेंसे यथाशक्ति बलि और भिक्षा दे । आश्रममें आये हुए अतिथिको जल, मूल, फलकी भिक्षासे पूजित करे ।

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥८॥

वेदाध्ययनमें नित्य लगा रहे, जाड़े गरमीको सहे, सबका यथा-साध्य उपकार करे, मनको अपने वशमें रखे, नित्य दान करे, पर आप प्रतिग्रह न ले और सब जीवोंपर दया रखे ।

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ।
दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥९॥

अमावस्या और पूर्णिमा, इन दोनों पर्वोंको न छोड़ता हुआ समयपर यथोक्त विधिसे वैतानिक अग्निहोत्र करे ।

ऋक्षेष्टयाग्रयणं चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत् ।
तुरायणं च क्रमशो दाक्षस्यायनमेव च ॥१०॥

नक्षत्रेष्टि, आग्रयण, चातुर्मास्य, तुरायण और दाक्षायण, इन वेदकर्मोंको क्रमशः करे ।

वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥११॥

वसन्त और शरदऋतुके पवित्र मुन्यन्न ( नीवार आदि ) जो स्वयं लाये गये हों, उनसे यथाविधि पुरोडाश और चरु अलग अलग बनावे ।

देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः ।
शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम् ॥१२॥

वह वन्य, अति पवित्र हवि देवताओंके निमित्त अग्निमें हवन कर शेष अपने लिये रख छोड़े और नमक भी अपने हाथका निकाला खाय ।

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ।
मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥१३॥

स्थल और जलमें उपजे साग और विशुद्ध वृक्षोंके फूल, मूल और फल खाय । फलोंसे निकले हुए तेल भी खा सकता है ।

वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवकानि च ।
भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥१४॥

मधु, मांस, गोबरछत्ता, भूस्तृण, शिग्रुक, श्लेष्मातक, ये सब न खाय ।

त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसंचितम् ।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥१५॥

पहलेका संचित किया मुन्यन्न ( नीवार आदि अन्न ) पुराने वस्त्र और साग, मूल, फल कुआँर महीनेमें न खाय ।

न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित् ।
न ग्रामजातान्यार्तोऽपि मूलानि च फलानि च ॥१६॥

खेतका उपजाया हुआ अनाज कोई दे भी जाय,तो वह न खाय। गांवमें जो फल मूल उत्पन्न हुए हों, उन्हें क्षुधार्त होनेपर भी न खाय।

अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा ।
अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥१७॥

आगपर सिद्ध किया हुआ वनका अन्न या समयानुसार पके हुए फल या पत्थरका कूटा हुआ अन्न खाय, अथवा दांत मुंहको ही ऊखल मूसल बना ले ।

सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि वा ।
षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥१८॥

भोजन करके बर्तन धोकर रख दिया इतना ही ( अर्थात् एक बार भोजनके योग्य ) अन्न संग्रह करे, अथवा एक महीने या छः महीने या ( अधिकसे अधिक ) एक वर्षके जीवननिर्वाह योग्य अन्न संचित करे।

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः ।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥१९॥

यथाशक्ति दिनमें अन्न प्रस्तुत कर प्रदोषकालमें भोजन करे,किंवा एक दिन उपवास कर दूसरे दिन नियमित समयपर एक बार भोजन करे, अथवा दो दिन उपवास कर तीसरे दिन एक बार भोजन करे।

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णे च वर्तयेत् ।
पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं क्वथितां सकृत् ॥२०॥

चान्द्रायणव्रतके विधानसे शुक्ल कृष्णपक्षमें क्रमशः भोजनकी

मात्राको बढ़ावे घटावे या पक्षके अन्तमें ( अमावस्या और पूर्णिमा ) एक बार औंटा हुआ यवागू* पीये ।

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा ।
कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥२१॥

अथवा वानप्रस्थके धर्ममें स्थित रहकर शुद्ध फल, फूल, मूल जो समयपर पककर आप ही गिरें, उन्हींसे जीवन-निर्वाह करे ।

भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥२२॥

भूमिपर लोट-पोट करता पड़ा रहे या दिन भर दोनों पैरोंके अग्रभागपर खड़ा रहे । अथवा अपने स्थान और आसनपर कुछ काल खड़ा रहे और कुछ काल बैठे तथा त्रिकाल-स्नान करे ।

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः ॥२३॥

ग्रीष्ममें पञ्चाग्निसे अपनेको तपावे, वर्षामें जहां वर्षा होती हो वहां मैदानमें रहे और हेमन्तमें भीगे कपड़े पहनकर क्रमसे तपको बढ़ावे ।

उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितॄन्देवांश्च तर्पयेत् ।
तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥२४॥

प्रातर्मध्याह्न और सायंकालमें स्नान करके देव, ऋषि और पित-रोंका तर्पण करे और तीव्र तपश्चर्या करके अपने शरीरको सुखावे ।

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि ।
अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥२५॥

वैतान अग्निको विधिपूर्वक अपनेमें समारोपित कर ( अर्थात्

---

* षड्गुणजलपक्वघनद्रवद्रव्यविशेषः ।

लौकिक अग्नि और गृहको त्यागकर ) मौनव्रत धारण करे और कन्द-मूल खाकर निर्वाह करे।

अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥२६॥

शारीरिक सुखभोगके लिये यत्न न करे, ब्रह्मचारी हो ( अर्थात् आठों * प्रकारके मैथुनोंको त्याग दे ) धरतीपर सोवे, निवासस्थानमें ममतारहित होकर पेड़के नीचे रहे।

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत्।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥२७॥

( फल मूल न मिलनेपर ) तपस्वी ब्राह्मणोंसे ही प्राणमात्रके रक्षार्थ भिक्षा ग्रहण करे, इसके अभावमें अन्य वनवासी गृहस्थ ब्राह्मणोंसे भिक्षा ले।

ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन्।
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥२८॥

अथवा ( इसके अभावमें ) गांवसे भिक्षा लावे और वनमें बैठकर उसमेंसे आठ कौर पत्तोंसे, खपड़ेसे या हाथसे उठाकर खाय।

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥२९॥

वानप्रस्थ ब्राह्मण इन पूर्वोक्त और अन्य नियमोंका पालन करे और वेदके विविध उपनिषद् भागोंको आत्मज्ञानके निमित्त मनोयोगपूर्वक पढ़े।

ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः।
विद्यातपोविवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये ॥३०॥

---

* स्मरणं, कीर्तनं, केलिः, प्रेक्षणं, गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।

कारण ऋषि ब्रह्मदर्शी संन्यासी और गृहस्थोंने शरीरशुद्धि और विद्या तपकी अभिवृद्धिके लिये ( इन उपनिषद् वाक्योंका ) अभ्यास किया है ( इसलिये वानप्रस्थोंको भी इनका अभ्यास करना चाहिये ।)

अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ।
आ निपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः ॥३१॥

( कोई ऐसा रोग हो जाय जिसकी चिकित्सा ही नहीं होती या ऐसा ही कोई अन्य कारण होनेपर ) ईशान दिशाकी ओर मुंह करके सरल गतिसे योगनिष्ठ होकर जल वायु भक्षण करता हुआ शरीर छूट जानेतक बराबर गमन करता रहे ।

आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम् ।
वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥३२॥

महर्षिचर्यके इन अनुष्ठानोंमेंसे किसी अनुष्ठानको करता हुआ जो ब्राह्मण शोकभयसे रहित होकर शरीर त्याग करता है, वह ब्रह्मलोकमें पूजित होता है ।

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥३३॥

आयुके तृतीय भागको वानप्रस्थ-अवस्थामें बिताकर आयुके चौथे भागमें सर्व-संग परित्याग कर संन्यास ग्रहण करे ।

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ।
भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥३४॥

एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जाकर जितेन्द्रिय हो भिक्षा बलि-वैश्वदेव और अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म करते-करते थक जानेपर जो अन्तमें संन्यास ग्रहण करके देह त्याग करता है, वह परलोकमें महान् कल्याण लाभ करता है ।

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥३५॥

तीनों ऋण [ अर्थात् देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण ] शोधकर मनको मोक्षमें लगावे। ऋण-शोधन किये बिना जो मोक्षार्थी होता है वह नरकगामी होता है।

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥३६॥

विधिपूर्वक वेद पढ़कर धर्मसे पुत्रोंका उत्पादन और यथाशक्ति यज्ञोंका अनुष्ठान करके तब चतुर्थ आश्रममें मनको लगावे।

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥३७॥

जो द्विज वेद न पढ़कर तथा पुत्रोंकी उत्पत्ति और यज्ञोंका अनुष्ठान न कर ( अभिप्राय यह कि ऋषिऋण, पितृऋण और देवऋणसे उत्तीर्ण हुए बिना ) संन्यासधारणकी इच्छा करता है वह नीच गतिको प्राप्त होता है।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥३८॥

प्राजापत्य यज्ञ ( जिसमें सर्वस्व दक्षिणा दी जाती है उसे ) शास्त्रोक्त विधिसे पूरा करके अपनेमें अग्निको समारोपित कर ब्राह्मण संन्यास ग्रहण करनेके लिये घरसे निकले [ यात्रा करे ]।

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥३९॥

जो सब प्राणियोंको अभय देकर घरसे प्रव्रजित होता है उस ब्रह्मवादीको तेजोमयलोक प्राप्त होते हैं।

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम् ।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥४०॥

जिस द्विजसे किसी जीवको अणुमात्र भी भय उत्पन्न नहीं होता, उस देहसे मुक्त पुरुषको किसीका भी भय नहीं रहता ।

आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥४१॥

घरसे बहिर्गत पुरुष पवित्र दण्ड कमण्डलु आदि साथमें ले, किसीसे वृथा भाषण न करे और समीपमें रखे हुए सुस्वादु भोज्य पदार्थोंकी भी कोई इच्छा न करके भ्रमण करे ।

एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् ।
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥४२॥

एकाकी पुरुषको मुक्ति मिलती है, यह जानकर संन्यासी किसीको साथ न लेकर अकेला ही मोक्षकी सिद्धिके लिये रहे । [ इस प्रकार जो रहता है ] वह न किसीको छोड़ता है और न किसीसे छोड़ा जाता है, [ अर्थात् न उसे किसीको छोड़नेका दुःख होता है और न किसीसे छोड़े जानेका ही ] ।

अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ।
उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥४३॥

गृहाग्निसे रहित और गृहरहित होकर रहे । रोगादिकी परवा न करे । स्थिरबुद्धि और मौन हो विशुद्ध भावसे ब्रह्मका मनन करे और भोजनके लिये गांवमें जाय ।

कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥४४॥

खप्पर [ भोजनके लिये ] वृक्षकी जड़ [ रहनेके लिये ] मोटा

पुराना कपड़ा [ पहननेके लिये ] सहायकका न रहना, और सर्वत्र समभाव रखना, यह मुक्त पुरुषका लक्षण है।

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥४५॥

मरनेकी इच्छा न करे, न जीनेकी ही इच्छा करे। [ प्रत्युत ] जिस प्रकार सेवक अपने प्रभुकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार संन्यासी कालकी प्रतीक्षा करे।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥४६॥

आंखसे अच्छी तरह देखकर धरतीपर पैर रखे, वस्त्रसे छानकर जल पीये,सत्यसे शोधकर कोई बात कहे,और पवित्र मनसे कार्य करे।

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥४७॥

अतिवाद कोई करे तो उसे सह ले, पर किसीका अपमान न करे। इस देहका आश्रय कर किसीके साथ शत्रुता न करे।

क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुद्ध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥४८॥

कोई क्रोध करे तो उसका जवाब क्रोधसे न दे, कोई निन्दा करे तो [ उसके जवाबमें निन्दा न करे ] भद्र वचन ही कहे। (पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन बुद्धि), इन सात द्वारोंसे ग्रहण किये जानेवाले विषयोंकी चर्चा न करे। (केवल ब्रह्मविषयक सत्य वचन बोले।)

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥४९॥

सदा आत्माके ही चिन्तनमें लगा रहे। स्वस्तिकादि योगासन लगाकर बैठे। किसी वस्तुमें ममता न रखे। विषयोंकी इच्छासे

रहित हो। एक देहमात्रकी सहायतासे मोक्षसुखका अभिलाषी होकर संसारमें विचरे।

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥५०॥

( धूमकेतु आदि ) उत्पात, (नेत्र-स्फुरण आदि) निमित्त, तिथि-नक्षत्रके योग अयोग आदि फलाफल कहकर अथवा नीतिका उपदेश या शास्त्रकी बात सुनाकर भिक्षा लेनेकी कभी इच्छा न करे।

न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः।
आकीर्णं भिक्षुकैर्वान्यैरगारमुपसंव्रजेत् ॥५१॥

वानप्रस्थ ब्राह्मणोंसे, चिड़ियोंसे, कुत्तोंसे या अन्य भिक्षुकोंसे जिसका घर भरा हो, उसके घर भिक्षाके लिये न जाय।

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥५२॥

सिरके केश, दाढ़ी, मूंछ और नखोंको कटाना चाहिये। भिक्षा-पात्र और दण्ड कमण्डलु साथ रखने चाहियें। और किसी प्राणीको बिना दुःख दिये नित्य नियमपूर्वक भ्रमण करना चाहिये।

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च।
तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥५३॥

संन्यासियोंके भिक्षापात्र धातुके न होने चाहिये और न उनमें छिद्र ही हों। उन पात्रोंकी शुद्धि यज्ञके चमसों ( हवनके उपकरणों) की भाँति जलसे ही कही गयी है।

अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा।
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥५४॥

संन्यासीका भिक्षापात्र कद्दूके फलका, काठका, मिट्टीका या बांसके खण्डका बना होना चाहिये,यह स्वायम्भुव मनुने कहा है।

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥५५॥

( प्राणधारणके लिये दिनरातमें ) केवल एक बार भिक्षा मांगनी चाहिये। भिक्षाका बहुत विस्तार न करे। बहुत भिक्षा खानेमें आसक्त संन्यासी विषयोंमें भी आसक्त हो सकता है।

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥५६॥

जब रसोईका धुवां दिखायी न दे, मूसलका शब्द सुनायी न दे, रसोईकी आग बुझ गयी हो, घरके सब लोग खा पी चुके हों, जूठे वर्तन अलग कर दिये गये हों, तब संन्यासी भिक्षाके लिये नित्य गृहस्थोंके घर जाय।

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत्।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥५७॥

भिक्षा न मिलनेपर विषाद न करे और मिलनेपर हर्ष भी न करे। प्राणधारणमात्र भिक्षान्नसे जीवननिर्वाह करे। दण्ड कमण्डलुमें भी आसक्ति न रखे। ( अर्थात् उसके अच्छे बुरे होनेकी भावना मनमें न करे। )

अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः।
अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बद्ध्यते ॥५८॥

पूजित होकर भिक्षा स्वीकार करनेको सब कालमें बुरा समझे। क्योंकि पूजित होनेपर भिक्षा ग्रहण करनेवाला संन्यासी मुक्त होकर भी बद्ध हो जाता है।

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥५९॥

अल्प भोजन और एकान्त निवास इन दो उपायोंसे, विषयों द्वारा खींची जानेवाली इन्द्रियोंको वशमें करे ।

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥६०॥

इन्द्रियोंके निग्रह और रागद्वेषके त्याग तथा प्राणियोंकी अहिंसासे संन्यासी मोक्ष पानेका अधिकारी होता है ।

अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ।
निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥६१॥

मनुष्योंके कर्मदोषसे उत्पन्न गति, नरकमें गिरने और यमलोककी त्रिविध यातनाएं—इनका विचार करना चाहिये ।

विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तथाऽप्रियैः ।
जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥६२॥

प्रियोंका वियोग, अप्रियोंका संयोग, बुढ़ापेमें [होनेवाला क्षय और रोगोंके कष्ट, ( कर्मदोषके ) इन परिणामोंको सोचे ।

देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम् ।
योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥६३॥

जीवात्माका इस शरीरसे निकलना, फिर गर्भमें प्रवेश करना और अनन्त कोटि योनियोंमें भ्रमण करना यह सब अपने ही कर्मदोषका फल है ।

अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥६४॥

शरीरधारियोंके सब दुःख अधर्मसे उत्पन्न होते हैं और अक्षय सुखका संयोग धर्मसे होता है ।

सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ।
देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥६५॥

योगके द्वारा परमात्माकी सूक्ष्मताका अनुभव करे और कर्म-दोषसे उत्तम अधम देहोंमें जन्म होनेकी बात सोचे।

दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥६६॥

कोई किसी आश्रममें रहता हुआ किसी दोषसे दूषित हो जाय तो ऐसा पुरुष भो सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखकर धर्मानुष्ठान करे। किसी आश्रमके चिह्न ही उस आश्रमधर्मके कारण नहीं हैं।

फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥६७॥

निर्मलीका फल जलको स्वच्छ करनेवाला होता है। पर केवल उसका नाम लेनेसे ही जल स्वच्छ नहीं होता।

संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा।
शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥६८॥

देहकी पीड़ित अवस्थामें भी जीवोंके प्राणरक्षार्थ, दिन हो या रात, सदा पृथ्वीको ओर देखकर पैर रखे।

अह्ना रात्र्या च याञ्जन्तून्हिनस्त्यज्ञानतो यतिः।
तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान्षडाचरेत् ॥६९॥

संन्यासी बिना जाने दिन या रातमें छोटे जीवोंकी ( पैरोंके नीचे दबाकर ) जो हिंसा करता है, उस पापसे विशुद्ध होनेके लिये वह स्नान करके छः प्राणायाम* करे।

प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥७०॥

---

* सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ इति वशिष्ठः ॥

व्याहृति और प्रणव सहित यथाविधि तीन प्राणायाम कोई भी ब्राह्मण करे तो यह उसके लिये परम तप जानना चाहिये ।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥७१॥

आगमें तपाये जानेपर धातुओंका मैल जैसे जल जाता है, वैसे ही प्राणवायुके निग्रह ( प्राणायाम ) से इन्द्रियोंके दोष दग्ध होते हैं ।

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥७२॥

प्राणायामसे रागादि दोषोंको, धारणा*से पापको, प्रत्याहार†से संसर्गको और ध्यानसे अनीश्वर गुणों ( क्रोध, लोभ, असूया आदि ) को निवृत्त करे ।

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन संपश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः ॥७३॥

इस जीवात्माका उच्च नीच योनिमें जानेका कारण जानना जो अज्ञानियोंके लिये बहुत ही कठिन है उसे ध्यानयोगसे देखे । (अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ होकर देखे ) ।

सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबद्ध्यते ।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥७४॥

जिसने ब्रह्मका सम्यक् साक्षात्कार किया है, वह कर्मोंसे बद्ध नहीं होता (क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे); किन्तु ब्रह्म-दर्शनसे विहीन पुरुष संसारी होकर जन्म-मरणके फेरमें पड़ता है ।

अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः ।
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम् ॥७५॥

---

* परब्रह्ममें मनको स्थिर करनेका नाम धारणा है ।

† विषयोंसे इन्द्रियोंके खींचनेको प्रत्याहार कहते हैं ।

अहिंसा, इन्द्रियसंयम, वैदिक कर्मोंके अनुष्ठान और कठिन तपश्चर्यासे साधक ब्रह्मपदको प्राप्त करते हैं।

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥७६॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्।
रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥७७॥

जिस शरीररूपी गृहका खंभा हड्डी है, जो स्नायुरूपी रस्सीसे बंधा है, जिसपर मांस और रुधिरका लेप चढ़ा है, जो चमड़ेसे ढका है, मलमूत्रसे भरा है, दुर्गन्धयुक्त है, जरा और शोकसे जो आक्रान्त है, रोगोंका घर है, भूख-प्याससे जो व्याकुल है, भोगाभिलाषी और क्षणभंगुर है, ऐसे इस प्राणियोंके रहनेके घरको त्याग ही देना चाहिये ( अर्थात् जिसमें इस आत्माको पुनर्देहसम्बन्ध न हो ऐसा यत्न करना चाहिये )।

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा।
तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥७८॥

वृक्ष जैसे नदीके किनारेको और पक्षी जैसे वृक्षको तज देता है वैसे संन्यासी इस देहको त्यागकर सांसारिक दुःखरूपी ग्राहसे मुक्त होता है।

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम्।
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥७९॥

ब्रह्मज्ञानी अपने हितकारियोंमें अपना पुण्य और अहितकारी शत्रुओंमें अपना पाप छोड़कर ध्यानयोगसे सनातन ब्रह्ममें लीन होता है।

यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥८०॥

पारमार्थिक विचारसे विषयोंको दोषपूर्ण देखकर जब उनसे

विरत होता है तब वह इस लोकमें सन्तोष-सुख और परलोकमें अविनाशी मोक्षसुख पाता है।

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गाञ्छनैः शनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥८१॥

( पुत्र कलत्र आदिकी ) सारी आसक्तियोंको धीरे-धीरे त्यागकर और (मानापमानादिक) सब द्वन्द्वोंसे विमुक्त होकर वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है।

ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम्।
न ह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ॥८२॥

( पुत्रादिमें ममताका त्याग, मानापमानादि द्वन्द्व-भावकी विमुक्ति और ब्रह्मनिष्ठता ) यह सब जो पहले कहा गया है वह आत्मध्यानसे ही होता है, ( अर्थात् जब वह ध्यानद्वारा परमात्मामें मगन होता है तब उसे किसीमें ममता या मानापमानका दुःख नहीं होता )। जो इस आध्यात्मिक विषयको नहीं जानता वह ब्रह्मध्यानात्मक क्रियाका फल नहीं पाता।

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च।
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥८३॥

यज्ञ और देवतासम्बन्धी वेदमन्त्रों और वेदान्तमें कहे आध्यात्मिक विषयोंको सदा जपे।

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम्।
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥८४॥

यह वेदसंज्ञक ब्रह्म वेदार्थको न जाननेवाले अज्ञोंकी भी गति है ( क्योंकि इसके पाठमात्रसे भी पापक्षय होता है )। स्वर्ग और मुक्ति चाहनेवाले विद्वानोंकी भी शरण यह वेद ही है।

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥८५॥

इस पूर्वकथित क्रमयोगसे जो द्विज संन्यास-आश्रमका आश्रित होता है वह इस संसारमें सब पापोंसे छूटकर परब्रह्ममें मिल जाता है

एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम्।
वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ॥८६॥

यह धर्म संयतात्मा संन्यासियोंका आप लोगोंसे कहा, अब वेद-संन्यासियोंका कर्मयोग कहता हूं, सुनिये।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥८७॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यासी, ये चारों आश्रम पृथक् होनेपर भी गृहस्थाश्रमसे ही उत्पन्न होते हैं।

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥८८॥

ये चारों आश्रम क्रमशः शास्त्रोक्त विधिसे अनुष्ठित होनेपर अनुष्ठान करनेवाले ब्राह्मणको परम पदको पहुंचाते हैं।

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि ॥८९॥

इन सब आश्रमोंमें वेद और स्मृतिकी बताई विधिके अनुसार चलनेवाला गृहस्थ श्रेष्ठ कहा गया है, क्योंकि वह ( भिक्षादानसे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी ) इन तीनों आश्रमोंकी रक्षा करता है।

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥९०॥

जैसे सब नदी-नद समुद्रमें ही आश्रय पाते हैं वैसे सभी आश्रमी गृहस्थाश्रमसे ही सहारा पाते हैं।

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥९१॥

इन ब्रह्मचारी आदि चारों आश्रमी द्विजोंको सदा यत्नपूर्वक (आगे कहे ) दश-विध धर्मोंका सेवन करना चाहिये।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥९२॥

सन्तोष, क्षमा, मनको दबाना, अन्यायसे किसीकी वस्तु न लेना, शारीरिक पवित्रता, इन्द्रियोंका निग्रह ( विषयोंसे उन्हें रोकना ), बुद्धि ( शास्त्रादि तत्वका ज्ञान ) विद्या ( आत्मबोध ) सत्य ( यथार्थ कथन), क्रोध न करना, ये दस धर्मके लक्षण हैं।

दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥९३॥

जो ब्राह्मण दश-विध धर्मोंको समझनेका यत्न करते हैं और समझकर उनका अनुष्ठान करते हैं वे परमगतिको प्राप्त होते हैं।

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः।
वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥९४॥

तचित्त होकर दश-विध धर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ, विधिपूर्वक वेदान्त सुनकर ऋणमुक्त द्विज संन्यास ग्रहण करे।

संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन्।
नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् ॥९५॥

गृहस्थोचित सब कर्मोंको छोड़, प्राणायाम आदि द्वारा कर्मदोषोंको नाश करता हुआ नियतचित्तसे उपनिषदोंका अभ्यास कर अपने

भोजनाच्छादनका भार पुत्रपर अर्पित कर आप निश्चिन्त हो सुखसे घरपर रहे, ( यह वेद-संन्यास है )।

एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः।
संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥९६॥

इस प्रकार कर्मोंको त्यागकर, विषयवासनासे रहित हो, आत्मज्ञानके साधनमें लगा हुआ पुरुष संन्यासके द्वारा पापोंको नाश करके परमगति ( मोक्ष ) पाता है।

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः।
पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्मं निबोधत ॥९७॥

ब्राह्मणके ये चार प्रकारके आश्रम-धर्म आप लोगोंसे कहे। ये परलोकमें अक्षय फल देनेवाले पुण्य हैं। अब राजधर्म सुनिये।

* षष्ठ अध्याय समाप्त *

## अध्याय ७



राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥१॥

राजाके जो-जो धर्म हैं, राज्याभिषिक्त राजाका जो आचार है, राज्यकी जैसे उत्पत्ति होती है और जिस प्रकारसे उसे परम सिद्धि होती है वह सब अब कहता हूँ।

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥२॥

यज्ञोपवीत संस्कार पाये हुए क्षत्रिय राजाको न्यायपूर्वक सब प्रजाओंकी रक्षा करनी चाहिये।

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ।

रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥३॥

इस संसारमें राजाके न रहनेसे सर्वत्र हाहाकार मचने लगा । इसलिये इस जगत्‌के रक्षार्थ ईश्वरने राजाको निर्माण किया ।

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।

चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥४॥

इन्द्र, वायु, यम, सूर्य,अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुवेर, इन आठों देवताओंका सारभूत अंश लेकर राजाको उत्पन्न किया है ।

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ।

तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥५॥

और इन इन्द्रादिक देवताओंके अंशोंसे राजा उत्पन्न होता है इससे वह अपने तेजसे सब प्राणियोंको अपने वशमें रखता है ।

तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च ।

न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥६॥

वह सूर्यकी भांति नेत्र और मनको तपाता है, इसलिये संसारमें कोई भी उसके सामने आंख उठाकर नहीं देख सकता ।

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् ।

स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥७॥

वह राजा अपने प्रभावसे अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र, इनमें जब जिसका चाहता है, स्वरूप धारण करता है ।

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।

महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥८॥

राजा बालक भी हो तो भी उसे साधारण मनुष्य समझ अपमान न करे, क्योंकि वह कोई विशेष देवता नररूपसे विद्यमान है ।

एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम् ।
कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसंचयम् ॥९॥

आगमें जो गिरता है, आग उसी एकको जलाती है, किन्तु राजाकी क्रोधाग्नि अपराधीको चिरसंचित धनसम्पत्ति पशु परिवार-सहित जलाकर खाक कर डालती है ।

कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः ।
कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥१०॥

राजा अपनी शक्ति, देश, काल और कार्यकी भलीभांति बार बार आलोचना करके धर्मसिद्धिके निमित्त अनेक रूप धारण करता है ।

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे ।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः ॥११॥

जिसकी प्रसन्नतामें लक्ष्मी, पराक्रममें विजय और क्रोधमें काल रहता है, ऐसा वह राजा सर्वतेजोमय है ।

तं यस्तु द्वेष्टि संमोहात्स विनश्यत्यसंशयम् ।
तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः ॥१२॥

जो अज्ञानसे राजाके साथ शत्रुता करता है, वह निःसंदेह नाशको प्राप्त होता है । उसके विनाशार्थ राजा शीघ्र अपने मनको नियुक्त करता है ।

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु स व्यवस्येन्नराधिपः ।
अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु तं धर्मं न विचालयेत् ॥१३॥

अतएव वह राजा भले लोगोंके लिये जो इष्ट धर्म और बुरे लोगोंके लिये जो अनिष्ट धर्म निर्दिष्ट करे, उसका अनादर न करना चाहिये ।

तस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ॥१४॥

उस राजाकी प्रयोजनसिद्धिके लिये ईश्वरने सब प्राणियोंका रक्षक, ब्रह्मतेजोमय, धर्म, पुत्ररूप दण्डको पहले निर्माण किया ।

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च ॥१५॥

जिस दण्डके भयसे चर अचर सभी प्राणी सुख भोगनेमें समर्थ होते हैं और अपने धर्मसे विचलित नहीं होते ।

तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः ।
यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥ १६॥

देश, काल और दण्डकी शक्ति तथा किस अपराधमें क्या दण्ड देना चाहिये इत्यादि शास्त्रीय ज्ञान—इनका तत्त्वतः विचार करके अपराधियोंके लिये यथायोग्य दण्डका विधान करे ।

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥१७॥

वही दण्ड वास्तवमें राजा है, पुरुष है, वही नेता और शासक है और वही चारों आश्रमोंके धर्मका प्रतिभू (जामिन ) कहा गया है ।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥१८॥

दण्ड सब प्रजाओंका शासन करता है, दण्ड ही सबकी रक्षा करता है, दण्ड ही रक्षकोंके निद्रित होनेपर जगा रहता है । इसलिये ज्ञानी पुरुष दण्डको ही धर्म कहते हैं ।

समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वा रञ्जयति प्रजाः ।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥१९॥

विचारपूर्वक दिया हुआ वह दण्ड सब प्रजाओंको प्रसन्न करता है । पर बिना विचार किये दण्डका विधान करनेसे वह सब प्रकारसे नाश करता है ।

यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं दण्ड्येष्वतन्द्रितः।
शूले मत्स्यानिवापक्ष्यन्दुर्बलान्बलवत्तरा ॥२०॥

यदि राजा आलस्य छोड़कर दण्ड देनेयोग्य अपराधीको दण्ड न दे तो बलवान दुर्बलोंको लोहेके कांटेमें पकड़ी हुई मछलियोंकी तरह भूनकर खा जायं।

अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वा च लिह्याद्धविस्तथा।
स्वाम्यं च न स्यात्कस्मिंश्चित्प्रवर्तेताधरोत्तरम् ॥२१॥

( यदि राजा दण्ड न दे तो ) कौआ भी यज्ञका पुरोडाश उड़ा जाय और कुत्ता पायसादि हवि चट कर जाय। कहीं किसीका कोई अधिकार ही न रहे। नीच ही बड़े बन जायं।

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः।
दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगाय कल्पते ॥२२॥

सारा संसार दण्डके अधीन है। शुद्ध साधु मनुष्य बिरला ही होता है। दण्डके भयसे संसारके प्राणी अपना-अपना आवश्यक भोग भोगनेमें समर्थ होते हैं।

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतगोरगाः।
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः ॥२३॥

देवता, दानव, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी और नागगण, ये सब भी दण्डभयसे ही पीड़ित होकर नियमका पालन करते हैं।

दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥२४॥

दण्डका उचित उपयोग न हो तो सभी वर्ण दूषित हो जायं, धर्मके सभी बांध टूट जांय और सब लोगोंमें विद्रोह फैल जाय।

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥२५॥

जहां पापनाशक श्यामवर्ण ( भयानक ) और रक्तनेत्र ( तेजस्वी ) दंड चलता है वही दंडविधान करनेवाला यदि न्यायसे अपना कार्य करे तो प्रजा कभी व्याकुल नहीं होती ।

तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥२६॥

उस दंडका प्रवर्तन करनेवाले, सत्यवादी, सच्ची समीक्षा करनेवाले, बुद्धिमान राजाको मन्वादिक महर्षियोंने धर्म, अर्थ और कामका ज्ञाता कहा है ।

तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते ।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥२७॥

उचित रीतिसे दण्डविधान करता हुआ राजा धर्म, अर्थ, काम, इन तीनोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है । जो राजा विषयासक्त, क्रोधी, खोटे विचारका होता है वह उसी दण्डसे मारा जाता है ।

दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः ।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥२८॥

दण्ड महान् तेज है । शास्त्रज्ञान न रखनेवालोंके लिये उसे धारण करना बड़ा कठिन है । वह धर्मभ्रष्ट राजाको सबान्धव नष्ट कर देता है ।

ततो दुर्गं च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ।
अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन्देवांश्च पीडयेत् ॥२९॥

वह दण्ड फिर दुर्ग, देश, स्थावर जंगम जीव तथा अन्तरिक्षस्थित ऋषि और देवताओंका भी कष्ट देता है ।

सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥३०॥

जो राजा मन्त्री, सेनापति आदि सहायोंसे रहित है, मूर्ख है,

लोभी है, शास्त्रज्ञानविहीन है और विषयासक्त है वह इस दण्डको न्यायपूर्वक नहीं चला सकता।

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥३१॥

जो राजा हृदयका पवित्र, सत्यनिष्ठ, शास्त्रके अनुसार चलनेवाला, बुद्धिमान और अच्छे सहायवाला हो वह इस दण्ड-धर्मको चला सकता है।

स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्भृशदण्डश्च शत्रुषु।
सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥३२॥

राजाको उचित है कि अपने राज्यमें न्यायपूर्वक शासन करे, शत्रुओंको कठोर दण्ड दे, स्नेहसंपन्न मित्रोंके साथ निश्छल व्यवहार रखे और ब्राह्मणोंके साथ क्षमा-भाव रखे।

एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः।
विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥३३॥

इस प्रकार आचरण करनेवाले राजाको यदि शिलोञ्छवृत्तिसे भी जीवन-निर्वाह करना पड़े तो भी उसका यश संसारमें उसी तरह फैलता है, जैसे पानीमें तेलकी बून्द फैलती है।

अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः।
संक्षिप्यते यशो लोके घृतबिन्दुरिवाम्भसि ॥३४॥

इसके विपरीत व्यवहार करनेवाले अजितेन्द्रिय राजाका यश घृतबिन्दुकी भांति संसारमें संकुचित होता है।

स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः।
वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता ॥३५॥

अपने अपने धर्ममें स्थित रहनेवाले सभी वर्णों और आश्रमोंकी रक्षा करनेके लिये ब्रह्माने राजाकी सृष्टि की है।

तेन यद्यत्सभृत्येन कर्तव्यं रक्षता प्रजाः।
तत्तद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥३६॥

मन्त्री आदि नौकरोंका और प्रजाओंकी रक्षा करते हुए उस राजाका अमात्य आदि सेवकों सहित जो कर्त्तव्य है, वह सब मैं यथाक्रम आप लोगोंसे कहता हूं।

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः।
त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषां च शासने ॥३७॥

राजाको चाहिये कि प्रतिदिन सवेरे उठकर तीनों वेदोंका अर्थ जाननेवाले, नीतिशास्त्रज्ञ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सेवा करे और उनकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य करे।

वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन्।
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥३८॥

पवित्रात्मा, वेदज्ञ और वयस तप आदिमें वृद्ध ब्राह्मणोंकी नित्य सेवा करे। क्योंकि सेवा करनेवाला पुरुष राक्षसोंसे भी सदा पूजित होता है।

तेभ्योऽधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः।
विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् ॥३९॥

विनयशील राजा भी नित्य उन ब्राह्मणोंसे विनयकी शिक्षा ग्रहण करे, क्योंकि विनीतात्मा राजा नाशको नहीं प्राप्त होता।

बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः।
वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ॥४०॥

बहुतेरे राजा अविनयी होनेके कारण कोश-बल-वाहनसहित नष्ट होगये और कितने ही पुरुषोंने वनस्थ होकर भी विनयसे राज्य पा लिया।

वेनो विनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः।
सुदाः पैजवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च ॥४१॥

वेन, राजा नहुष, पिजवनका पुत्र सुदा, सुमुख और निमि, ये सब अविनयसे नष्ट हो गये।

पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव च।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥४२॥

पृथु और मनुने विनयसे राज्य, कुबेरने धनाधिपत्य और विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व पाया।

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः ॥४३॥

तीनों वेदोंके जाननेवालोंसे तीनों वेद, ( सनातन दण्डनीतिके जाननेवालोंसे ) सनातन दंडनीति, ( तार्किकोंसे ) तर्कविद्या, ( आत्मविज्ञोंसे ) आत्मविद्या, और ( व्यवहारज्ञ ) लोगोंसे व्यवहार समझ ले।

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥४४॥

इन्द्रियोंको वशमें रखनेके लिये दिन रात यत्न करता रहे। क्योंकि जो राजा जितेन्द्रिय है ( अर्थात् विषयासक्त नहीं है ) वही प्रजाओंको अपने वशमें रख सकता है।

दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥४५॥

दस व्यसन कामसे और आठ क्रोधसे उत्पन्न होते हैं जो अन्तमें बड़े ही दुखदायी होते हैं। इसलिये इनका यत्नसे परित्याग करे।

कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥४६॥

जो राजा कामसे उत्पन्न व्यसनोंमें आसक्त होता है, वह अर्थ धर्मसे रहित होता है। क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोंकी आसक्तिसे राजा अपने शरीरको ही खो बैठता है।

मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥४७॥

शिकार खेलना, जूआ, दिनमें सोना, दूसरोंके दोषका वर्णन, स्त्रियोंका सहवास, मद्यका मद, नाचना, गाना, बजाना और वृथा घूमना, ये कामसे उत्पन्न दस व्यसन हैं।

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥४८॥

किसीका अज्ञात दोष प्रकट करना, साहस अर्थात् बुरे कामोंमें हिम्मत दिखलाना, द्रोह, ईर्ष्या ( अर्थात् दूसरेके गुणको न सहना ) असूया ( अर्थात् दूसरेके गुणोंमें दोष देखना ) अर्थदोष ( अर्थात् अग्राह्य द्रव्य लेना और देय द्रव्य न देना ), कठोर भाषण और क्रूर ताड़न, ये आठ क्रोधसे उत्पन्न व्यसन हैं।

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥४९॥

पण्डितोंने इन दोनों काम-क्रोधोत्पन्न व्यसनोंका मूल लोभ बताया है। उस लोभको यत्नपूर्वक जीते। क्योंकि उसी लोभसे ये दोनों प्रकारके व्यसन उत्पन्न होते हैं।

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥५०॥

कामसे उत्पन्न होनेवाले व्यसनोंमें मद्यपान, जूआ, स्त्री-सेवन और आखेट, ये चार व्यसन यथाक्रम बड़े ही दुःखदायी होते हैं।

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥५१॥

दण्डप्रहार करना क्रूर वचन कहना और अर्थ अपहरण करना, ये तीन व्यसन क्रोधोत्पन्न व्यसनोंमें विशेष कष्टप्रद हैं।

सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥५२॥

इन मद्यपानादिक सर्वत्र आनुषंगिक सात व्यसनोंमें ( अर्थात् जो प्रायः सब राजकुलोंमें होते हैं ) बुद्धिमान राजा उत्तरोक्त व्यसनसे पूर्वोक्त व्यसनको कष्टतर जाने ( जैसे अर्थके अपहरणसे कठोरभाषण, कठोरभाषणसे दण्डप्रहार, दण्डप्रहारसे आखेट, आखेटसे स्त्री-सेवा, और स्त्री-सेवासे भी विशेष कष्टतर मद्यपान है )।

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥५३॥

मृत्यु और व्यसनमें व्यसनको ही विशेष कष्ट कहा है। क्योंकि व्यसनी बराबर नीचे ही नीचे ( नरकमें ) गिरता और अव्यसनी मरनेपर स्वर्गको जाता है।

मौलाञ्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान्कुलोद्भवान् ।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥५४॥

जो वंशपरम्परासे सेवा करते चले आ रहे हों, शास्त्रज्ञ हों, शूर हों, युद्धविद्यामें कुशल हों, जिनका कुल शुद्ध हो, ऐसे परखे हुए सात या आठ मन्त्रियोंको राजा नियुक्त करे।

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किं तु राज्यं महोदयम् ॥५५॥

जो कर्म सहजमें होनेवाला है, वह भी एकसे सम्पादित होना कठिन होता है। तब जिसका फल महान् है ऐसे राजकार्यको सहायकोंके बिना अकेले राजा कैसे सम्पादित कर सकता है ?

तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम् ।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥५६॥

राजा उन मन्त्रियोंके साथ नित्य सामान्य सन्धि, विग्रह, स्थान ( दण्ड, कोश, पुर, राष्ट्रविषयक ), समुदय ( अर्थात् धान्य और सुवर्ण आदिके उत्पत्ति-स्थान ) रक्षा और प्राप्त वस्तुओंको सत्पात्रोंमें अर्पण करनेका चिन्तन करे ।

तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ।
समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥५७॥

उन मन्त्रियोंमें सबका अभिप्राय अलग-अलग एकान्त स्थानमें जानकर फिर एक साथ सबका अभिप्राय जाने, तदनन्तर जिसमें अपनी भलाई देखे वह कार्य करे ।

सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता ।
मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥५८॥

मन्त्रियोंमें जो ब्राह्मण विशेष विद्वान् और ( धार्मिकत्व आदि गुणोंसे ) विशिष्ट हो, राजा उसके साथ ( आगे कहे * ) सन्धि विग्रह आदि छः गुणोंसे युक्त परा मंत्रणा करे ।

नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् ।
तेन सार्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥५९॥

राजा उस ब्राह्मण सचिवपर सदा विश्वास करके सब कामोंका भार उसपर अर्पित करे और उसके साथ निश्चय करके कार्यारम्भ करे ।

अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥६०॥

---

* इसी अध्यायका १६० वां श्लोक देखिये ।

अन्य भी पवित्र, सच्चे स्वाभाववाले, बुद्धिमान् व्यवस्थित, न्यायपूर्वक धनोपार्जन करनेवाले, सुपरीक्षित मन्त्रियोंको नियुक्त करे ।

निर्वर्तेतास्य यावद्भिरितिकर्तव्यता नृभिः ।
तावतोऽतन्द्रितान्दक्षान्प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥६१॥

राजाके आवश्यक कार्य जितने मनुष्योंके द्वारा सम्पन्न हो सकें, उतने आलस्यरहित, कार्यदक्ष, प्रवीण व्यक्तियोंको रखे ।

तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान्दक्षान्कुलोद्गतान् ।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥६२॥

उन मन्त्रियोंमें जो शूर, दक्ष, कुलीन और व्यवहारके सच्चे हों उन्हें सोने-चाँदीकी खान और अन्नादि संचय-स्थानमें नियुक्त करे और जो भीरुस्वभावके हों उन्हें राजभवनके किसी हलके कामपर नियुक्त करे ।

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥६३॥

जो सब शास्त्रोंमें कुशल, इङ्गित ( इशारा ), आकार ( मुख नेत्रके भाव ) और चेष्टासे मनका भाव समझनेवाला, पवित्र-चरित्र, चतुर और कुलीन हो, राजा उसे दूत बनावे ।

अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित् ।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥६४॥

लोगोंपर प्रेम करनेवाला, सच्चरित्र, चतुर, मेधावी, देशकालका जाननेवाला, स्वरूपवान्, निर्भीक और वक्ता ऐसा राजदूत राजासे प्रशंसा पानेयोग्य होता है ।

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥६५॥

सेनापतिकी अधीनतामें दण्ड ( अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना आदि ) होता है। विनयरूप क्रिया दण्डके अधीन होती है। कोश और राष्ट्र राजाके अधीन होते हैं तथा सन्धि और विग्रह दूतके अधीन होते हैं।

दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन मानवाः ॥६६॥

दूत ही बिगड़े हुओंको मिलाता है और मिले हुओंको फोड़ता है। वह ऐसा काम करता है जिससे ( शत्रु-पक्षका ) जन-बल छिन्न-भिन्न हो जाय।

स विद्यादस्य कृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः।
आकारमिङ्गितं चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥६७॥

कार्योंमें नियुक्त सेवकोंके इंगित और चेष्टासे उनके प्रति आकार इंगित और चेष्टा जाने, और सेवकोंके प्रति उस राजाका कैसा भाव है, यह भी ताड़ ले।

बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥६८॥

प्रतिपक्षी राजाके मनका अभिप्राय भलीभांति जानकर ऐसा यत्न करे जिसमें अपने ऊपर कोई संकट न आये।

जाङ्गलं सस्यसंपन्नमार्यप्रायमनाविलम्।
रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत् ॥६९॥

जो देश प्रचुर धान्यादिकसे सम्पन्न हो, जहाँ धार्मिक लोग बसते हों, रोग या किसी उपद्रवका जहाँ भय न हो, जो फल-फूल और लताओंसे रमणीय हो, जहाँ आसपासके रहनेवाले लोग विनीत हों, जहाँ सुलभ जीविका हो, ऐसे देशमें राजाको निवास करना चाहिये।

धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा ।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥७०॥

धनुदुर्ग ( मरुवेष्टित ) महीदुर्ग ( पाषाणखण्डवेष्टित ) जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग, नृदुर्ग, या गिरिदुर्गका आश्रय कर नगरका निर्माण करे ।

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ।
एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥७१॥

पूर्वोक्त छः प्रकारके किलोंमें अनेक गुणोंके कारण गिरिदुर्ग ही श्रेष्ठ है, इसलिये राजा यत्नपूर्वक पहाड़ी किलेके आश्रयमें ही रहनेका प्रबन्ध करे ।

त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्चराः ।
त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्गनरामराः ॥७२॥

इन दुर्गोंमेंसे प्रथम तीन दुर्गोंमें ( यथाक्रम ) मृग आदि, चूहे आदि, और मगर आदि जलचर आश्रय लेते हैं । तथा शेषोक्त तीन किलोंमें वृक्षदुर्गके आश्रित वानर, नृदुर्गके मनुष्य और पशुपक्षीगण तथा गिरिदुर्गके आश्रित देवता होते हैं ।

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः ।
तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥७३॥

जैसे किलेके आश्रित इन मृगादि जीवोंको इनके ( व्याध आदि ) शत्रु नहीं मार सकते, वैसे ही दुर्गके आश्रित राजाका भी शत्रु कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते ।

एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥७४॥

दुर्गस्थित एक धनुर्धारी बाहरवाले सौ योद्धाओंका सामना कर सकता है और किलेकी एक सौ सेना दस सहस्र सेनाके साथ युद्ध कर सकती है, इसलिये राजाको दुर्गरचना अवश्य करनी चाहिये ।

तत्स्यादायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥७५॥

वह किला अस्त्र-शस्त्र, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण, शिल्पी, यंत्र, तृण और जलसे परिपूर्ण रहना चाहिये ।

तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः ।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥७६॥

ऐसे दुर्गके बीचमें राजा सभी अङ्गोंसे सम्पन्न, खाई और प्राकारसे सुरक्षित, सब ऋतुओंके फल-फूलों और निर्मल जलसे भरे हुए कुओं और बावलियोंसे युक्त अपना राजभवन बनवावे ।

तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।
कुले महति संभूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥७७॥

उस राजभवनमें निवास करके राजा अपनी जातिके उच्चकुलकी कन्या जो शुभ लक्षणोंसे युक्त और सुन्दर रूप गुणोंसे विभूषित हो, उसके साथ ब्याह करे ।

पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजः ।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥७८॥

राजा पुरोहितको नियुक्त करे और ऋत्विजोंको कर्म करनेके लिये वरण करे । वे गृह्यसूत्रके अनुसार राजाके शान्तिकर्मादि करें ।

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः ।
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ॥७९॥

राजाको चाहिये कि धर्मके निमित्त बहुदक्षिणायुक्त विविध प्रकारके यज्ञ करे और ब्राह्मणोंको भोग्य पदार्थ और धन दे ।

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु ॥८०॥

राजा शास्त्रवाक्यपर ध्यान रख मन्त्रियोंके द्वारा प्रजाओंसे वार्षिक कर वसूल करावे, और उनके साथ पिताके समान व्यवहार करे।

अध्यक्षान्विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥८१॥

भिन्न भिन्न कामोंकी देखभाल करनेके लिये भिन्न-भिन्न कार्य-कुशल व्यक्तियोंको अध्यक्ष नियत करे। ये अध्यक्ष उन सब कामोंमें नियुक्त राजकर्मचारियोंके कामकी देखभाल करें।

आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ॥८२॥

राजा गुरुकुलसे लौटकर आये हुए ब्राह्मणोंकी ( धन-धान्यसे ) पूजा करे। राजाओंकी ब्राह्मणोंमें स्थापित यह निधि अक्षय कही गयी है।

न तं स्तेना न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति।
तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः ॥८३॥

इस निधिको न चोर चुरा सकते हैं, न शत्रु हरण कर सकते हैं, और न वह कभी नष्ट हो सकती है। इसलिये राजाको ब्राह्मणोंमें यह अक्षय निधि स्थापन करनी चाहिये।

न स्कन्दते न व्यथते न विनश्यति कर्हिचित्।
वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥८४॥

अग्निमें किये गये हवनकी अपेक्षा ब्राह्मणके मुंहमें किया गया यह होम श्रेष्ठ है। क्योंकि यह हवि न इधर-उधर गिरती है, न सूखती है और न कभी नष्ट होती है।

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे।
प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ॥८५॥

ब्राह्मणेतरको दिये हुए दानका जो फल होता है उससे द्विगुण अपनेको ब्राह्मण कहे, पर ब्राह्मणका कर्म न करे, ऐसे ब्राह्मणको दिये हुए दानका फल होता है। विद्वान ब्राह्मणको दिये हुए दानका लाख गुना और वेदपारग ब्राह्मणको दिये दानका फल अनन्त गुना होता है।

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्धानतयैव च।
अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्य फलमश्नुते ॥८६॥

पात्रकी विशेषता और श्रद्धाके तारतम्यसे दानका फल परलोकमें थोड़ा या बहुत मिलता है।

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन्प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात्क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥८७॥

सम बल, अधिक बल या हीन बलवाले राजासे युद्धार्थ बुलाये जानेपर प्रजाओंका पालन करता हुआ राजा क्षात्रधर्मका स्मरण कर युद्धसे मुंह न मोड़े।

संग्रामेष्वनिवर्तित्वं प्रजानां चैव पालनम्।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥८८॥

युद्धोंमें पीठ न दिखाना, प्रजाओंका पालन और ब्राह्मणोंकी परिचर्या करना, ये राजाओंके लिये परम कल्याणकारक हैं।

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥८९॥

युद्धमें एक दूसरेकी स्पर्धा करनेवाले, एक दूसरेको मारनेकी इच्छा करनेवाले और संपूर्ण शक्ति लगाकर लड़नेवाले राजा युद्धको पीठ न दिखाकर सीधे स्वर्गको जाते हैं।

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून्।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥९०॥

युद्धमें कूट शस्त्रोंसे, कर्णिकाके आकार सदृश फलकवाले, विषसे बुझे हुए और अग्निदीप्त वाणोंसे शत्रुको न मारे।

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥९१॥

(आप रथपर चढ़ा हो और शत्रु विरथ हो) धरतीपर खड़ा हो, तो उसे न मारे। जो शत्रु नपुंसक हो, या जो हाथ जोड़े सामने खड़ा हो, जिसके बाल खुले हों, या जो नीचे बैठा हो, या जो "मैं तुम्हारा हूं" ऐसा कह रहा हो, ऐसे शत्रुको न मारे।

न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥९२॥

जो सोया हुआ हो, जिसके बख्तर शिरस्त्राण न हो, जो नग्न हो, जो निःशस्त्र हो, जिसने हथियार रख दिये हों, जो युद्ध देखनेके लिये आया हो या जो दूसरेके साथ लड़ रहा हो, उसे न मारे।

नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम्।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥९३॥

जिसका आयुध टूट गया हो, जो शोकाकुल हो, जिसके शरीरमें शस्त्रके बहुत घाव लगे हों, जो भयसे काँप रहा हो, जो युद्धसे भागा हो, ऐसे शत्रु को शिष्ट क्षत्रियोंका धर्म स्मरण कर न मारे।

यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः।
भर्तुर्यद्दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥९४॥

युद्धमें डरसे पीठ दिखानेवाला सैनिक जो शत्रुसेनासे मारा जाता है वह अपने स्वामीके समस्त पापोंका बोझ अपने सिरपर लेता है।

यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम्।
भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥९५॥

जो सैनिक युद्धमें पीठ दिखाकर शत्रु द्वारा मारा जाता है उसका परलोकार्थ संचित सकल पुण्य उसके स्वामीको प्राप्त होता है।

रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्स्त्रियः ।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ॥९६॥

रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन, धान्य, पशु, दासी, गुड़, नमक आदि द्रव्य और ताँबा पीतल आदिके बर्तन, इनमें जिस वस्तुको जो जीतकर लावे वह उसीकी होती है।

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥९७॥

सैन्यगण युद्धमें जीते हुए हाथी, घोड़े, रथ आदि सब कुछ राजाको अर्पित कर दें। यह वेदका वचन है। सब योद्धाओं द्वारा एक साथ जीता हुआ जो धन हो उसे राजा सैनिकोंमें बाँट दे।

एषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः सनातनः ।
अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियो घ्नन्रणे रिपून् ॥९८॥

यह अनिन्दित सनातन सैन्यधर्म कहा। युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला क्षत्रिय इस धर्मसे च्युत न हो।

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥९९॥

जो भूमि रत्न आदि अपनेको प्राप्त न हो उसे पानेकी इच्छा करे, जो सम्पत्ति जीतकर लाया हो उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करे, रक्षित धनको बढ़ानेकी चेष्टा करे और बढ़ा हुआ धन सुपात्रोंको बाँट दे।

एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ।
अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥१००॥

राजा इन पूर्वोक्त चार बातोंको ( स्वर्गादि ) पुरुषार्थोंका साधन

समझे और आलस्यरहित होकर सदा सावधानीसे उनका अनुष्ठान करे।

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।
रक्षितं वर्धयेद्वृद्ध्या वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥१०१॥

जो प्राप्त नहीं है उसे दण्ड ( चतुरङ्गिणीसेना ) बलसे जीतनेकी इच्छा करे, जो सम्पत्ति जीतकर लाया हो निरीक्षणसे उसकी रक्षा करे, रक्षित धनको वाणिज्य-व्यवसाय द्वारा बढ़ावे, और बढ़े हुए धनको शास्त्रीय विभागके अनुसार पात्रोंमें दान कर दे।

नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः।
नित्यं संवृतसंवार्यो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥१०२॥

सेनाको सदा तैयार रखे, नित्य अपना पुरुषार्थ दिखलावे, अपना मंत्र सदा गुप्त रखे और शत्रुके छिद्रोंका नित्य पता लगाता रहे।

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत्।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥१०३॥

जिस राजाकी सेना सदा तैयार रहती है उससे सारा संसार डरता है। इसलिये राजा दण्ड-बलसे सब प्राणियोंको अपने अधीन कर रखे।

अमाययैव वर्तेत न कथंचन मायया।
बुद्ध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥१०४॥

मन्त्रियोंके साथ शुद्ध व्यवहार रखे, कभी उनसे कपट न करे; अपनी रक्षाका पूरा प्रबन्ध करे और शत्रुकी मायाको ( चरोंके द्वारा ) जानता रहे।

नास्य छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥१०५॥

शत्रु उसके छिद्रको न जाने, किन्तु वह शत्रुके छिद्रको जान ले। कछुआ जैसे अपने अङ्गोंको छिपाता है वैसे राजा भी राज्यके अमात्यादि अंगोंको (दान-सम्मानसे) अपने हाथमें रखे और अपना छिद्र प्रकट न होने दे।

बकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्च पराक्रमेत् ।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥१०६॥

राजा बगुलेकी तरह शत्रुका धन लेनेकी चिन्ता करे, सिंहके समान पराक्रम करे, भेड़ियेकी भाँति अवसर पाकर शत्रुको मार डाले और (बलवान शत्रुसे घिर जानेपर) खरहेकी तरह निकल भागे।

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः ।
तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः ॥१०७॥

इस प्रकार विजयमान राजा सामादि उपायोंसे अपने सब शत्रुओंको अपने वशमें ले आवे।

यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः ।
दण्डेनैव प्रसह्यैतांश्छनकैर्वशमानयेत् ॥१०८॥

यदि वे बैरी पहले (साम दाम भेद) तीन उपायोंसे वशमें न आवें तो बलपूर्वक उनके राज्यपर चढ़ाई कर थोड़ा या बहुत दण्ड देकर उन्हें वशमें कर ले।

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः ।
सामदण्डौ प्रशंसन्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥१०९॥

सामादिक चार उपायोंमें राष्ट्र-वृद्धिके लिये पण्डित लोग साम और दण्डकी ही सदा प्रशंसा करते हैं।

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति ।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥११०॥

खेत निरानेवाला जैसे तृणको खोदकर फेंक देता है और धान्यकी रक्षा करता है, वैसे राजा राष्ट्रकी रक्षा करे और शत्रुओंका संहार करे।

**मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।**

**सोऽचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः॥१११॥**

जो राजा अज्ञानसे भले-बुरेका विचार न कर अपनी प्रजाको सताता है, वह शीघ्र ही अपने बान्धवों सहित राज्य और जीवनसे हाथ धो बैठता है।

**शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।**

**तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्॥११२॥**

शरीरको क्षीण करनेसे जैसे प्राणियोंके प्राण नष्ट होते हैं, वैसे राजाओंके प्राण प्रजापीड़नसे नष्ट होते हैं।

**राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्।**

**सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते॥११३॥**

राष्ट्ररक्षाके लिये राजा सदा यह उपाय करे। जो राजा भली-भांति अपने राष्ट्रकी रक्षा करता है वह सुखी होता है।

**द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्।**

**तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम्॥११४॥**

दो गाँवोंके या तीन गाँवोंके या पाँच गाँवोंके या सौ गाँवोंके बीचमें राज्यकी रक्षाके लिये रक्षक-समूहको नियुक्त करे।

**ग्रामस्याधिपतिं कुर्याद्दशग्रामपतिं तथा।**

**विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च॥११५॥**

प्रत्येक गाँवमें एक-एक मुखिया नियुक्त करे। फिर दश गांवोंका, बीस गांवोंका, सौ गांवोंका और सहस्र गांवोंका एक एक अधिकारी पृथक् नियुक्त करे।

ग्रामदोषान्समुत्पन्नान्ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ।
शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिने ॥११६॥
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ।
शंसेद्ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥११७॥

गांवमें जो कोई दोष उत्पन्न हो ( और उसके निवारणमें यदि ग्रामाधिपति असमर्थ हो तो ) उसके निवारणार्थ ग्रामाधिपति दशग्रामाधिपतिसे कहे। ( यदि वह उसका प्रतिकार न कर सके तो ) वह विंशतिग्रामाधिपतिसे कहे, वैसे ही विंशतिपति शतपतिसे और शतपति सहस्रपतिसे निवेदन करे।

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः ।
अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥११८॥

ग्रामवासियोंसे प्रतिदिन जो कुछ अन्न, पान, ईंधन आदि राजाके लिये दिया जाय वह ग्रामाधिकारी अपनी वृत्तिके लिये ले।

दशी कु तुलं भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि च ।
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम् ॥११९॥

दशग्रामाधिकारी एक कुलको* बीस गांवोंका अधिकारी पांच कुलको, सौ गांवोंका अधिकारी एक गांवको और सहस्राधिकारी एक साधारण नगरको राजाकी आज्ञासे अपने निर्वाहके लिये ले।

तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि ।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः ॥१२०॥

राजाका प्रिय मन्त्री उन ग्रामाधिकारियोंके ग्रामसम्बन्धी और दूसरे कार्योंका आलस्यरहित होकर निरीक्षण करे।

नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ।
उच्चैःस्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥१२१॥

* छः जोड़ बैलोंसे जितनी भूमि जोती जा सके उसे कुल कहते हैं।

राजा प्रत्येक नगरमें एक-एक ऐसे उच्च पदाधिकारी नौकरको नियत करे जो सब प्रयोजनोंकी चिन्ता रखे, और ऐसे भयजनक ठाटबाटसे रहे कि लोगोंमें वह ऐसा तेजस्वी देख पड़े जैसे नक्षत्रोंमें शुक्र आदि ग्रह।

स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम्।
तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥१२२॥

वह नगराधिकारी उन सब ग्रामाधिकारियोंकी सदा स्वयं देखभाल करे और (राजा) चरों (जासूसों) द्वारा उन सबके और प्रजाओंके आचार-व्यवहारको अच्छी तरह जाने।

राज्ञो हि रक्षाधिकृता परस्वादायिनः शठाः।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजा ॥१२३॥

क्योंकि राजाके उन रक्षाधिकारी नौकरोंमें अधिकतर परधनापहारी और वञ्चक होते हैं, इसलिये (राजा) उन लोगोंसे प्रजाओंकी रक्षा करे।

ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥१२४॥

जो पापात्मा कर्मचारी कार्य्यार्थियोंसे घूस लें, राजा उनका सर्वस्व हरण कर उन्हें अपने देशसे निकाल दे।

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च।
प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं स्थानं कर्मानुरूपतः ॥१२५॥

राजाको चाहिये कि कार्योंमें नियुक्त दास-दासियोंकी कर्मके अनुसार दैनिक वृत्ति और पद निश्चित कर दे।

पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम्।
षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥१२६॥

नीच कर्म करनेवाले टहलूको एक पण और अच्छे काम करने-

वालेको प्रतिदिन छः पण मजदूरी, प्रतिमास एक द्रोण* अन्न तथा छः महीनेपर वस्त्र देना चाहिये।

क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान् ॥१२७॥

कितनेको खरीदा, कितनेको बेचा, कितनी दूरसे लाया, कितना उसके खाने-पीनेमें खर्च हुआ, कितना मालकी हिफाजतमें खर्च करना पड़ा, इन सब बातोंकी आलोचना करके राजाको व्यापारियोंसे कर लेना चाहिये।

यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम्।
तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥१२८॥

जिसमें राजा और व्यापार कृषि आदि कर्म करनेवाले, इन दोनोंका लाभ हो, इस बातको सोचकर राजा सदा देशमें कर लगानेकी व्यवस्था करे।

यथाल्पाल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः।
तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥१२९॥

जैसे जोंक, बछड़ा और भ्रमर अपना भक्ष्य ( रक्त, दूध और रस ) थोड़ा-थोड़ा ही लेते हैं वैसे राजाको लोगोंसे थोड़ा-थोड़ा ही वार्षिक कर लेना चाहिये।

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥१३०॥

राजाको व्यापारियोंसे पशु और सोनेके लाभका पचासवां

* अष्ट मुष्टिर्भवेत् किंचित् किंचिदष्टौ च पुष्कलम्। पुष्कलानि तु चत्वारि आढकः परिकीर्तितः। चतुराढको भवेद्द्रोणः॥ इस हिसाबसे मालूम होता है द्रोण पहले मनका पर्याय था।

हिस्सा और कृषकोंसे अन्नका छठा, आठवां या बारहवां अंश लेना चाहिये।

आददीताथ षड्भागं द्रुममांसमधुसर्पिषाम्।
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥१३१॥
पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च।
मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥१३२॥

पेड़, मांस, मधु, घी, गन्ध, ओषधि, रस, फूल, फल, कन्दमूल, पत्ते, साग, तृण, चमड़ा, बांसके बने बर्तन, मिट्टी और पत्थरके बर्तन, इन सबके लाभका छठा भाग ( करस्वरूप ) लेना चाहिये।

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम्।
न च क्षुधास्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥१३३॥

राजा विपत्तिका मारा (या कंगाल) होनेपर भी श्रोत्रिय ब्राह्मणसे कर न ले और राजाको यह भी ध्यान रखना चाहिये कि उसके राज्यमें रहनेवाला वेदाध्यायी ब्राह्मण भूखसे पीड़ित न होने पावे।

यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा।
तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचिरेणैव सीदति ॥१३४॥

जिस राजाके राज्यमें वैदिक ब्राह्मण भूखसे व्याकुल होता है, उसका वह राज्य भी ( दुर्भिक्ष आदि उपद्रवोंसे आक्रान्त होकर ) शीघ्र ही दरिद्र हो जाता है।

श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत्।
संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पिता पुत्रमिवौरसम् ॥१३५॥

राजा उसके शास्त्रीय ज्ञान और अनुष्टानको जानकर तदनुसार उसकी धर्मरूप वृत्ति नियत कर दे और पिता जैसे अपने औरस पुत्रकी रक्षा करता है, वैसे ही वह सब प्रकार उसकी रक्षा करे।

संरक्ष्यमाणो राज्ञा यं कुरुते धर्ममन्वहम् ।
तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥१३६॥

वह वेदपाठी ब्राह्मण राजासे रक्षित होकर जो प्रतिदिन धर्माच-रण करता है उससे राजाकी आयु, धन और राज्यकी वृद्धि होती है।

यत्किंचिदपि वर्षस्य दापयेत्करसंज्ञितम् ।
व्यवहारेण जीवन्तं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥१३७॥

राजा अपने राज्यमें थोड़े मूल्यके व्यापारसे ( पान-पत्ता तर-कारी आदि बेंचकर ) जीनेवालोंसे भी कुछ न कुछ वार्षिक कर लिया करे।

कारुकाञ्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः ।
एकैकं कारयेत्कर्म मासि मासि महीपतिः ॥१३८॥

कारीगरीका काम करके जीनेवाले, लोहार, बेलदार और बोझ ढोनेवाले आदि मजदूरोंसे राजाको चाहिये कि महीनेमें एक दिन काम करा ले।

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ।
उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥१३९॥

राजा कर न लेकर अपने मूलका उच्छेद न करे और लोभवश बहुत कर लेकर प्रजाका भी मूलोच्छेद न करे क्योंकि अपने मूलो-च्छेदसे अपनी और प्रजाके मूलोच्छेदसे प्रजाकी हानि होनेसे कष्ट होता है।

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः ।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ॥१४०॥

राजाको कार्य देखकर कोमल और कठोर होना चाहिये, क्योंकि प्रसंगानुसार राजाका कोमल या कठोर होना सबको अच्छा लगता है।

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम् ।
स्थापयेदासने तस्मिन्खिन्नः कार्येक्षणे नृणाम् ॥१४१॥

यदि स्वयं कार्य करनेमें राजाका मन न लगे तो वह धर्मज्ञ, प्रवीण, जितेन्द्रिय, सत्यशील, कुलीन और श्रेष्ठ मन्त्रीको अपना काम देखनेका भार सौंपे ।

एवं सर्वं विधायेदमितिकर्तव्यमात्मनः ।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥१४२॥

इस प्रकार राजा अपने सब कामोंकी व्यवस्था करके दक्षता और सावधानीके साथ अपनी प्रजाका अच्छी तरह पालन करे ।

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ।
संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥१४३॥

जिस राजा और मन्त्रियोंकी नजरके सामने राज्यकी प्रजा त्राहि त्राहि कर चिल्लाती रहनेपर भी डाकुओंसे लुट जाती है वह राजा जीता नहीं, मरे हुएके समान है ।

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥१४४॥

क्षत्रियका परम धर्म प्रजाओंका पालन करना ही है ; क्योंकि प्रजाओंसे करस्वरूप निर्दिष्ट फल भोगनेके कारण राजा उस धर्मसे संबद्ध होता है ।

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ।
हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥१४५॥

राजा रातके पिछले पहर जागकर, शौचादि क्रियासे निवृत हो, संयत चित्तसे अग्निमें हवन कर, ब्राह्मणोंका पूजन कर, वास्तुलक्षणोंसे युक्त अपनी राजसभामें प्रवेश करे ।

तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥१४६॥

उस सभामें उपस्थित प्रजाओंको राजा दर्शन संभाषणादिसे प्रसन्न कर बिदा कर दे। उन प्रजाओंके वहांसे चले जानेपर मन्त्रियोंके साथ सन्धि विग्रह आदि विषयोंपर विचार करे।

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥१४७॥

पहाड़पर या कोठेपर या राजमहलके एकान्त स्थानमें अथवा वनमें जहां किसी प्रकार मन्त्रभेद होनेकी आशङ्का न हो, बैठकर मन्त्रणा करे।

यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः १४८

जिस राजाके विचारको मन्त्रियोंके सिवा और लोग एक होकर भी नहीं जानते, वह राजा कोशहीन होनेपर भी सारी पृथिवीको भोगता है।

जडमूकान्धबधिरांस्तैर्यग्योनान्वयोऽतिगान् ।
स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्यङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत् ॥१४९॥

बुद्धिहीन, गूंगा, अन्धा, बहरा, मनुष्यकी बोली बोलनेवाला पक्षी, बहुत बूढ़ा, स्त्री, म्लेच्छ, रोगी और अङ्गहीन, इस सबको मन्त्रणा करते समय हटा देना चाहिये।

भिन्दन्त्यवमता मन्त्रं तैर्यग्योनास्तथैव च ।
स्त्रियश्चैव विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ॥१५०॥

ये बुद्धिहीन, अन्धे, बूढ़े आदि अपमानित होनेपर गुप्त मन्त्रणा प्रकट कर देते हैं। वैसे ही शुकसारिकादि पक्षी और विशेषकर

स्त्रियां बहकावेमें गुप्त मन्त्र प्रकट कर देती हैं, इसलिये राजा इन सबको विचारस्थानसे दूर रखे।

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः।
चिन्तयेद्धर्मकामार्थान्साध तैरेक एव वा ॥१५१॥

दोपहर दिनमें या आधीरातको, जब चित्त शान्त हो और शरीर क्लेशरहित हो, तब राजा मन्त्रियोंके साथ या अकेला ही धर्म, अर्थ और कामका चिन्तन करे।

परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम्।
कन्यानां संप्रदानं कुमाराणां च रक्षणम् ॥१५२॥

(प्रायः) परस्पर विरुद्ध रहनेवाले इन धर्मोंका ( विरोध परिहार-पूर्वक ) संपादन करनेका विचार करे। ( अपनी कार्यसिद्धिके निमित्त ) कन्याओंका दान और कुमारोंकी ( शिक्षा आदिद्वारा ) रक्षा करनेका उपाय सोचे।

दूतसंप्रेषणं चैव कार्यशेषं तथैव च।
अन्तःपुरप्रचारं च प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥१५३॥

परराष्ट्रमें दूत भेजने और आरब्ध कार्यको समाप्त करनेका चिन्तन करे। महलमें रहनेवाली स्त्रियोंकी कार्रवाइयोंपर निगाह रखे और दूसरे राज्यमें भेजे हुए गुप्त दूतोंका भेद लानेके लिये दूसरे चरको नियुक्त करे।

कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च तत्त्वतः।
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥१५४॥

समग्र अष्ट* विध कर्म पञ्चवर्ग† अनुराग, विरोध और राज-

* आदाने च विसर्गे च तथा प्रैषनिषेधयोः। पंचमे चार्थ वचने व्यवहारस्य चेक्षणे। दण्डशुद्ध्योः सदायुक्तस्तेनाष्टगतिको नृपः॥ अष्टविध कर्मोंका संक्षिप्त विवरण, यथा—

मण्डलका रंगढंग यह सब अच्छी तरह सोचे ( अर्थात् कौन राजा उससे सन्धि चाहता है, कौन विग्रह चाहता है, उसका प्रतीकार कैसे करना चाहिये, इन बातोंका विचार करे )।

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ।
उदासीनप्रचारं च शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥१५५॥

---

१ प्रजाओंसे कर आदि लेना, २ भृत्य और याचकोंको यथायोग्य धन देना, ३ मन्त्रियोंको किसी कामसे भेजना, ४ अनावश्यक कार्योंको रोकना, ५ संदिग्ध कार्यमें राजाकी आज्ञाको ही सर्वश्रेष्ठ मानना, ६ व्यावहारिक कामोंको देखना, ७ उचित दण्ड देना, ८ किसी पापके लिये प्रायश्चित्त करना।

† पंचवर्ग—अर्थात् पांच प्रकारके चर यथाः—

१ कापटिक, २ उदास्थित, ३ गृहस्थ, ४ वाणिजक, ५ तापस।

कापटिक—जो कपट करनेमें कुशल हो, दूसरेका मर्म जाननेवाला हो, और अपना भेष छिपानेमें चतुर हो, राजा ऐसे चतुरके साथ एकान्तमें बात करे।

उदास्थित—भ्रष्ट संन्यासीका रूप धारण कर वैरी तथा प्रजाओंका सच्चा भेद लेकर अपने राजासे एकान्तमें आकर कहे।

गृहस्थ—जो साधारण स्थितिका होनेपर भी चतुर और पवित्र हो, राजा उसे वृत्ति नियत कर अपना गुप्तचर बनावे।

वाणिजक—जिस वणिक्‌को पूंजी न हो, परन्तु व्यापार करनेमें चतुर हो, उसे पूंजी देकर व्यापारके बहाने अपने देशमें या अपने देशके बाहर भेजकर उसके द्वारा राज्यका गुप्त भेद लिया करे।

तापस—जो संन्यासी जीविकारहित हो, पर नीतिचतुर हो, राजा उसे गुप्त जीविका प्रदान कर अपना भेदिया बनावे। वह संन्यासी कपट चेलोंके साथ तप करे और अपनेको सिद्ध महात्मा बताकर भूतभविष्यकी बात बतानेका ढोंग रचे और लोगोंके पेटकी बात जानकर एकान्तमें राजाको सूचित करे।

मध्यम*की चालढाल, विजिगीषु† की चेष्टा और उदासीन‡ तथा शत्रु किस चालसे चल रहे हैं, इन सब बातोंको बड़े यत्नसे सोचे।

**एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समासतः।**

**अष्टौ चान्याः समाख्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः ॥१५६॥**

ये मध्यम आदि चारों प्रकृतियां जो राजमण्डलके मूल हैं, संक्षेपसे कही हैं, इनके अतिरिक्त आठ § प्रकृतियां और हैं। पूर्वोक्त चार और आठ, ये दोनों मिलकर १२ प्रकृतियां शास्त्रमें कही गयी हैं।

**अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः।**

**प्रत्येकं कथिता ह्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥१५७॥**

प्रत्येक प्रकृतिके मन्त्री, देश, दुर्ग, कोश और सैन्य, ये पांच प्रभेद और होते हैं। १२ मूल प्रकृतियां और ६० उनके प्रभेद, सब मिलकर ७२ हुए जो संक्षेपसे कहे गये।

**अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च।**

**अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥१५८॥**

विजयकी इच्छा करनेवाले राजाको अपने राज्यकी चतुःसीमासे संबद्ध राज्योंके राजाओंको शत्रु-प्रकृति जानना चाहिये। उनके सेवक-

---

* जो शत्रुकी विजयकी इच्छा करनेवाले राजाकी भूमिके तटस्थ हो और उन दोनोंके मिल जानेपर अनुग्रह करनेमें और उन दोनोंमें विभिन्नता होनेसे दण्ड देनेमें समर्थ हो, वह मध्यम है।

† बुद्धि, उत्साह, गुण और स्वभावमें जो दृढ़ हो उसे विजिगीषु कहते हैं।

‡ जो विजिगीषु और मध्यमके मिले रहनेपर अनुग्रह करनेमें और उनके न मिले रहनेपर निग्रह करनेमें समर्थ हो वह उदासीन है।

§ १ मित्र, २ अरिमित्र, ३ मित्रमित्र, ४ अरिमित्रमित्र, ५ पार्ष्णिग्राह, ६ आक्रन्द, ७ पार्ष्णिग्राहासार, ८ आक्रन्दासार, ये आठ प्रकृतियां हैं।

सहायकोंको भी शत्रु ही जानना चाहिये। शत्रु-प्रकृति राज्योंके परे जो राज्य हों उन्हें मित्र-प्रकृति जानना चाहिये। पर शत्रु और मित्र, इन दोनोंके परे जो राजा हो उसे उदासीन-प्रकृति जानना चाहिये।

तान्सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः।
व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥१५९॥

उन सब राजाओंको साम दाम दण्ड और विभेद आदि दो एक या सब उपायोंसे वशमें करे अथवा केवल दण्डसे या केवल सामसे उन्हें अपने वशमें करे।

संधिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥१६०॥

सन्धि (मेल) विग्रह (विरोध) यान (शत्रुके देशपर चढ़ाई करना) आसन (उपेक्षण) द्वैधीभाव (बलको दो भागोंमें बांटना) और संश्रय (शत्रुसे सताये जानेपर प्रबल राजाका आश्रय लेना), इन छः गुणोंकी सदा चिन्ता करे।

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥१६१॥

कर्तव्यकी अच्छी तरह आलोचना करके आसन, आक्रमण, सन्धि, विग्रह, विभेद और संश्रयका प्रयोग करे।

संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥१६२॥

सन्धि, विग्रह, यान, आसन, विभेद और संश्रय, इनको द्विविध जाने।

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च।
तदात्वायतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥१६३॥

वर्तमान अथवा भावी लाभकी आशासे दूसरे राजाके साथ मिलकर जो शत्रुपर आक्रमण किया जाता है वह समानयानकर्म्मा सन्धि और दोनों आपसमें मिलकर आक्रमण अलग अलग होकर करते हैं वह असमानयान सन्धि है। यह दो प्रकारकी सन्धि जाननी चाहिये।

**स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ।**
**मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥१६४॥**

अपने कार्यकी सिद्धिके लिये सुअवसर जान या असमयमें ही स्वयं ही शत्रुसे जो युद्ध छेड़ा जाता है वह एक प्रकारका विग्रह है, अपने मित्रका किसीके द्वारा अपकार होनेपर मित्ररक्षाणार्थ जो युद्ध किया जाता है वह दूसरे प्रकारका विग्रह है। इस तरह दो प्रकारका विग्रह होता है।

**एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ।**
**संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥१६५॥**

यान भी दो प्रकारका होता है—शत्रुको किसी आकस्मिक संकटमें फँसा देख उसपर अकेले आक्रमण करना अथवा स्वयं असमर्थ होनेपर मित्रके साथ मिलकर चढ़ाई करना।

**क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा ।**
**मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥१६६॥**

पूर्व जन्मके पापसे या इसी जन्मके किसी दोषसे जिसकी सम्पत्ति क्षीण हो गयी है, ऐसा राजा शत्रुकी उपेक्षा करे यह एक "आसन" है; और कोई समृद्ध राजा है तो भी मित्रोंके अनुरोधसे ( मित्रोंके लाभार्थ ) वह उस शत्रुकी उपेक्षा करे ( आक्रमण न करे ) यह दूसरा "आसन" है। इस प्रकार दो प्रकारका आसन कहा गया है।

**बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ।**
**द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥१६७॥**

कार्यसिद्धिके लिये सेनापति और राजाकी स्थितिको द्विधा करना। यह जो द्वैध है इसे भी (संधि आदि) छः गुणोंके उपकारको जाननेवालोंने दो प्रकारका कहा है।

अर्थसंपादनार्थं च पिड्यमानस्य शत्रुभिः ।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥१६८॥

शत्रुओंसे सताये जानेपर प्रयोजनसिद्धिके लिये किसी बलिष्ठ राजाका आश्रय लेना अथवा किसी शत्रुसे सताये जानेकी आशङ्कासे किसी बलवान राजाका आश्रय घोषित कर देना —यह दो प्रकारका संश्रय कहा गया है।

यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा संधिं समाश्रयेत् ॥१६९॥

यदि सन्धि करनेमें ही अपनी निश्चित वृद्धि समझे तो थोड़ा कष्ट और हानि सहकर भी सन्धि कर ले।

यदा प्रकृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् ।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥१७०॥

जब राजा अपनी सारी प्रकृति (अर्थात् मन्त्री आदि सहकारी वर्गको) पूरे तौरपर परितुष्ट जाने और अपनेको शत्रुसे बलमें सब प्रकार बड़ा समझे, तब विग्रह ( अर्थात् युद्ध ) करे।

यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ॥१७१॥

जब राजा अपने सेनापति, युद्धमन्त्री, और सेनाको भलीभांति हृष्ट-पुष्ट समझे और अपने शत्रुको इसके विपरीत जाने, तब उसपर आक्रमण करे।

यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च ।
तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सांत्वयन्नरीन् ॥१७२॥

जब राजाको हाथी-घोड़े आदि वाहन और सैन्यबल बहुत कम हो तो सामदामादि व्यवहारसे शत्रुओंको धीरे-धीरे शान्त करता रहे।

मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम्।

तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्यमात्मनः ॥१७३॥

जब राजा अपने शत्रुको सब प्रकार विशेष बलवान जाने तब ( कुछ सेनाको साथ ले आप किलेके भीतर रहे और कुछ सेनाके साथ सेनापतिको शत्रुका सामना करनेके लिये भेजे--इस प्रकार ) द्विधा बल करके अपना कार्य-साधन करे।

यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत्।

तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥१७४॥

राजा जब यह जाने कि वह शत्रुसेनाके आक्रमणसे किसी तरह अपनी रक्षा नहीं कर सकता तब वह किसी धार्मिक बलिष्ठ राजाका आश्रय ले।

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽरिबलस्य च।

उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥१७५॥

जिन प्रकृतियोंके दोषसे राजाकी ऐसी दशा हुई हो और जिस शत्रुबलसे भय उत्पन्न हुआ हो, इन दोनोंका निग्रह कर सकनेवाले राजाका आश्रय करके उसकी गुरुकी भांति सब प्रकार सेवा करे।

यदि तत्रापि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम्।

सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥१७६॥

यदि ( इसपर भी ) संश्रय करनेपर भी अपनी रक्षा न हो सके तो निःशङ्क होकर उस समय युद्ध ही करे।

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः।

यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥१७७॥

नीतिज्ञ राजाको साम आदि सब उपायोंसे ऐसा यत्न करना

चाहिये जिसमें उसके मित्र, उदासीन और शत्रु की संख्या बढ़ने न पावे।

आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत् ।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥१७८॥

उस समय सब कार्योंके भूतकालिक और भविष्यत्कालिक गुण दोषको राजा खूब ध्यानस्थःहोकर विचारे।

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ।
अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥१७९॥

जो राजा भविष्यके गुण-दोषोंको समझता है, उपस्थित कार्योंको शीघ्र निश्चय कर पूर्ण करता है; और बीती हुई बातोंके अवशिष्ट भागको समझता है, वह ( त्रिकाल-सावधान राजा ) कभी शत्रुओंसे पराजित नहीं होता।

यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः ॥१८०॥

राजाको ऐसे नियमसे चलना चाहिये जिसमें मित्र, उदासीन और शत्रु,कोई कभी उसे कष्ट न दे सके। संक्षेपमें यही नीति है।

यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रं प्रति प्रभुः ।
तदानेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः ॥१८१॥

जब राजा शत्रुराज्यपर आक्रमण करना चाहे तो आगे कहे हुए नियमोंके अनुसार शत्रुराज्यपर धीरे धीरे चढ़ाई करे।

मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः ।
फाल्गुनं वाथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथाबलम् ॥१८२॥

शुभ अगहनके महीनेमें राजा युद्धयात्रा करे अथवा जैसी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार फाल्गुन या चैत्रके महीनेमें शत्रुराज्यपर चढ़ाई करे।

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद्‌ध्रुवं जयम् ।
तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥१८३॥

जब राजा अपनी जीत निश्चय जाने और जब देखे कि शत्रु इस समय विपदमें फँसा है, तब वह अन्य किसी महीनेमें भी युद्ध-यात्रा कर सकता है ।

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च ॥१८४॥
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम् ।
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥१८५॥

अपने दुर्ग और देशकी रक्षाके लिये प्रधान पुरुषकी अधीनतामें एक दल सेनाका प्रबन्ध कर, यात्राके उपयुक्त सभी सामान साथ ले, शत्रुराज्यमें भेद लेनेके लिये दूतोंको भेजकर त्रिविध मार्ग ( जाङ्गल, आनूप, आटविक ) परिष्कार करके और छः प्रकारके बलोंको संतुष्ट करके संग्रामनीतिसे धीरे धीरे शत्रुकी नगरीपर आक्रमण करनेके लिये युद्ध-यात्रा करे ।

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥१८६॥

जो कपटी मित्र छिपे छिपे शत्रुकी सेवा करता हो और जो नौकर पहले रूठकर चला गया हो और फिर पीछे आया हो, इनसे बहुत सावधान रहना चाहिये; क्योंकि ये बड़े कठिन शत्रु होते हैं ।

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥१८७॥

युद्धमार्गमें राजा दण्डव्यूह, शकटव्यूह, वराहव्यूह, मकरव्यूह, सूचीव्यूह या गरुड़व्यूह रचकर चले ।

यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद्बलम् ।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् ॥१८८॥

जिधरसे राजाको भयकी आशङ्का हो, उस ओर अपनी सेनाको विशेषरूपसे नियोजित करे और स्वयं पद्मव्यूह रचकर उसमें रहे।

सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
यतश्च भयमाशङ्केत्प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥१८९॥

सेनापति और सेनाध्यक्षोंको सब दिशाओंमें सन्निवेशित करे और जिधरसे भयकी आशङ्का हो उसीको पूर्व दिशा माने ( अर्थात् उसी दिशामें आगे बढ़े। )

गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान्कृतसंज्ञान्समंततः ।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥१९०

व्यूहके चारों ओर ऐसे सैनिक दल रखे जिनपर आप्त अधिकारी हों, जो युद्ध-संकेत जानते हों, जो पैर जमाकर रहने और युद्ध करनेमें कुशल हों, और जो भीरु और विश्वासघाती न हों।

संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ।
सूच्या वज्रेण चैवैतान्व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥१९१॥

यदि सेनाकी संख्या कम हो तो राजा सबको एक साथ जुटाकर और संख्या अधिक हो तो उसे इच्छानुसार फैलाकर सूची-व्यूह या वज्र-व्यूह रचकर उससे युद्ध करावे।

स्यन्दनाश्वैः समे युद्ध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा ।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥१९२॥

समरभूमिमें रथी और घुड़सवार सेनासे, आनूप ( जलमय ) देशमें नौकारूढ़ और गजारोही सेनासे, पेड़, पौधों और लताओंसे भरे हुए स्थानमें धनुषबाणसे और स्थलभागमें ढाल, तलवार और बर्छीसे युद्ध करे।

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालाञ्शूरसेनजान्।
दीर्घांल्लघुंश्चैव नरानग्रानीकेषु योजयेत् ॥१९३॥

कुरुक्षेत्रीय, मत्स्यदेशीय, पाञ्चाल और माथुर सैनिक, ये लम्बे हों या नाटे, इन्हें सेनामें सबके आगे नियुक्त करे।

प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक्परीक्षयेत्।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन्योधयतामपि ॥१९४॥

व्यूहकी रचना करके सेनाको हर्षित करे और उसकी परीक्षा करे, शत्रुसेनासे लड़ते समय भी अपने सैनिकोंकी चेष्टाको परखे।

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥१९५॥

शत्रुके चारों ओर घेरा डाल दे, उसके राज्यको हर तरहसे कष्ट पहुंचावे। वहांका तृण, अन्न, जल और ईंधन नष्टभ्रष्ट कर दे।

भिन्द्याच्चैव तडागानि प्रकारपरिखास्तथा।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥१९६॥

तड़ागादि जलाशयोंका नाश करे, किलेकी दीवारको तोड़-फोड़ डाले, परिखा (खाई) आदिको मिट्टीसे भरदे; इस प्रकार शत्रुको शक्ति-शून्य करे और रातको भी नौबत आदि बजाकर उसे भयभीत करे।

उपजप्यानुपजपेद्बुध्येतैव च तत्कृतम्।
युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥१९७॥

शत्रुपक्षके जो लोग फोड़ लेने योग्य हों उन्हें फोड़ ले, वशमें कर ले और उनके कार्य्यको जाने। विजय चाहनेवाला राजा भय-रहित होकर शुभ समयमें युद्ध आरम्भ करे।

साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक्।
विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन ॥१९८॥

( जहांतक हो ) युद्ध कभी न करे—शत्रुको साम, दान या भेद, इनमेंसे किसी उपायसे या इन सभी उपायोंसे जीतनेका प्रयत्न करे ।

अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः ।
पराजयश्च संग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥१९९॥

युद्ध करते हुए दोनों पक्षोंमेंसे किसकी जीत होगी और किसकी हार, इसका कुछ निश्चय नहीं रहता । इसलिये युद्ध न करना चाहिये ।

त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानामसंभवे ।
तथा युध्येत संपन्नो विजयेत रिपून्यथा ॥२००॥

( परन्तु ) पूर्वोक्त तीनों उपाय ( साम, दान और भेद ) जब असंभव हों तब शक्ति-सम्पन्न होकर, इस कौशलसे युद्ध करे कि शत्रुको जीत सके ।

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान् ।
प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च ॥२०१॥

शत्रुको जीतकर देवता तथा धार्मिक ब्राह्मणोंको पूजा करे और उन्हें भेंट देकर सर्वत्र अभयकी स्थापना करे ।

सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चिकीर्षितम् ।
स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ॥२०२॥

उन सबके हृदयका संक्षेपसे आशय जानकर उस राज्यकी राज-गद्दीपर उसी राजाके किसी वंशजको बिठावे और उस समयके उप-युक्त कामोंको करे ।

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान् ।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥२०३॥

उस राज्यकी प्रजाओंके यथोक्त धर्मोंको प्रमाण माने । उस नये अभिषिक्त राजा और उनके प्रधान मन्त्रियोंको रत्नादिकी भेंट दे ।

आदानमप्रियकरं दानं च प्रियकारकम् ।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥२०४॥

किसीकी इष्ट वस्तुको ले लेना अप्रियकर और दे देना प्रिय-कारक होता है, तथापि प्रसंगानुसार लेना और देना दोनों प्रशस्त होते हैं।

सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यं तु मानुषे विद्यते क्रिया ॥२०५॥

संसारमें सभी कार्य दैव और मानुष कर्मविधानके अधीन हैं। इन दोनोंमें दैव अचिंतनीय है ( उसका विचार नहीं कर सकते ) पर मानुषका विचार कर सकते हैं। ( इसलिये मानुष कर्मसे ही इष्ट-संपादन करना चाहिये। )

सह वापि व्रजेद्युक्तः संधिं कृत्वा प्रयत्नतः ।
मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥२०६॥

( इस प्रकार इष्ट-संपादनार्थ शत्रु से युद्ध करे ) अथवा शत्रु यदि मित्र बनता हो, सुवर्ण देता हो, भूमिका कुछ भाग अर्पण करता हो तो इस त्रिविध फलको पाकर ही सन्धि करके युक्त होकर राजा वहांसे लौट आये।

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ।
मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात् ॥२०७॥

राजमण्डलमें पार्ष्णिग्राह* और आक्रन्द† पर अच्छी तरह

---

*विजय चाहनेवाला राजा जब शत्रुके देशपर चढ़ाई करता है, तब पृष्ठवर्ती राजा जो उसके देशपर आक्रमण या लूट खसोट करता है, उसे पार्ष्णिग्राह कहते हैं।

†ऐसा करनेवालोंको रोकनेवाला अपर राजा आक्रन्द कहलाता है।

दृष्टि रखकर यात्रा करे। मित्र हो या शत्रु, यात्राका फल उससे लेना ही चाहिये।

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥२०८॥

राजा सुवर्ण और भूमि पाकर वैसी वृद्धिको प्राप्त नहीं होता जैसा किसी, अभी तो दुर्बल पर आगे बढ़नेवाले, ध्रुव मित्रको पाकर होता है।

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघु मित्रं प्रशस्यते ॥२०९॥

जो धार्मिक हो, किये हुए उपकारको जानता हो, प्रसन्न स्वभाव-वाला हो, हृदयसे प्रेम रखता हो और जो दृढ़तासे कार्य्यारम्भ करे—ऐसा मित्र छोटा भी हो तो वह उत्तम है।

प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च।
कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥२१०॥

जो शत्रु विद्वान्, कुलीन, वीर, चतुर, दाता, कृतज्ञ और धैर्य-वान् है उसको जीतना बड़ा ही कठिन है, (इसलिये उसके साथ सन्धि ही कर ले) यह पण्डितोंने कहा है।

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः ॥२११॥

साधुता, भले बुरे पुरुषोंकी पहचान, शूरता, दयालुता, दानशीलता, ये सब उदासीनके गुण हैं।

क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धिकरीमपि।
परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन् ॥२१२॥

जिस जगहका जलवायु अच्छा हो, जहां सब प्रकारके अन्न

उपजते हों, जहां पशुओंकी वृद्धि होती हो, ऐसे सुखद स्थानको भी राजा अपनी आत्मरक्षाके लिये बिना सोच-संकोचके छोड़ दे।

आपदर्थं धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥२१३॥

( कारण ) विपत्तिसे बचनेके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये, धनका भी त्याग करके स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये और धन तथा स्त्री दोनोंका त्याग करके सदा आत्मरक्षा करनी चाहिये।

सह सर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो भृशम्।
संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान्सृजेद्बुधः ॥२१४॥

एक ही साथ सब आपदाएं भीषण रूप धारण करके उपस्थित हों तो उनसे बुद्धिमान राजा विचलित न हो किन्तु उनके प्रति ( साम आदि ) सब उपायोंका एक साथ या अलग अलग उपयोग करे।

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः।
एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये ॥२१५॥

उपेता ( उपाय करनेवाला, ) उपेय, ( उपायका फल ) और सब उपाय ( साम-दानादि ) इन तीनोंका पूर्ण विचार करके अपनी कार्य-सिद्धिके लिये यत्न करना चाहिये।

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः।
व्यायम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥२१६॥

इस प्रकार राजा मन्त्रियोंके साथ सब बातोंका विचार करके, शास्त्रादिद्वारा नित्य नियमानुसार व्यायाम कर, मध्याह्नकालिक स्नानादि क्रियासे निवृत्त होकर भोजन करनेके लिये अन्तःपुरमें जाय।

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः।
सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मन्त्रैर्विषापहैः ॥२१७॥

वहाँ आत्मीय, कालज्ञ, अभेद्य ( जो किसीके बहकाये न बहके) रसोइयोंके बनाये हुए सुपरीक्षित सुस्वादु अन्न विषनाशक मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके भोजन करे ।

विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत् ।
विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा ॥२१८॥

राजा सावधान होकर खानेकी सभी वस्तुओंमें विषनाशक औषध मिलावे और सदा विषनाशक रत्नोंको धारण करे ।

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः ।
वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः ॥२१९॥

गुप्तचरों द्वारा जिनकी परीक्षा की जा चुकी है और जिनके पास कोई गुप्त शस्त्र और विषलिप्त आभूषण तो नहीं है यह सन्देह नहीं रह गया है ऐसी परीक्षित परिचारिकायें, जिनके वेश और आभूषण शुद्ध हैं, बड़ी सावधानीसे चामर, स्नान, पानादिक जल और धूप आदिसे राजाकी परिचर्या करें ।

एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने ।
स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालंकारकेषु च ॥२२०॥

इसी प्रकार वाहन, शय्या, आसन, भोजन, स्नान, अनुलेपन, पुष्पमाल्यादि अलङ्कारके संबंधमें परीक्षा कर लेनी चाहिये ।

भुक्तवान्विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह
विहृत्य तु यथाकालं पुनः कार्याणि चिन्तयेत् ॥२२१॥

भोजनके अनन्तर कुछ कालतक अन्तःपुरमें स्त्रियोंके साथ विहार करे, उसके बाद फिर अपने राजकार्यकी चिन्ता करे ।

अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं पुनर्जनम् ।
वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥२२२॥

राजा भूषण-वस्त्रसे सुसज्जित होकर सैनिकों, वाहनों, सब प्रकारके अस्त्रशस्त्रों और अलङ्कारोंका निरीक्षण करे।

संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत्।
रहस्याख्यायिनां चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥२२३॥
गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तं जनम्।
प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः ॥२२४॥

तदनन्तर संध्योपासना करके अन्तर्गृह एकान्तस्थानमें जाय और सशस्त्र बैठकर रहस्यभाषी चरों (जासूसों) का गुप्त संवाद सुने। इसके बाद उन्हें आज्ञा देकर वहांसे विदा करके परिचारिका स्त्रियोंके साथ भोजनके लिये पुनः अन्तःपुरमें प्रवेश करे।

तत्र भुक्त्वा पुनः किंचित्तूर्यघोषैः प्रहर्षितः।
संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः ॥२२५॥

वहां वाद्योंके मधुर शब्दोंसे प्रसन्न होकर फिर कुछ भोजन करके ठीक समयपर सोवे और भलीभांति विश्राम करके (रातके पिछले पहरमें) जाग उठे।

एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः।
अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत् ॥२२६॥

शरीर स्वस्थ रहनेपर राजा स्वयं इन सब पूर्वोक्त कार्योंका सम्पादन करे, किन्तु अस्वस्थ होनेपर जो जैसा कार्य हो वह वैसे भृत्यके हाथमें सौंपे।

* सप्तम अध्याय समाप्त *

# अध्याय ८



व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥१॥

प्रजाके व्यावहारिक विषयोंकी आलोचना करनेकी इच्छासे राजा ब्राह्मणों और विचारज्ञ मन्त्रियोंके साथ विनीतभावसे राजसभा ( दरबार ) में प्रवेश करे ।

तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२॥

विनीत वेश और अलंकारसे युक्त राजा वहां ( यथाप्रसंग ) बैठकर या खड़े होकर दाहिना हाथ कपड़ेसे बाहर निकाल कार्यार्थी पुरुषोंके कार्योंको देखे ।

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक्पृथक् ॥३॥

ये कार्य अठारह मार्गोंमें निबद्ध हैं । इनका नित्य देशाचार तथा शास्त्र-विचारसे प्राप्त हेतुओंसे पृथक् पृथक् विचार करे ।

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥४॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥५॥
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥६॥
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥७॥

( ये जो अठारह मार्ग हैं ) उनमें प्रथम १ ऋण लेना, २ किसीके पास थाती रखना, ३ मालिकसे बिना पूछे कोई चीज बेचना, ४ साझेका व्यवहार, ५ दी हुई वस्तुको फिर ले लेना, ६ वेतन न देना, ७ की हुई व्यवस्थासे मुकरना, ८ खरीद बिक्रीमें किसी बातका अन्तर पड़ जाना, ९ स्वामी और पशुपालकोंमें विवाद, १० सीमाकी तकरार, ११ गाली गलौज देना या मार-पीट करना, १२ चोरी, १३ साहस अर्थात् जबर्दस्ती किसीकी चीज ले लेना, १४ पराये पुरुषके साथ स्त्रीका सम्पर्क, १५ पति-पत्नीके परस्पर धर्मकी व्यवस्था, १६ पैतृक आदि धनका विभाग, १७ जुआ, १८ पशु-पक्षियोंको लड़ाना, व्यवहारके ये ही १८ स्थान हैं।

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम्।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥८॥

प्रायः इन ( १८ ) स्थानोंमें विवाद करनेवाले मनुष्योंके धर्मका निर्णय अनादि परंपरागत धर्मका आश्रय करके करना चाहिये।

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम्।
तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥९॥

किसी कारणसे राजा स्वयं काम न देख सके, तो उस कामपर किसी विद्वान् नीतिनिपुण ब्राह्मणको नियुक्त करे।

सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः।
सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥१०॥

वह विद्वान् ब्राह्मण तीन सभासदोंके साथ राजसभामें उपस्थित होकर बैठकर या खड़े होकर राजाके कार्योंको भलीभांति देखे।

यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः।
राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान्ब्रह्मणस्तां सभां विदुः ॥११॥

जिस सभामें वेद जाननेवाले तीन ब्राह्मण बैठते हैं और राजाका

प्रतिनिधि विद्वान् ब्राह्मण बैठता है उस सभाको ब्रह्मसभा ( चतुर्मुख ब्रह्माकी सभाके तुल्य ) कहते हैं ।

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥१२॥

जहां सभामें धर्म ( सत्य ) अधर्म ( असत्य ) से विद्ध होकर आता है, यदि वहां सभासद धर्मके शल्य ( अधर्म )को न उखाड़ फेंकें तो वेही लोग उस अधर्मशल्यसे विद्ध होते हैं ।

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥१३॥

( इसलिये ) या तो सभामें प्रवेश ही न करना चाहिये या यथार्थ बोलना चाहिये । कुछ न बोलने या अधिक बोलनेसे मनुष्य पापभागी होता है ।

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥१४॥

जिस सभामें सभासदोंके देखते हुए भी अधर्मसे धर्म और असत्यसे सत्य मारा जाता है, वहां उस अन्यायजनित पापसे सभासद ही नाशको प्राप्त होते हैं ।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥१५॥

नष्ट हुआ धर्मही नाश करता है और रक्षित किया धर्मही रक्षा करता है। "नष्ट धर्म कहीं हमें नष्ट न करे," इसलिये धर्मका कभी नाश न करना चाहिये ।

वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥१६॥

( सब कामनाओंकी सिद्धिकी वर्षा—वृष्टि करनेवाला ) वृष यही भगवान धर्म है । उस धर्मका जो नाश करता है उसे देवता वृषल जानते हैं । इसलिये धर्मका कभी लोप न करे ।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥१७॥

एक धर्म ही ऐसा मित्र है जो मरनेपर भी साथ जाता है । और सब तो शरीरके साथ ही नष्ट हो जाते हैं ।

पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ।
पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति ॥१८॥

अधर्मका चतुर्थ भाग अधर्म करनेवालेको, चतुर्थ भाग साक्षीको, चतुर्थ भाग सब सभासदोंको और चतुर्थ भाग राजाको प्राप्त होता है ।

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ।
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥१९॥

( परन्तु ) जिस सभामें निन्दनीय व्यक्तिकी ( योग्य न्यायद्वारा ) निन्दा होती है, वहां राजा पापभागी नहीं होता, और सभासद भी पापसे मुक्त होते हैं । पापका सम्पूर्ण फल पाप करनेवाला ही पाता है ।

जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः ।
धर्मप्रवक्ता नृपतेर्न तु शूद्रः कथंचन ॥२०॥

केवल जातिके नामपर जीनेवाला ( अर्थात् वैसा कर्म न करनेवाला ) और ब्राह्मण कहलानेवाला ऐसा ब्राह्मण भी राजाकी ओरसे धर्मप्रवक्ता हो सकता है, परन्तु शूद्र कभी नहीं हो सकता ।

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम् ।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पङ्के गौरिव पश्यतः ॥२१॥

जिस राजाके राज्यमें शूद्र न्यायकर्ता होता है, उस राजाके देखते देखते उसका देश पङ्कमें धसी हुई गौकी भांति क्लेश पाता है।

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम्।

विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥२२॥

जो देश शूद्रोंसे भरा हो, और नास्तिकोंसे आक्रान्त हो, जहां एक भी ब्राह्मणका निवास न हो, वह सारा देश शीघ्र ही दुर्भिक्ष और रोगोंसे पीड़ित होकर नष्ट हो जाता है।

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः।

प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत् ॥२३॥

देहको आच्छादित करके, न्यायासनपर बैठ, एकाग्रचित्तसे लोकपालोंको प्रणाम करके काम देखना आरम्भ करना चाहिये।

अर्थानर्थावुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ।

वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥२४॥

अर्थ अनर्थ और केवल धर्म अधर्मको अच्छी तरह जानकर वर्णक्रमसे न्यायप्रार्थियोंके सब कार्योंको देखे।

बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम्।

स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च ॥२५॥

स्वर, वर्ण, इङ्गित, आकार, नेत्र और चेष्टा मनुष्योंके इन बाहरी चिन्होंसे राजा उनके भीतरका भाव जाने।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।

नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥२६॥

आकार, इङ्गित, गति, चेष्टा, भाषण, नेत्र और मुखके विकारोंसे मनकी बात जानी जाती है।

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ।
यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः ॥२७॥

अप्राप्तवयस्क ( नाबालिग ) के साम्पत्तिक अंश और धनकी रक्षा राजा तबतक करे जबतक वह वेदाध्ययनकी समाप्ति कर प्राप्त-वयस्क होकर गुरुकुलसे लौटकर न आवे।

वशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च ॥२८॥

वन्ध्या, पुत्रहीना, जिस स्त्रीके कुलमें कोई न हो, पतिव्रता, विधवा और रोगिणी स्त्री, इनके धनकी रक्षा भी राजा नाबालिगके धनकी तरह करे।

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः ।
ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥२९॥

उन जीती हुई स्त्रियोंका धन उनके बान्धव जबर्दस्ती लें लें तो धार्मिक राजा उन्हें चोरका दण्ड दे।

प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ।
अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ॥३०॥

जिस धनका कोई स्वामी न हो, राजा उस धनको तीन वर्ष-तक अमानतकी तरह अपने पास रखे। तीन वर्षके पहले यदि उस धनका अधिकारी आजाय तो उसे दे दे, अधिकारी न मिलनेपर तीन वर्षके बाद राजा उस धनको आप ले ले।

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि ।
संवाद्य रूपसंख्यादीन्स्वामी तद्द्रव्यमर्हति ॥३१॥

जो कोई कहे कि यह धन मेरा है, उससे उस धनके सम्बन्धमें सारी बातें पूछनी चाहिये। यदि वह उस धनके रूप और संख्या आदि सब सच बतावे तो वह उस धनको ले।

अवेदयानो नष्टस्य देशं कालं च तत्त्वतः ।
वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥३२॥

नष्ट धन किस जगह कब कैसे खोया गया, जो यह न जानता हो, और न उस धनके वर्ण, आकार और संख्याको ही ठीक ठीक जानता हो, राजा उस मिथ्यावादीपर उस धनके बराबर दण्ड करे ।

आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः ।
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ॥३३॥

नष्ट धन मिलनेपर राजा सज्जनोंके धर्मका स्मरण करता हुआ उसका छठा, दशवाँ या बारहवाँ भाग ले ( शेष उसके स्वामीको दे दे ) ।

प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम् ।
यांस्तत्र चौरान्गृह्णीयात्तान्राजेभेन घातयेत् ॥३४॥

किसीका नष्ट धन राजपुरुषोंके द्वारा प्राप्त हो तो राजा उसे रक्षकोंके द्वारा सुरक्षित रूपमें रखवा दे और उस द्रव्यके साथ जो चोर पकड़े जांय उन्हें हाथीसे कुचलवा दे ।

ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ।
तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा ॥३५॥

जो मनुष्य कहे कि यह मेरा धन है और उसका सच्चा प्रमाण दे तो राजा उस धनका छठा या बारहवां भाग लेकर शेष उसको दे ।

अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम् ।
तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं कलाम् ॥३६॥

जो मिथ्या कहे कि यह मेरा धन है, उससे राजा उसके धनका आठवां भाग दण्डमें ले अथवा उस धनकी जो संख्या हो उसका कुछ अंश दण्ड करे ।

विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम्।
अशेषतोऽप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः ॥३७॥

विद्वान् ब्राह्मण पहलेसे किसीके रखे हुए धनको देखकर चाहे तो सब ले ले, क्योंकि वह सबका स्वामी है।

यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ।
तस्माद्‌द्विजेभ्यो दत्त्वार्धमर्धं कोशे प्रवेशयेत् ॥३८॥

धरतीमें गड़े हुए पुराने धनको देखकर राजा उसमेंसे आधा ब्राह्मणोंको दे और आधा अपने खजानेमें रखवा दे।

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ।
अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः ॥३९॥

पृथ्वीमें पुराने खजाने और धातुओंकी रक्षा करनेके कारण उसका आधा भाग राजाका होता है क्योंकि वह भूमिका स्वामी है।

दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतं धनम्।
राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम् ॥४०॥

जो धन चोरोंने चुराया हो उसे राजा चोरोंसे निकालकर सब वर्णोंके स्वामीको दे दे। यदि राजा स्वयं चोरीका धन उपभोग करे तो उसे चोरीका पाप लगता है।

जातिजानपदान्धर्माञ्श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥४१॥

धर्मज्ञ राजा जातिधर्म, देशधर्म, श्रेणीधर्म तथा कुलधर्मकी समीक्षा करके उनके अनुकूल व्यावहारिक धर्मोंकी व्यवस्था करे।

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोऽपि मानवाः।
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥४२॥

अपने अपने नित्यनैमित्तिक कामोंमें लगे हुए मनुष्य जाति,

देश और कुलके अनुसार अपने कर्म्मोंको करते हुए दूरस्थ होनेपर भी संसारके प्रिय होते हैं ।

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः ।
न च प्रापितमन्येन ग्रसेदर्थं कथंचन ॥४३॥

राजा अथवा राजाका प्रतिनिधि ( न्यायकर्ता ) स्वयं मामला खड़ा न करे और न धनके लोभसे मुकद्दमेको खारिज करे ।

यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् ।
नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥४४॥

जैसे व्याध गिरे हुए लहूके अनुसन्धानसे मृगके स्थानतक पहुंच जाता है, वैसे राजा प्रत्यक्ष प्रामाण वा अनुमानके सहारे धर्मके तत्त्व तक पहुंच जाय ।

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः ।
देशं रूपं च कालं च व्यवहारविधौ स्थितः ॥४५॥

राजा न्यायासनपर स्थित होकर सत्य, धन, आत्मा, साक्षी, देश, रूप और काल, इन सबपर दृष्टि डाले ।

सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः ।
तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥४६॥

धार्मिक, साधुशील द्विजातियोंसे जो आचरण किया गया हो, उसके तथा देश, कुल, जातिके अनुकूल धर्मकी व्यवस्था करे ।

अधमर्णार्थसिद्ध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ।
दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् ॥४७॥

ऋणीसे धन दिलवा देनेके लिये महाजनसे प्रार्थित होनेपर राजा महाजनका निश्चित धन कर्जदारसे दिलवा दे ।

यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः ।
तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् ॥४८॥

महाजन जिन-जिन उपायोंसे अपना धन पा सके, राजा उन-उन उपायोंसे ऋणीके पाससे धन संग्रह करके धनीको दिलावे ।

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ।
प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥४९॥

धर्मसे, व्यवहारसे, छलसे, द्वारपर सिपाही बिठाकर उपद्रव करवानेसे, और बलप्रयोग*से धनीका माल दिलावे ।

यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात् ।
न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् ॥५०॥

जो महाजन राजाको सूचना दिये बिना कर्जदारसे स्वयं अपना धन वसूल करे तो राजा इसमें उसे न रोके ।

अर्थेऽपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् ।
दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः ॥५१॥

यदि ऋणी ऋण स्वीकार न करे और प्रमाणोंसे उसका ऋण लेना साबित हो तो राजा उससे धनीका धन दिलावे और यथाशक्ति कुछ दण्ड भी दे ।

अपह्नवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि ।
अभियोक्ता दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् ॥५२॥

न्यायालयमें ऋणीसे ऋण मांगनेपर यदि वह कहे कि "मैं इसका कुछ नहीं धारता" तो महाजन गवाहोंसे सच्ची बात कहलावे और पत्रादि प्रमाण पेश करे ।

अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापह्नुते च यः ।
यश्चाधरोत्तरानर्थान्विगीतान्नावबुध्यते ॥५३॥

---

* बध्वा स्वगृहमानीय ताड़णाद्यैरुपक्रमैः ।
ऋणिको दाप्यते यत्र बलात्कारः प्रकीर्तितः ॥

अपदिश्यापदेश्यं च पुनर्यस्त्वपधावति ।
सम्यक्प्रणिहितं चार्थं पृष्टः सन्नाभिनन्दति ॥५४॥
असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः ।
निरुच्यमानं प्रश्नं च नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् ॥५५॥
ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत् ।
न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते ॥५६॥

जिस स्थानमें धन दिया गया हो, उस स्थानमें ऋणीका रहना न बतावे अथवा कही हुई बातको मुकर जाय, पहले बात बोल चुका हो फिर पीछे आप ही उसके विरुद्ध भाषण करे। एक वार कहकर दूसरी वार उसी बातको दूसरे ढङ्गसे कहे, पूछे जानेपर भली-भांति प्रतिज्ञा की हुई बातोंका समर्थन न कर सके, निर्जन स्थानमें गवाहोंके साथ बात करे, प्रश्नका पूछा जाना पसन्द न करे, जिरहके डरसे इधर उधर घूमे या टालमटोल करे, 'कहो' यह कहनेपर भी कुछ न कहे, कही हुई बातोंको प्रमाणसे साबित न कर सके, जो पूर्वापर साधन साध्यको न जाने अर्थात् असाधनको साधन और असाध्यको साध्य जाने वह ऋणीसे धन पानेयोग्य नहीं है। अर्थात् राजा उसे धन न दिलावे।

साक्षिणः सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः ।
धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् ॥५७॥

मेरे साक्षी हैं, यह कहकर जो साक्षी मांगनेपर साक्षी न दे, उसे भी धर्मशील राजा इन सब कारणोंसे हीन ( अर्थात् पराजित ) कायम करे।

अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्बध्यो दण्ड्यश्च धर्मतः ।
न चेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मं प्रति पराजितः ॥५८॥

जो अभियोगी ( मुद्दई ) मुकद्दमा दायर कर पीछे कुछ न बोले

वह धर्मतः बन्धन या दण्डके योग्य होता है। जो अभियुक्त (मुद्दा-लेह) तीन पखके भीतर कुछ जवाब न दे, उसे न्यायतः पराजित हुआ समझना चाहिये।

यो यावन्निह्नुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत्।
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमम् ॥५९॥

ऋणी धन लेकर जितना न लेनेका बहाना करे और धनी कर्जदारपर जितना अधिक झूठा दावा करे राजा उन दोनों अधर्मियों-पर उसका दूना अर्थदण्ड करे।

पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा।
त्र्यवरैः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसंनिधौ ॥६०॥

धनीसे बुलाये जाने और पूछे जानेपर यदि न्यायालयमें कर्ज-दार कहे कि मैंने कर्ज नहीं लिया है तो महाजन राजनियुक्त विद्वान ब्राह्मणके सम्मुख कमसे कम तीन गवाहोंसे इजहार दिलाकर अपना निबार करावे।

यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः।
तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथावाच्यमृतं च तैः ॥६१॥

लेन-देनके व्यवहारमें धनियोंको जैसे गवाह करने चाहिये और उन गवाहोंसे जैसे सत्य बुलवाना चाहिये, वह अब कहता हूं।

गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः।
अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥६२॥

गृहस्थ, पुत्रवान्, पड़ोसका रहनेवाला क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये लोग वादीके कहे जानेपर गवाही दे सकते हैं। निरापद अव-स्थामें जिस तिसकी गवाही नहीं ली जा सकती।

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥६३॥

जो सब वर्णोंमें यथार्थ वक्ता, सब धर्मोंके ज्ञाता और लोभरहित हों, वे लेन-देनके व्यवहारमें साक्षी करनेयोग्य हैं, जो इसके विरुद्ध गुणवाले हों उन्हें छोड़ देना चाहिये।

नार्थसम्बन्धिनो नाप्ता न सहाया न वैरिणः।
न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः ॥६४॥

जिनके साथ धनका सम्बन्ध हो अर्थात् जो महाजनके ऋणी हों, इष्ट-मित्र हों, सहायक हों, शत्रु हों, जिनका दोष (मिथ्याभाषण आदि) पहले देखा गया हो, जो व्याधिपीड़ित हों और पापसे दूषित हों, वे साक्षी बनने योग्य नहीं हैं।

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ।
न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न सङ्गेभ्यो विनिर्गतः ॥६५॥

राजा, कारीगर, नट, श्रोत्रिय ( वेदाध्यायी कर्मपरायण ) ब्रह्मचारी और संन्यासी, ये लोग गवाह न माने जांय।

नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत्।
न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥६६॥

दास, विहित कर्मके त्यागसे लोगोंमें जिसकी निन्दा होती हो, क्रूरकर्मी, निषिद्ध कर्म करनेवाला, बूढ़ा, बालक, अंत्यज और विकलेन्द्रिय तथा किसी एक ही व्यक्तिको गवाह न करे ( अर्थात् कमसे कम तीन गवाह करने चाहिये )।

नार्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः।
न श्रमार्तो न कामार्तो न क्रुद्धो नापि तस्करः ॥६७॥

शोकार्त, मत्त, पागल, भूख-प्याससे पीड़ित, परिश्रमसे थका हुआ, कामातुर, क्रोधी और चोरको साक्षी न करे।

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥६८॥

स्त्रियोंके अभियोगमें स्त्रियोंको गवाह करे, ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके गवाह उनके सजातीय हों, शूद्रोंके शूद्र और चाण्डाल आदि नीच जातियोंके साक्षी उनकी जातिवाले ही हों।

अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् ।
अन्तर्वेश्मन्यरण्ये वा शरीरस्यापि चात्यये ॥६९॥

घरमें या जङ्गलमें चोर लुटेरोंका उपद्रव होनेपर या किसीके द्वारा शरीरपर चोट होनेपर वहां जो कोई हो उसीको साक्षी करना चाहिये ।

स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बालेन स्थविरेण वा ।
शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा ॥७०॥

पूर्वोक्त साक्षी न मिलनेपर स्त्री, बालक, वृद्ध, शिष्य, बन्धु, टहलू, और कर्मचारीसे भी गवाहका काम लिया जा सकता है ।

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा ।
जानीयादस्थिरां वाचमुत्सिक्तमनसां तथा ॥७१॥

स्थिरचित्त न रहनेके कारण बालक, वृद्ध और रोगी यदि साक्ष्य देते समय कुछ झूठ बोलें तो राजा अनुमानसे उनके कथनमें सत्यका अंश कितना है, यह जान ले ।

साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च ।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥७२॥

साहसके सभी काम, चोरी और स्त्रीसंग्रहण, वचन और दण्डकी कठोरता, इनमें साक्षियोंकी परीक्षा न करे ।

बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान्गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥७३॥

साक्षियोंके परस्पर विरोधमें बहुत गवाह जिस बातको कहें राजा उसीको प्रामाणिक माने । विरुद्धभाषियोंकी संख्या बराबर होनेपर

विशेष गुणवानके कथनको ही ग्रहण करे । यदि दोनों गुणवान हों तो उनमें जो क्रियावान् ब्राह्मण हो उसीका वचन ग्राह्य माने ।

समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति ।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥७४॥

आँखसे देखी हो या कानसे सुनी हो ऐसी ही बातमें साक्ष्य होती है । जो जैसा मालूम हो वैसा ही सच-सच कह देनेवाला साक्षी धर्म और अर्थसे हीन नहीं होता ।

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्यसंसदि ।
अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥७५॥

यदि साक्षी साधु सभामें, देखी या सुनी बातोंके विरुद्ध भाषण करे अर्थात् झूठ बोले तो वह मरनेपर अधोमुख हो नरकमें जाता और स्वर्गसे वंचित होता है ।

यत्रानिबद्धोऽपीक्षेत शृणुयाद्वापि किंचन ।
दृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥७६॥

यदि कोई मनुष्य साक्षी नहीं बनाया गया है, पर उससे यदि (न्यायसभामें) कुछ पूछा जाता है तो वह जो कुछ देखा सुना हो सब सच-सच कह दे ।

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्बह्वयः शुच्योऽपि न स्त्रियः ।
स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येऽपि ये वृताः ॥७७॥

एक भी निर्लोभी पुरुष साक्षी हो सकता है, परन्तु बहुत स्त्रियां पवित्र होनेपर भी बुद्धिकी चपलताके कारण साक्षी नहीं हो सकतीं । और अन्य मनुष्य भी जो दोषोंसे घिरे हैं, साक्षीके योग्य नहीं होते ।

स्वभावेनैव यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥७८॥

साक्षी भयादिसे रहित होकर स्वाभाविक रीतिसे जो कुछ कहे, वह

व्यवहारके निर्णयमें स्वीकार करने योग्य है, इसके विरुद्ध अस्वाभाविक रीतिसे साक्षी द्वारा जो कुछ कहा जाय वह न्यायके लिये अग्राह्य है ।

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसंनिधौ ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिना तेन सान्त्वयन् ॥७९॥

न्यायकर्ता सभामें वादी प्रतिवादीके सम्मुख, उपस्थित साक्षियोंको इस प्रकारसे सान्त्वना देते हुए प्रश्न करे ।

यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिंश्चेष्टितं मिथः ।
तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥८०॥

इन दोनों वादी प्रतिवादियोंके बीच इस विषयमें जो कुछ व्यवहार हुआ तुम जानते हो, सब सच सच कहो, क्योंकि इसमें तुम लोगोंकी गवाही है ।

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ।
इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥८१॥

साक्षी साक्ष्यमें सच बोलकर अनेक उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है। यहां भी अति उत्तम यश पाता है, क्योंकि सत्य वाणीका आदर ब्रह्मा भी करते हैं ।

साक्ष्येऽनृतं वदन्पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् ।
विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् ॥८२॥

जो गवाह गवाही देते समय झूठ बोलता है वह सौ जन्मतक वरुणपाशसे बद्ध होकर विवश बहुत कष्ट पाता है । इसलिये गवाहको सच बोलना चाहिये ।

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥८३॥

सच बोलनेसे साक्षी पवित्र हो जाता है । सत्यसे धर्मकी

वृद्धि होती है। इसलिये सब वर्णोंके साक्षियोंको सत्य ही बोलना चाहिये।

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥८४॥

आत्मा ही अपने कर्मोंका साक्षी है, आत्मा ही अपनी गति है, इसलिये मनुष्योंके बीच अपने उत्तम साक्षी आत्माका मिथ्याभाषणसे अपमान मत करो।

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥८५॥

पाप करनेवाले मनमें समझते हैं कि हमारे पापोंको कोई नहीं देखता, परन्तु देवता और उनके अन्तरात्मा उन पापोंको देखते रहते हैं।

द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्काग्नियमानिलाः ।
रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥८६॥

आकाश, भूमि, जल, हृदय, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम, वायु, रात्रि, दोनों सन्ध्याएं और धर्म, ये सब प्राणियोंके सब कर्म जानते हैं।

देवब्राह्मणसांनिध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् ।
उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ॥८७॥

पूर्वाह्णमें न्यायकर्त्ता पवित्र होकर देवता और ब्राह्मणोंके समीप उत्तर या पूर्वकी ओर मुंह किये हुए द्विजोंसे सच सच गवाही देनेको कहे।

ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥८८॥

ब्राह्मण साक्षीसे केवल इतना कहे कि "कहो", क्षत्रियसे कहे कि "सत्य कहो", वैश्यसे गौ, बीज और सोना चुरानेके पापकी शपथ करावे, और शूद्रसे सब पापोंकी शपथ कराकर साक्ष्य देनेको कहे।

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः।
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ॥८९॥

ब्रह्मघाती और स्त्री तथा बालकोंके वध करनेवालेको और मित्र-द्रोही तथा कृतघ्नको जो जो लोक ( अर्थात् नरक ) प्राप्त होते हैं, वे सब झूठी गवाही देनेवालेको प्राप्त होते हैं।

जन्मप्रभृति यत्किंचित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम्।
तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥९०॥

हे सज्जन, यदि तुम अन्यथा बोलोगे तो जन्मसे आजतक तुमने जो कुछ धर्म किया है वह सब कुत्तोंको मिलेगा।

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥९१॥

हे सौम्य, तुम जो अपनेको अकेला मानते हो, यह ठीक नहीं; क्योंकि पुण्य पापका देखनेवाला यह ( परमात्मा ) मुनि सदा तुम्हारे हृदयमें अवस्थित है।

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गङ्गां मा कुरून्गमः ॥९२॥

तुम्हारे हृदयमें जो ( यह सबका संयम करनेवाला ) यम, ( दंडधारी ) वैवस्वत और ( तेजोरूप ) देव बैठा हुआ है, उसके साथ यदि तुम्हारा विवाद नहीं है तो गंगा या कुरुक्षेत्र मत जाओ ( अर्थात् सच बोलनेवालेको पाप दूर करनेके लिये किसी तीर्थमें जानेकी जरूरत नहीं है )।

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ।
अन्धः शत्रुकुलं गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥९३॥

जो झूठी गवाही देता है, वह जन्मान्तरमें अन्धा, वस्त्रविहीन होनेके कारण नंगा और अन्न जल न मिलनेसे भूखा प्यासा होकर हाथमें खप्पड़ ले भीख मांगनेके लिये शत्रुके यहाँ जाता है।

अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् ।
यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन्धर्मनिश्चये ॥९४॥

पूछनेपर जो मनुष्य धर्मके निर्णयमें झूठ बोलता है, वह पापी नीचा मुंह किये महाघोर अन्धकार नरकमें गिरता है।

अन्धो मत्स्यानिवाश्नाति स नरः कण्टकैः सह ।
यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ॥९५॥

जो मनुष्य सभामें जाकर जानी हुई बातको छिपाता है और जो आंखसे देखी नहीं वह कहता है, वह अन्धेकी भांति कांटोंसहित मछलियां खाता है। (अभिप्राय यह कि जो सुखकी इच्छासे पाप करता है, वह पीछे दुःख भोगता है)।

यस्य विद्वान्हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते ।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥९६॥

जिस विद्वान्के बोलते समय उसका अन्तर्यामी कोई शंका नहीं करता (अर्थात् जो निःशंक होकर केवल सत्य ही कहता है) देवता संसारमें उससे बढ़कर दूसरेको श्रेष्ठ नहीं जानते।

यावतो बान्धवान्यस्मिन्हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ।
तावतः संख्यया तस्मिञ्छृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥९७॥

हे सौम्य, झूठी साक्ष्य देनेसे साक्षी किस व्यवहारमें कितने बांधवोंकी हत्या कर डालता है उसको क्रमसे गिनते और सुनते चलो।

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥९८॥

पशुओंके विषयमें झूठ बोलनेसे पांच बान्धवोंको, गौके विषयमें झूठ बोलनेसे दस बान्धवोंको, घोड़ेके विषयमें झूठ बोलनेसे सौ बान्धवोंको और मनुष्यके विषयमें झूठ बोलनेसे एक हजार बान्धवों को मारनेके पापका भागी वह साक्षी होता है ।

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥९९॥

सुवर्णके लिये झूठ बोलनेसे जात अजात संततिकी हत्याका फल पाता है । भूमिके सम्बन्धमें झूठ बोलनेसे सब प्राणियोंको मारनेका पाप उसपर चढ़ता है, इसलिये भूमिके सम्बन्धमें कभी झूठ मत बोलो ।

अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने ।
अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥१००॥

तालाब कुँएसे जल लेनेके सम्बन्धमें, स्त्रियोंके भोगके विषयमें, मैथुनके विषयमें, मोती आदि रत्नों तथा बहुमूल्य पत्थरोंके विषयमें झूठ बोलनेसे मिथ्यावादीको वह पाप होता है, जो भूमिके सम्बन्धमें झूठ बोलनेसे होता है।

एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे ।
यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद ॥१०१॥

झूठ बोलनेमें पूर्वोक्त दोषोंको भली भांति जानकर तुमने जैसा देखा या सुना हो, सब सच-सच कहो ।

गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुकुशीलवान् ।
प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव विप्राञ्शूद्रवदाचरेत् ॥१०२॥

दूध घी बेचनेकी इच्छासे गौ पोसनेवाले, वाणिज्य करनेवाले, बांसकी टोकरी आदि बनाकर बेचनेवाले, नाचने गानेवाले, सेवावृत्ति-वाले और सूदके पैसेसे जीनेवाले ब्राह्मण, इनकी गवाही लेते समय न्यायकर्ता इनके साथ शूद्रकासा बर्ताव करे ।

तद्वदन्धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः ।

न स्वर्गाच्च्यवते लोकाद्दैवीं वाचं वदन्ति ताम् ॥१०३॥

सच्ची बातको जानता हुआ भी जो मनुष्य धर्मके लिये झूठ बोलता है वह स्वर्गसे वञ्चित नहीं होता । उस वाणीको दैवी वाणी कहते हैं ।

शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तौ भवेद्वधः ।

तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥१०४॥

शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणका जहां सत्य वचन बोलनेसे वध होता है, वहां झूठ बोलना ही उचित है । क्योंकि सत्यसे वही असत्य श्रेष्ठ है ।

वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् ।

अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥१०५॥

( इस प्रकार धर्मार्थ असत्य-भाषण जिन्होंने किया हो ) वे उस असत्यजनित पापसे सर्वथा उद्धार पानेके लिये उन मंत्रोंसे जिनकी देवता वाणी है, सरस्वतीका यजन करें ।

कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद्घृतमग्नौ यथाविधि ।

उदित्यृचा वा वारुण्या तृचेनाब्दैवतेन वा ॥१०६॥

अथवा "यद्देवा देवहेडनम्" आदि यजुर्वेदीय कूष्माण्डमंत्रोंसे यथाविधि अग्निमें घृतकी आहुति दे । किंवा "उदुत्तमं वरुणपाशम्" इस वरुणदैवत मन्त्रसे अथवा "आपो हिष्ठाः" इत्यादि जलदेवताकी तीन ऋचाओंसे हवन करे ।

त्रिपक्षाद् ब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोऽगदः ।
तदृणं प्राप्नुयात्सर्वं दशबन्धं च सर्वतः ॥१०७॥

यदि नीरोग साक्षी ऋणादि व्यवहारमें तीन पक्षके भीतर साक्ष्य न दे तो उसीसे सब ऋण महाजनको दिलाना चाहिये और वह साक्षी संपूर्ण ऋणका दसवां हिस्सा दंडस्वरूप राजाको भी दे ।

यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः ।
रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च सः ॥१०८॥

जिस साक्षीको साक्ष्य देनेपर एक सप्ताहके भीतर कोई रोग हो, उसका घर जल जाय अथवा उसके किसी स्वजनकी मृत्यु हो, तो भी धनीका ऋण और राजाका दण्ड उसे देना होगा ।

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः ।
अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनापि लम्भयेत् ॥१०९॥

परस्पर विवाद करते हुए वादी प्रतिवादियोंके बीच यदि साक्षी न हों और सत्य बातका पता न लगे तो राजा उनसे शपथ कराकर सत्यका निर्णय करे ।

महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः कृताः ।
वसिष्ठश्चापि शपथं शेपे पैजवने नृपे ॥११०॥

महर्षि और देवताओंने संदिग्ध कार्यके निर्णयार्थ शपथ खायी थी वसिष्ठने भी मिथ्या दोष लगाये जानेपर अपनी शुद्धिके लिये पिजवन राजाके पुत्रके सामने शपथ की थी ।

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ।
वृथा हि शपथं कुर्वन्प्रेत्य चेह च नश्यति ॥१११॥

बुद्धिमान मनुष्य थोड़ीसी बातके लिये वृथा शपथ नहीं करता, क्योंकि वृथा शपथ करनेवालेके इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं ।

कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने ।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥११२॥

स्त्रियोंके साथ रहस्यभाषणमें, विवाहकी बातचीतमें, गौओंके लिये घास भूसा लेनेमें, होमके लिये लकड़ी लानेमें और ब्राह्मणोंपर विपत्ति आनेपर शपथ करे तो उसका पाप नहीं होता ।

सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ।
गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥११३॥

ब्राह्मणसे सत्यकी शपथ करावे; क्षत्रियसे वाहन तथा शस्त्रकी, वैश्यसे गौ, अन्न और धनकी; और शूद्रसे सब पाप लगनेकी शपथ करवावे ।

अग्निं वाहयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत् ।
पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् ॥११४॥

अथवा उससे आगका तपाया लोहेका गोला शास्त्रोक्त विधिसे उठवावे, या पानीमें गोता लगवावे, या बेटे और स्त्रीके मस्तकपर अलग अलग हाथ रखवावे ।

यमिद्धो न दहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ।
न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः ॥११५॥

जिसको वह दहकती हुई आग नहीं जलाती, पानी ऊपर नहीं उठाता, और जिसे कोई बड़ी पीड़ा नहीं होती, उसे शपथमें पवित्र समझना चाहिये ।

वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा यवीयसा ।
नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पशः ॥११६॥

पूर्वकालमें वैमात्रेय छोटे भाईसे यह अभिशाप लगाये जानेपर कि तुम ब्राह्मण नहीं हो शूद्रसे उत्पन्न हुए हो, वत्सऋषिने शपथके

लिये अग्निमें प्रवेश किया। संसारके शुभाशुभ कर्मकी परीक्षक अग्निने सत्यके कारण उसका एक रोम भी न जलाया।

यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत्।
तत्तत्कार्यं निवर्तेत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ॥११७॥

जिस-जिस व्यवहारमें यह निश्चय हो जाय कि साक्षियोंने झूठी गवाही दी, उस उस व्यवहारका फिरसे विचार करे; क्योंकि वह पहले-का किया विचार न कियेके बराबर है।

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥११८॥

लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और भोलेपनसे जो गवाही दी जाती है, वह झूठी होती है।

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत्।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥११९॥

इन पूर्वोक्त कहे कारणोंमें किसी कारणसे जो कोई झूठी गवाही दे, उसको किस अवस्थामें क्या दण्ड देना चाहिये, यह क्रमसे कहते हैं।

लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम्।
भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥१२०॥

लोभसे झूठी गवाही देनेपर एक हजार पण* मोहसे झूठ बोलने-पर प्रथम साहस* संज्ञक, भयसे झूठ बोलनेपर दो मध्यम साहस, और मित्रतासे झूठी गवाही देनेपर प्रथम साहसका चौगुना दण्ड है।

कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम्।
अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ॥१२१॥

---

* पण और साहस कितनेका होता है, यह इस अध्यायके १३६ वें और १३८ वें श्लोकमें लिखा है।

कामवश झूठी गवाही देनेसे प्रथम साहसका दस गुना, क्रोधसे झूठ बोलनेपर मध्यम साहसका तिगुना, अज्ञानसे दो सौ पण और मूर्खताके कारण असत्य बोलनेसे एक सौ पण दण्ड करना चाहिये।

एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डान्मनीषिभिः।
धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥१२२॥

धर्मकी रक्षा और अधर्मके नियमनके लिये कूटसाक्ष्य (झूठी गवाही) में ये पूर्वके मुनियोंद्वारा निर्दिष्ट दण्ड बताये गये।

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणांस्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः।
प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥१२३॥

झूठी गवाही देनेवाले क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको (पूर्वोक्त प्रकारसे) दण्ड देकर देशसे निकाल दे और ब्राह्मणको केवल देशसे निकाल दे।

दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।
त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥१२४॥

स्वायम्भुव मनुने दण्डके जो दस स्थान कहे हैं वे (क्षत्रियादि) तीन वर्णोंके लिये हैं (—ब्राह्मणके लिये नहीं), ब्राह्मणको राजा देशसे निकाल भर दे।

उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम्।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥१२५॥

लिङ्ग, पेट, जीभ, दोनों हाथ, दोनों पैर, आंख, कान, नाक, देह और धन, ये दस स्थान दण्डके हैं।

अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः।
सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ॥१२६॥

अपराधीका इच्छापूर्वक बारबार अपराध करना, अपराधका स्थान और समय भलीभांति जानकर तथा अपराधीकी दैहिक, साम्पत्तिक

सामर्थ्य, और अपराधका हल्का या भारी होना यह सब यथार्थ रूपसे देखकर अपराधीको दण्ड देनेकी व्यवस्था करे।

अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम्।
अस्वर्ग्यं च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥१२७॥

धर्मविरुद्ध दण्ड देनेसे संसारमें यश और कीर्तिका नाश होता है और मरनेपर स्वर्ग भी नहीं मिलता। इसलिये उसका त्याग करे।

अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥१२८॥

दण्ड न देनेयोग्य पुरुषोंको दण्ड देने और दण्ड देनेयोग्य पुरुषों-को दण्ड न देनेसे राजाका भारी अयश होता है और मरनेपर वह नरकगामी होता है।

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीयं धनदण्डं तु वधदण्डमतः परम् ॥१२९॥

राजाको चाहिये कि अपराधीको पहले वाग्दण्ड दे ( अर्थात् उसे डांटे ), उसके बाद उसे धिक्कारे, ( उसपर भी वह अपराध करे तो ) फिर उसे धन-दण्ड दे, तत्पश्चात् शारीरिक दण्ड दे।

वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात्।
तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुञ्जीत चतुष्टयम् ॥१३०॥

अङ्गच्छेदनादि दण्ड देनेपर भी यदि उन अपराधियोंका निग्रह न कर सके तो उनपर पूर्वोक्त चारों दण्डोंका प्रयोग करे।

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि॥
ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥१३१॥

तांबा, चांदी और सोना इनकी ( पणादि ) जो संज्ञाएं लोकव्यव-हार ( क्रय-विक्रयादि ) के लिये संसारमें प्रसिद्ध हैं, उन्हें ( दण्डादिके उपयोगार्थ ) यहां पूर्णतः कहते हैं।

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥१३२॥

झरोखेके भीतर पड़नेवाली सूर्यकी किरणोंमें जो छोटे छोटे धूलिकण दिखायी देते हैं वैसा एक धूलिकण मान-परिमाणमें प्रथम है और उसे त्रसरेणु कहते हैं।

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ।
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥१३३॥

आठ त्रसरेणुओंकी एक लिक्षा, उन तीन लिक्षाओंका एक राजसर्षप, और तीन राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप होता है।

सर्षपाः षट् यवो मध्यस्त्रियवं त्वेककृष्णलम् ।
पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥१३४॥

छः सर्षपोंका एक मझोला जब, वैसे तीन जवोंकी एक रत्ती और पांच रत्तियोंका एक मासा तथा १६ मासेका एक सुवर्ण ( तोला ) होता है।

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥१३५॥

चार सुवर्णोंका एक पल, दस पलका एक धरण और वजनमें दो रत्तीभर चांदीका एक रौप्य माषक जानना।

ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव राजतः ।
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥१३६॥

सोलह रौप्य माषकोंका एक धरण अर्थात् रौप्य पुराण होता है। एक कर्षभर तांबेको कार्षापण या पण कहते हैं। ( चार कर्षका एक पल होता है। )

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ।
चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥१३७॥

दस रौप्य धरणका एक राजत शतमान और चार सुवर्णका एक निष्क होता है ।

पणानां द्वे शते सार्धे प्रथमः साहसः स्मृतः ।
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेव चोत्तमः ॥१३८॥

ढाई सौ पणका प्रथम साहस, पाँच सौ पणका मध्यम साहस और एक हजार पणका उत्तम साहस होता है ।

ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति ।
अपह्नवे तद्द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् ॥१३९॥

( विचार-सभामें ) ऋण देनेकी प्रतिज्ञा करनेपर राजा उसे उस ऋणपर प्रतिशत ५ पण दण्ड करे, और ( सभामें भी ) ऋण स्वीकार न करे तो दुगुना अर्थात् १० पण सैकड़े पीछे दण्ड करे ।

वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्धिनीम् ।
अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्वार्धुषिकः शते ॥१४०॥

वशिष्ठने धन बढ़ानेके निमित्त जितना व्याज लेनेको कहा है, व्याजपर जीनेवाला उतना ही व्याज ले । अर्थात् महीनेमें १०० का अस्सीवां भाग १।) सूद ले ।

द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ।
द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्बिषी ॥१४१॥

अथवा साधुओंके धर्मका स्मरण रखनेवाला प्रति सैकड़ा दो पण मासिक ( व्याज ) ले । क्योंकि दो पणतक मासिक व्याज लेनेवाला पापभागी नहीं होता ।

द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च शतं समम् ।
मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥१४२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंसे क्रमसे दो, तीन, चार और पाँच पण प्रति सैकड़े मासिक व्याज ले ।

न त्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ।
न चाधेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः ॥१४३॥

यदि कोई खेत आदि उपकारी वस्तु बन्धक रख महाजनसे रुपया कर्ज ले तो महाजनको अलग ब्याज न मिलकर खेतकी उपज ही ब्याजमें मिलेगी। बहुत समय बीत जानेपर भी गिरवीकी चीज न दूसरेको दी जा सकती है और न उसे साहुकार बेच सकता है।

न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत् ।
मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोऽन्यथा भवेत् ॥१४४॥

धनी किसीके गिरवी रखे हुए भूषण-वस्त्रका बलपूर्वक उपभोग न करे, यदि करे तो सूदसे बाज आवे। बन्धककी चीज खराब होनेपर चीजवालेको उचित मूल्य देकर राजी करे, नहीं तो वह गिरवीका चोर समझा जायगा।

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ।
अवहार्यौ भवेतां तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥१४५॥

गिरवी और उधार दी हुई चीज बहुत काल बीत जानेपर भी चीजवाला जब मांगे, तभी उसे पानेका अधिकारी है।

संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन ।
धेनुरुष्ट्रो वहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥१४६॥

गाय, ऊँट, घोड़े और हल जोतनेके बैल आदि पशु स्वामीकी खुशीसे किसीके द्वारा भोगे जानेपर भी स्वामीका स्वत्व उनपर सदा बना रहता है।

यत्किंचिद्दश वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्ष्यते धनी ।
भुज्यमानं परैस्तूष्णीं न स तल्लब्धुमर्हति ॥१४७॥

यदि चीजका मालिक दूसरेसे भोगी जाती हुई अपनी चीजको

दस वर्षसे देखता आवे और कुछ न बोले तो उस चीजको पानेका वह हकदार नहीं रहता।

अजडश्चेदपोगण्डो विषये चास्य भुज्यते।
भग्नं तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्द्रव्यमर्हति ॥१४८॥

यदि वह जड़ न हो और १६ वर्षसे कम उम्रवाला भी न हो तो उसकी आंखोंके सामने यदि उसका धन दूसरा भोगे तो वह धन भोगनेवालेका होता है। धनीका अधिकार उस धनपर नहीं रहता।

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः।
राजस्वं श्रोत्रियस्वं च न भोगेन प्रणश्यति ॥१४९॥

गिरवी, गांवकी सीमा, बालकका धन, थाती, उपनिधि अर्थात् किसी बर्तनमें रखा हुआ गुप्त धन, दासी, राजस्व और वेदाध्यायी ब्राह्मणका धन किसीके द्वारा भोगा जानेपर भी धनीका स्वत्व नष्ट नहीं होता।

यः स्वामिनाननुज्ञातमाधिं भुङ्क्तेऽविचक्षणः।
तेनार्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ॥१५०॥

जो मूर्ख गिरवीकी चीजको उसके स्वामीकी आज्ञाके बिना भोगता है, वह उस भोगके बदले कर्जदारको आधा ब्याज छोड़ दे।

कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहृता।
धान्ये सदे लवे वाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम् ॥१५१॥

एक साथ सूद और मूल लेनेसे मूलधनके दूनेसे अधिक सूद नहीं दिया जा सकता। अनाज, पेड़ोंके फल, ऊन और बैल, घोड़े आदि कर्ज लेनेपर उनके दामके पांच गुनेसे ज्यादा ब्याज लेना जायज नहीं है।

कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिद्ध्यति।
कुसीदपथमाहुस्तं पञ्चकं शतमर्हति ॥१५२॥

जिस दरसे व्याज लेना उचित है उससे अधिक न लेना चाहिये । अधिक व्याज लेनेको कुसीद कहते हैं। प्रति शत पांचसे अधिक व्याज नहीं लिया जा सकता ।

**नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत् ।**
**चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या ॥१५३॥**

अतिवार्षिक व्याज न लेना चाहिये ( महीने दो महीने या तीन महीनेमें व्याज हिसाब करके लेनेका नियम करके वह वर्षके भीतर ले लेना चाहिये, वर्ष बीत चुकनेपर अधिक व्याज चढ़ाकर न लेना चाहिये ) पहलेसे न देखा व्याज जैसे व्याजपर और व्याज—सूद दर सूद ( चक्रवृद्धि ), मासिक नियम न करके कुछ दिनोंमें व्याज बढ़ा लेना ( कालवृद्धि ) मेहनत मजूरीके रूपमें व्याज लेना ( कायिक ) और कष्ट देकर व्याज बढ़वा लेना ( कारित )—ऐसा व्याज न लेना चाहिये ।

**ऋणं दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत्पुनः क्रियाम् ।**
**स दत्त्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥१५४॥**

जो ऋण चुकानेमें असमर्थ होकर फिरसे कागज लिख देना चाहे तो पहलेका सब व्याज धनीको देकर कागज बदल दे ।

**अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ।**
**यावती संभवेद्वृद्धिस्तावतीं दातुमर्हति ॥१५५॥**

यदि व्याजका द्रव्य देनेमें उस समय समर्थ न हो तो जितना व्याज हुआ हो उतना मूलमें जोड़कर कागज बदल दे ।

**चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः ।**
**अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥१५६॥**

'भाड़ेकी गाड़ी चलानेवाला मनुष्य किसीको अमुक स्थानतक पहुंचा देनेकी बात करे और न पहुंचावे अथवा किसीको अमुक अवधिके

लिये गाड़ी दे और उससे पहले ही उसका काम रोक दे तो गाड़ीवाला कुछ भी पानेका अधिकारी नहीं होता।

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति ॥१५७॥

कितनी दूर, कितने समयमें जानेसे कितना भाड़ा मिलना चाहिये इस विषयको जाननेवाले जलस्थल-वाहनोंके कुशल पुरुष जो भाड़ा नियत करते हैं, वही ठीक माना जाता है।

यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः ।
अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वधनादृणम् ॥१५८॥

जो मनुष्य जिस कर्जदारका प्रतिभू ( जामिन ) हो और कर्जदारको सभामें हाजिर न कर सके उसे अपने धनसे धनीका ऋण चुकाना होगा।

प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ।
दण्डशुल्कावशेषं च न पुत्रो दातुमर्हति ॥१५९॥

प्रातिभाव्य ( प्रतिभूके नाते जो दण्ड देना पड़े ), वृथादान ( नट भांड़ आदिको जो कुछ देना हो ), आक्षिक ( जूएके संबन्धका ), सौरिक ( मद्यसंबन्धी ), अपराध-विशेषका दण्ड, और कर विशेषका अवशेष, इन सब देनोंका ( देनदारके मरनेपर उसका ) पुत्र देनदार नहीं होता।

दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचोदितः ।
दानप्रातिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत् ॥१६०॥

दर्शन-प्रतिभू (कर्जदारको सभामें हाजिर करनेकी जमानत करनेवाले) के सम्बन्धमें उक्त नियम हुआ। परन्तु दान-प्रतिभू ( ऋण ही दिला देनेकी जमानत करनेवाले ) के सम्बन्धमें यह नियम है कि उसके मरनेपर उसके पुत्रसे वह ऋण दिलाया जाय।

अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम् ।
पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत्केन हेतुना ॥१६१॥

जो दान-प्रतिभू नहीं है, पर जिसने असामीसे उसका मूल ऋण शोधने लायक द्रव्य लेकर यह प्रतिभूत्व किया है यह जानकर जो ऋण असामीको दिया गया वह उस प्रतिभूके मरनेपर किस प्रकारसे प्राप्त किया जाय ?

निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलंधनः ।
स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इति स्थितिः ॥१६२॥

यदि ऋणीसे प्रतिभू ( जामिन ) को इतना धन मिला हो कि वह उसके ऋणीका ऋण शोध सके तो ( ऐसे प्रतिभूके मरनेपर ) उसका पुत्र अपने धनसे वह ऋण शोध दे, यही शास्त्रकी मर्यादा है ।

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ।
असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्ध्यति ॥१६३॥

मतवाला, पागल, शोकार्त, रोगग्रस्त, सेवक, बालक और वृद्ध, इनके साथ उनके घरवालेकी सम्मतिके बिना जो व्यवहार हो वह सिद्ध नहीं होता ।

सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता ।
बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात् ॥१६४॥

बात पक्की होनेपर भी यदि धर्मशास्त्र और व्यवहारके विरुद्ध हो तो वह सत्य नहीं होती ।

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ।
यत्र वाप्युपधिं पश्येत्तत्सर्वं विनिवर्तयेत् ॥१६५॥

छलसे कोई चीज बन्धक रखी जाय, या बेची जाय, दान दी जाय या ली जाय, अथवा कपटसे कोई व्यवहार किया हो, तो ऐसा सब व्यवहार राजा रद्द कर दे ।

ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतो व्ययः ।
दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः ॥१६६॥

एक साथ रहनेवाले कुटुम्बके खर्चके लिये ऋण लेनेवाला यदि मर जाय तो विभक्त होनेपर भी बान्धवोंको अपने-अपने धनसे ऋण चुका देना चाहिये ।

कुटुम्बार्थेऽध्यधीनोऽपि व्यवहारं यमाचरेत् ।
स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत् ॥१६७॥

अधीन मनुष्य भी यदि स्वामीके कुटुम्बके लिये ऋण ले तो उसका स्वामी देशमें हो या विदेशमें, अपनेको उस ऋणका देनदार समझे ।

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम् ।
सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत् ॥१६८॥

बलपूर्वक जो दिया जाय, भोग किया जाय, लिखवाया जाय, और सभी काम जो बलपूर्वक किये जांय, वे नहीं करनेके बराबर हैं— ऐसा मनुजीने कहा है ।

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ।
चत्वारस्तूपचीयन्ते विप्र आढ्यो वणिङ् नृपः ॥१६९॥

साक्षी, प्रतिभू ( जामिन ) और कुल ( स्वजन ) ये तीन परार्थसे क्लेश उठाते हैं और ब्राह्मण, धनी, वणिक् और राजा ये चार परार्थसे वृद्धि पाते हैं ।

अनादेयं नाददीत परिक्षीणोऽपि पार्थिवः ।
न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ॥१७०॥

निर्धन होनेपर भी राजा न लेनेयोग्य वस्तुको न ले, और समृद्ध होनेपर भी लेनेयोग्य छोटीसी वस्तु भी न छोड़े ।

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ।
दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति ॥१७१॥

न लेनेयोग्य वस्तुके लेनेसे, और लेनेयोग्य वस्तुके न लेनेसे राजाकी दुर्बलता प्रकट होती है, उसके लोक-परलोक दोनों नष्ट होते हैं ।

स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानां च रक्षणात् ।

बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्धते ॥१७२॥

न्यायपूर्वक धन लेनेसे, स्वजातियोंके साथ सम्बन्ध रखनेसे, और दुर्बलोंकी रक्षा करनेसे राजाका बल बढ़ता है और इहलोक परलोक सुधरते हैं ।

तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ।

वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥१७३॥

इसलिये यमके सदृश राजाको अपना प्रिय-अप्रिय त्यागकर जितक्रोध और जितेन्द्रिय होकर यमकी समवृत्तिसे रहना चाहिये ।

यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ।

अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥१७४॥

जो राजा मोहसे अधर्मपूर्वक कार्य करता है, उस दुरात्माको शत्रुगण शीघ्र ही अपने वशमें कर लेते हैं ।

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान्धर्मेण पश्यति ।

प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥१७५॥

जो राजा काम-क्रोधको वशमें करके धर्मसे सब कामोंको देखता है, उसके पीछे प्रजा भी उसी प्रकार चलती है जैसे नदियां समुद्रके पीछे ।

यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृप ।

स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥१७६॥

जो ऋणी ( अपनेको राजाका प्रियपात्र समझकर ) अपनी इच्छासे अपने उस महाजनकी राजासे शिकायत करदे जो महाजन

उससे अपना पावना अपने ढंगसे वसूल कर रहा है, उस ऋणीको उसके ऋणका चौथा हिस्सा दण्ड करे और धनीका धन उससे दिला दे।

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधमर्णिकः।
समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः ॥१७७॥

ऋणी यदि महाजनका सजातीय या नीच जातिका हो तो काम करके भी ऋण चुका दे सकता है। ऋणी यदि उत्तम जातिका हो तो वह हीन जातिके महाजनकी सेवा न करके थोड़ा-थोड़ा देकर ऋण चुका दे।

अनेन विधिना राजा मिथोविवदतां नृणाम्।
साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥१७८॥

राजा परस्पर झगड़ते हुए पुरुषोंका इस प्रकार साक्षी और प्रमाणोंके द्वारा व्यवहारका निर्णय कर निपटारा करे।

कुलजे वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि।
महापक्षे धनिन्यार्ये निक्षेपं निक्षिपेद्बुधः ॥१७९॥

कुलीन, सच्चरित्र, धर्मज्ञ, सत्यवादी, बहुकुटुम्बी, धनवान् और सरल स्वभाववालेके पास बुद्धिमान पुरुष धन जमा करे।

यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः।
स तथैव ग्रहीतव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥१८०॥

जो मनुष्य जिस प्रकार जिसके हाथमें जो धन सौंपे, वह उसी प्रकार उससे ले; क्योंकि जैसे देना वैसे लेना, यही नीति है।

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति।
स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसंनिधौ ॥१८१॥

धरोहर धरनेवाला धरोहर मांगे और महाजन न दे तो न्यायकर्ता धरोहर धरनेवालेके परोक्षमें महाजनसे वह धरोहर मांगे।

साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः ।
अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्त्वतः ॥१८२॥

पहली बारकी धरोहरमें साक्षीका अभाव हो तो न्यायकर्ता अपने रूपवान नवयुवक चरोंद्वारा छलपूर्वक उसके पास सोना धरोहर रखवावे और फिर उन्हींद्वारा वह धरोहर मंगवावे।

स यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथाकृतम् ।
न तत्र विद्यते किंचिद्यत्परैरभियुज्यते ॥१८३॥

वह महाजन, यदि धरोहरकी चीज जैसी रखी हो वैसी दे दे तो न्यायकर्ताको समझना चाहिये कि धरोहरवालेने जो उसपर अपनी धरोहरकी नालिश की है वह झूठ है। अर्थात् उसने महाजनके पास कुछ धरोहर नहीं रखी है।

तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथाविधि ।
उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा ॥१८४॥

यदि राजदूतोंकी धरी हुई सोनेकी धरोहरको वह न दे तो न्यायकर्ता उस महाजनसे दोनोंकी धरोहर दिला दे, यही धर्मका निश्चय है।

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देया प्रत्यनन्तरे ।
नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ ॥१८५॥

निक्षेप ( धरोहरका प्रकट धन ) और उपनिधि* जिसकी रखी हुई हो, उसीको दे। उसके विद्यमान रहते उसके उत्तराधिकारीको न दे। क्योंकि धरोहर रखनेवाला जबतक जीता है तबतक उसपर उसीका पूरा अधिकार रहता है, किन्तु मरनेपर उसका अधिकार नष्ट हो जाता है।

* जो चीज बन्द करके मोहर छाप लगाकर रखनेके लिये दी जाय उ से उपनिधि कहते हैं।

स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे ।
न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च बन्धुभिः ॥१८६॥

जो महाजन धरोहर रखनेवाले मृत पुरुषके उत्तराधिकारीको आप ही धरोहर दे दे तो धरोहर रखनेवालेके बन्धु या राजाको उसपर वृथा अन्य वस्तुओंका अभियोग नहीं लगाना चाहिये ।

अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् ।
विचार्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत् ॥१८७॥

निश्छलभावसे प्रसन्नतापूर्वक उस धनका निश्चय करे, या उस धरोहर धरनेवालेके शील-स्वभावको जानकर सामप्रयोगसे धरोहरका सच्चा पता लगावे ।

निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने ।
समुद्रे नाप्नुयात्किंचिद्यदि तस्मान्न संहरेत् ॥१८८॥

सब धरोहरोंको प्रमाणित करनेके लिये यह विधि कही गयी, किन्तु मुहर की हुई धरोहरमेंसे कुछ न ले तो उसपर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता ।

चौरैर्हृतं जलेनोढमग्निना दग्धमेव वा ।
न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किंचन ॥१८९॥

चोर चुरा ले या बाढ़के पानीमें बह जाय, या आगमें जल जाय तो धरोहर धरनेवाला वह नहीं दे सकता, यदि उसमेंसे कुछ लिया न हो ।

निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेप्तारमेव च ।
सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः ॥१९०॥

थाती मारनेवाले और थाती न रखकर माँगनेवालेको राजा वैदिक शपथ और सामादिक उपायोंसे जांचकर सत्यासत्यका निरूपण करे ।

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ।
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ॥१९१॥

जो धरोहर रखकर नहीं देता और जो धरोहर न सौंपकर मांगता है, वे दोनों चोरके तुल्य दण्डनीय हैं या उनसे राजा उस द्रव्यके बराबर जुर्माना ले।

निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं दापयेद्दमम् ।
तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥१९२॥

धरोहर हड़पनेवालेको राजा उस धरोहरके बराबर द्रव्य दण्ड करे। वैसे ही उपनिधि हरनेवालेको भी उसीके तुल्य जुर्माना करे।

उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः ।
ससहायः स हन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः ॥१९३॥

जो धोखा देकर परायेका धन हरण करता है, राजा उसे और उसके सहायकोंको बहुत लोगोंके सामने विविधप्रकारकी दैहिक यन्त्रणा देकर मार डाले।

निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसंनिधौ ।
तावानेव स विज्ञेयो विब्रुवन्दण्डमर्हति ॥१९४॥

जिसने जिस परिमाणसे जितना धन साक्षीके सामने धरोहर रखा हो, साक्षीके कहनेपर उसे धरोहर रखनेवालेसे उतना ही मिलना चाहिये। अधिक मांगनेवाला दण्डभागी होता है।

मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा ।
मिथ एव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः ॥१९५॥

जिसने एकान्तमें धन रखनेके लिये दिया हो और धरोहर धरनेवालेने एकान्तमें उस धनको लिया हो, वह एकान्तमें ही देनेयोग्य है जिस प्रकार देना उसी प्रकार लेना।

निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनिहितस्य च ।
राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्न्यासधारिणम् ॥१९६॥

रखी हुई धरोहर और अपनी खुशीसे उपभोग करनेके लिये दी हुई वस्तुके विषयमें राजा ऐसा निर्णय करे जिसमें धरोहर धरनेवालेको दुःख न हो ।

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः ।
न तं नयेत साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥१९७॥

जो स्वामीकी अनुमतिके बिना दूसरेका माल बेचता है, वह अपनेको चोर न मानता हुआ भी चोर है । उसे किसी व्यवहारमें साक्षी न बनाना चाहिये ।

अनहार्यो भवेच्चैव सान्वयः षट्शतं दमम् ।
निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥१९८॥

परायेका धन बेचनेवाला, धनस्वामीका सम्बन्धी हो तो राजा उसपर ६०० पण दण्ड करे । यदि उससे स्वामीका कोई सम्बन्ध न हो और न उस धनसे उसका किसी प्रकारका लगाव हो तो वह चोरके समान अपराधी है । (इसलिये उसे चोरका दण्ड मिलना चाहिये ) ।

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा ।
अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥१९९॥

जो जिस धनका मालिक नहीं है, उसका दिया या बेचा हुआ धन व्यवहारकी मर्यादा जैसी है उसके विरुद्ध होनेसे न देने और न बेचनेके बराबर है ।

संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित् ।
आगमः कारणं तत्र न संभोग इति स्थितिः ॥२००॥

जहां किसी वस्तुका भोग देखा जाता हो, परन्तु उसके आगमका

कोई प्रमाण न पाया जाता हो, वहां आगम ही कारण माना जायगा, भोग नहीं। यही शास्त्रकी आज्ञा है।

विक्रयाद्यो धनं किंचिद्गृह्णीयात्कुलसंनिधौ ।
क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम् ॥२०१॥

व्यापारियोंके सामने मूल्य देकर आढ़तसे जो कुछ माल खरीदा जाता है, वह न्यायसे पानेके कारण विशुद्ध है।

अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशोधितः ।
अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम् ॥२०२॥

जिससे माल खरीदा उसका पता न लगे पर यह प्रकट हो कि खरीदारने बाजारमें ही उसे दाम देकर खरीदा है तो वह खरीदार दण्डका भागी नहीं होता। उसे बिना दण्ड दिये छोड़ देना चाहिये और जिसका वह माल है उसे वापिस दे देना चाहिये।

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति ।
न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् ॥२०३॥

कोई बनियां किसी चीजमें दूसरी चीज मिलाकर, बुरी चीजको अच्छी कहकर, दूरसे नकली चीज दिखाकर, असली दरपर या तौलमें कोई चीज कम करके नहीं बेच सकता।

अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या प्रदीयते ।
उभे त एकशुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥२०४॥

अच्छी लड़कीको दिखाकर वरका व्याह किसी दूसरी लड़कीसे करा दे तो वर उसी एक शुल्कसे दोनों लड़कियोंके साथ व्याह कर ले, यह मनुजीने कहा है।

नोन्मत्ताया न कुष्ठिन्या न च या स्पृष्टमैथुना ।
पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति ॥२०५॥

जो कन्या पगली है, कुष्ठरोगिणी है और पुरुषके साथ जिसका

समागम हो चुका है, इनका शेष पहले कहकर जो दाता कन्यादान करता है, वह दण्ड नहीं पा सकता।

ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत्।
तस्य कर्मानुरूपेण देयोंऽशः सह कर्तृभिः ॥२०६॥

यज्ञमें वरण किया हुआ ऋत्विज यदि रोगग्रस्त होनेके कारण अपना कर्म करना छोड़ दे तो अन्य ऋत्विजोंके साथ उसे कर्मके अनुसार दक्षिणाका अंश दिया जाना चाहिये।

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन्।
कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत् ॥२०७॥

पूरी दक्षिणा दे दी जानेपर यदि ऋत्विज अपने कर्मको पूरा न कर सके तो वह दक्षिणाके सब अंशको रखे, परन्तु कर्मका शेष भाग दूसरेसे पूरा करावे।

यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यङ्गदक्षिणाः।
स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥२०८॥

जिस कर्ममें जिस अङ्गकी जो दक्षिणा कही गयी है, वह ऋत्विज आप ले या सब मिलकर आपसमें बांट लें।

रथं हरेत चाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम्।
होता वापि हरेदश्वमुद्गाता चाप्यनः क्रये ॥२०९॥

किसी आधानमें अध्वर्युको रथ, ब्रह्माको और हवन करनेवालेको घोड़ा, तथा उद्गाताको शकट और क्रय लेना चाहिये।

सर्वेषामर्द्धिनो मुख्यास्तदर्धेनार्धिनोऽपरे।
तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः ॥२१०॥

सोलह ऋत्विजोंमें जो चार ऋत्विज मुख्य हैं, वे आधी दक्षिणा, द्वितीय श्रेणीके चार ऋत्विज उसकी आधी, तृतीय श्रेणीके चार उसकी तिहाई और चतुर्थ श्रेणीके चार उसकी चौथाई दक्षिणा पानेके अधिकारी होते हैं।

संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः।
अनेन विधियोगेन कर्तव्यांशप्रकल्पना ॥२११॥

जो मनुष्य एक साथ मिलकर मकान आदि बनानेका काम करते हैं, उन्हें आपसमें इसी उपर्युक्त नियमके अनुसार अंशका निर्णय करना चाहिये।

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम्।
पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥२१२॥

यदि कोई किसी याचकके मांगनेपर धर्मकार्यके लिये धन दे, पीछे वह याचक उस धनको उस धर्मकार्यमें न लगावे तो वह देय नहीं होता, जिस दाताका दिया वह है उसीका होता है।

यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः।
राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥२१३॥

यदि याचक अभिमान या लोभसे उस धनको न लौटावे तो राजा उसको चोरीके पापसे उद्धार पानेके लिये एक स्वर्ण दण्ड करे।

दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानपक्रियाम् ॥२१४॥

यह दिये हुए पदार्थोंको धर्मपूर्वक समर्पित न करनेकी बात कही गयी। इसके अनन्तर वेतन न देनेका विषय कहते हैं।

भृतो नार्तो न कुर्याद्यो दर्पात्कर्म यथोदितम्।
स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ॥२१५॥

जो नौकर स्वस्थ रहनेपर भी अहङ्कारसे कहा हुआ काम नहीं करता, राजा उसे आठ कृष्णल दण्ड करे और वेतन न दे।

आर्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्यथाभाषितमादितः।
स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम् ॥२१६॥

रोगादिसे पीड़ित व्यक्ति स्वस्थ होनेपर वैसे ही अपना काम करे

जैसा कि शुरूमें उससे कहा गया था, तो वह अपना बहुत दिनोंका भी बाकी वेतन पावेगा ।

**यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ।**
**न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्मणः ॥२१७॥**

पीड़ित होनेपर यथोक्त कार्य दूसरेसे न करावे किंवा स्वस्थ होनेपर स्वयं उस कामको पूरा न करे तो जो काम शेष रह जाय उसका वेतन उसको नहीं देना चाहिये ।

**एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्मणः ।**
**अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं समयभेदिनाम् ॥२१८॥**

वेतन देने-लेनेकी सब व्यवस्था कही गयी, अब प्रतिज्ञा-भङ्ग करनेवालोंकी व्यवस्था कहता हूं ।

**यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम् ।**
**विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥२१९॥**

ग्रामदेशवासी वणिक्-समूहका जो मनुष्य सत्यकी शपथ खाकर काम करनेकी प्रतिज्ञा करे, पीछे वह लोभसे हट जाय तो राजा उसे अपने राज्यसे निकाल दे ।

**निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम् ।**
**चतुःसुवर्णान्षण्निष्कांश्छतमानं च राजतम् ॥२२०॥**

प्रतिज्ञा करके समयानुसार काम न करनेवालेको हाजतमें डालकर उससे चार सुवर्ण छः निष्क और तीन सौ बीस रत्ती चांदी वसूल करे । अपराधकी गुरुता या लघुताके अनुसार तीनों ले या जितना उचित समझे, उसे दण्ड करे ।

**एतद्दण्डविधिं कुर्याद्धार्मिकः पृथिवीपतिः ।**
**ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम् ॥२२१॥**

धार्मिक राजा गांवके रहनेवाले ब्राह्मण-जातिसमूहमें प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवालेको यह पूर्वोक्त दण्डकी व्यवस्था करे ।

क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद्यस्येहानुशयो भवेत् ।
सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत वा ॥२२२॥

कोई चीज खरीदकर या बेचकर यदि किसीको पश्चात्ताप हो तो वह उस चीजको दश दिनके भीतर सौदागरको लौटा दे या खरीदारसे वापस ले ले ।

परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत् ।
आददानो ददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥२२३॥

दस दिनके बाद खरीदी हुई चीज लौटाई नहीं जा सकती और न बिकी हुई चीज फिर वापस दी जा सकती है । दस दिनके बाद खरीदार यदि जबर्दस्ती फेरना चाहे और सौदागर बिकी हुई चीजको फिर लेना चाहे तो राजा उसपर ६०० पण दण्ड करे ।

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति ।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान् ॥२२४॥

जो पुरुष दोषवती कन्याका दोष बिना जताये उसे दान करे उसको राजा ९६ पण दण्ड करे ।

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः ।
स शतं प्राप्नुयाद्दण्डं तस्या दोषमदर्शयन् ॥२२५॥

जो कोई द्वेषसे कन्याको अकन्या अर्थात् क्षतयोनि कहकर मिथ्या दोष लगावे तो राजा उस कन्याके दोषपर कुछ विचार न कर दोष लगानेवालेपर १०० पण जुर्माना करे ।

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः ।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥२२६॥

विवाहके जितने मन्त्र हैं वे कन्याओंके ही लिये कहे गये हैं। जिसका कन्यापन पुरुषसमागमसे नष्ट हो गया है, उसके लिये नहीं; क्योंकि उनका धर्म पहले ही लुप्त हो चुका है ।

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ।
तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे ॥२२७॥

विवाहके मन्त्र यथार्थमें पत्नीत्वके कारण हैं। उन मन्त्रोंकी निष्ठा कन्याके सातवें पदमें पण्डितोंको जाननी चाहिये ।

यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानुशयो भवेत् ।
तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत् ॥२२८॥

केवल क्रय-विक्रयमें ही नहीं, दूसरे व्यवहारोंमें भी जिसको अपनी भूलपर पश्चात्ताप हो, राजा उसे इसी पूर्वोक्त नियमके अनुसार दश दिनके भीतर भूलसंशोधनका अवसर देकर धर्ममार्गमें स्थापित करे ।

पशुषु स्वामिनां चैव पालानां च व्यतिक्रमे ।
विवादं संप्रवक्ष्यामि यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥२२९॥

गाय आदि पशुओंके पालन करनेवालों और उनके स्वामियोंके बीच किसी प्रकारका व्यतिक्रम होनेपर जो विवाद उपस्थित होता है, अब उसकी सम्यक् प्रकारसे व्यवस्था कहते हैं ।

दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे ।
योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात् ॥२३०॥

चरवाहेके हाथमें सौंपे हुए पशुओंके द्वारा दिनमें कुछ गड़बड़ हो तो इसकी जवाबदेही चरवाहेको है। उससे उस विषयका सवाल करना चाहिये। रातमें चरवाहेके द्वारा पशु गृहस्थके दरवाजेपर बांधे जानेपर यदि कुछ उपद्रव करे तो यह दोष पशुके मालिकका है। कदाचित् रातमें भी पशुरक्षणका भार चरवाहेके ऊपर हो तो पशुकृत दोषका भागी वही होगा ।

गोपः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्याद्दशतो वराम् ।
गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सा स्यात्पालेऽभृते भृतिः॥२३१॥

जो गोपालक वेतनमें दूध लेना चाहे तो दस गौओंमें जो अच्छी गौ हो उसका दूध वह स्वामीकी आज्ञासे ले सकता है। वही उसका वेतन होगा।

नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् ।
हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु ॥२३२॥

यदि कोई पशु खो जाय, या कीड़ोंके काटनेसे नष्ट हो जाय, या कुत्तोंसे हत हो, या ऊंचे-नीचे स्थानमें गिरकर मर जाय, या पालकको लापरवाहीसे कहीं बिछुड़ जाय अथवा कहीं चला जाय, तो उस पशुका मूल्य जो राजा कहेगा, पशुपालकको देना होगा।

विघुष्य तु हृतं चौरैर्न पालो दातुमर्हति ।
यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥२३३॥

चोर पशुहरण कर ले जाय और पालक उसी समय शोरगुल मचाकर मालिकसे जाकर यह खबर दे दे तो वह उस पशुका मूल्य नहीं दे सकता है।

कर्णौ चर्म च वालांश्च बस्तिं स्नायुं च रोचनाम् ।
पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्कानि दर्शयेत् ॥२३४॥

पशुओंके मर जानेपर उनके कान, चमड़ा, ऊन, बस्ति, स्नायु और रोचन स्वामियोंको दे दे और उनके चिह्न सींग, खुर आदि भी दिखलावे।

अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति ।
यां प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिषं भवेत् ॥२३५॥

यदि भेड़िये भेड़ बकरीको घेर लें और पालक उनके बचानेको न

आवे, उस हालतमें भेड़िया बलपूर्वक जिस भेड़-बकरीको मारे, उसका दोषभागी पशुपालक होगा।

तासां चेदवरुद्धानां चरन्तीनांमिथो वने।
यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी ॥२३६॥

चरवाहा उन भेड़-बकरियोंको जङ्गलमें घेरकर चरा रहा हो, उस समय यदि भेड़िया कूदकर किसी भेड़ या बकरीको मार डाले तो चरवाहेका इसमें दोष नहीं।

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः।
शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥२३७॥

गांवके चारों ओर १०० धनुष* अथवा तीन बार लाठी फेंकनेसे जितनी दूरतक जा सके, उतनी जगह गोचरके लिये रख छोड़े। नगरके समीप इसकी तिगुनी भूमि गोचरके लिये रखे।

तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि।
न तत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥२३८॥

वहां बिना मेंड़के खेतका धान पशु नष्ट करें तो इसके लिये राजा पशुपालकोंको दण्ड न दे।

वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो न विलोकयेत्।
छिद्रं च वारयेत्सर्वं श्वसूकरमुखानुगम् ॥२३९॥

वहां अर्थात् गोचरभूमिके समीपवर्ती खेतकी मेंड़ इतनी ऊंची होनी चाहिये जिसके भीतरके धानको ऊंट न देख सके और उसमें ऐसे छिद्र न रहने दे जिसमें कुत्ते और सुअरका मुंह घुस सके।

पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा पुनः।
स पालः शतदण्डार्हो विपालान्वारयेत्पशून् ॥२४०॥

मार्गमें या गांवके समीप, मेंड़से घिरे हुए खेतमें पशु प्रवेश कर

---

* चार हाथका एक धनुष होता है।

धानको नष्ट करे और चरवाहा साथ रहकर भी उसे न रोके तो राजा उस पशुपालकपर १०० पण दण्ड करे। यदि चरवाहा साथमें न हो तो खेतका रक्षक पशुओंको खेतमें आनेसे रोक दे।

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादं पणमर्हति।
सर्वत्र तु सदो देयः क्षेत्रिकस्येति धारणा ॥२४१॥

इनके अतिरिक्त दूसरे खेतोंका धान पशु नष्ट करे तो पशुका स्वामी सवा पण दण्ड देनेयोग्य है। यदि पशु सारा खेत नष्ट कर दे तो नुकसानकी पूरी रकम पशुस्वामीको देनी पड़ेगी। यही न्याय है।

अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा।
सपालान्वा विपालान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत ॥२४२॥

दस दिनके भीतरकी ब्यायी गौ, चक्रशूलाङ्कित वृषभ (साँढ़) और देवताओंके निमित्त रखे हुए पशु, ये पालकसहित हों या पालकरहित, खेत चरनेपर दण्डके योग्य नहीं हैं, ऐसा मनुजीने कहा है।

क्षेत्रियस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत्।
ततोऽर्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रिकस्य तु ॥२४३॥

यदि कृषककी भूलसे फसल मारी जाय तो उसमें जितना राजाका भाग मिलता, उसका दस गुना वह किसानसे ले। किसानकी अज्ञात अवस्थामें नौकरोंके दोषसे खेतमें उपज न हो तो किसानसे पचगुना दण्ड ले।

एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्मिकः पृथिवीपतिः।
स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे ॥२४४॥

स्वामी, पशु और पालकोंके दोषमें धार्मिक राजाको ऊपर कहे नियमोंका पालन करना चाहिये।

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः।
ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु ॥२४५॥

दो गांवोंकी सीमाके निमित्त विवाद उत्पन्न होनेपर जेठ महीनेमें जब सीमाके चिह्न स्पष्ट दिखाई दें तब सीमाका निश्चय करे।

सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान्।
शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान् ॥२४६॥

वट, पीपल, पलाश, सेमर, सखुआ, ताल और खीरीवृक्ष, सीमाके चिह्नके लिये सीमापर लगाने चाहियें।

गुल्मान्वेणूंश्च विविधाञ्छमीवल्लीस्थलानि च।
शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति ॥२४७॥

सीमापर गूलरके पेड़, बांस, विविध भांतिके शमीवृक्ष, लताएं, ऊंचे टीले, सरपत और टेढ़े वृक्ष रहें तो सीमा नष्ट नहीं होती।

तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च।
सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥२४८॥

सीमाके सन्धिस्थानमें पोखर, कुंए, बावली, नहर और देवताओंके मन्दिर बनवाने चाहियें।

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत्।
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥२४९॥

संसारमें लोगोंको सीमाके ज्ञानमें भूल करते देखकर राजाको चाहिये कि और भी सीमाके अनेक गुप्त चिह्न करा दे।

अश्मनोऽस्थीनि गोवालांस्तुषान्भस्मकपालिकाः।
करीषमिष्टकाङ्गारांश्छर्करा वालुकास्तथा ॥२५०
यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्भूमिर्न भक्षयेत्।
तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥२५१॥

पत्थरके खण्ड, हड्डी, चामर, भूसी, राख, खोपड़ी, सूखे कंडे, ईंट, कोयले, कंकड़ और बालू तथा ऐसे ही अन्य पदार्थ भी जिन्हें

पृथिवी अपने रूपमें न मिला सके उन्हें सीमाके सन्धिस्थानमें गुप्त रीतिसे गड़वा दे।

एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः ।
पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥२५२॥

राजा इन उपर्युक्त चिह्नोंसे तथा पहलेका दखल, कब्जा और जलके प्रवाहको देखकर झगड़ते हुए दो गांवोंकी सीमाका निश्चय करे।

यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने ।
साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥२५३॥

चिह्नोंको देखकर भी यदि सन्देह बना रहे तो साक्षी लोगोंसे प्रमाण लेकर सीमाके विवादका निपटारा करे।

ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीम्नि साक्षिणः ।
प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥२५४॥

ग्रामवासियोंके सामने राजा साक्षियोंसे उन दोनों विवादियोंके ग्रामकी सीमाके चिह्न पूछे।

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् ।
निबध्नीयात्तथा सीमां सर्वांस्तांश्चैव नामतः ॥२५५॥

पूछे जानेपर वे साक्षी लोग सीमाके विषयमें जिस तरह जो निश्चय बतावें, राजा उसी तरह सीमाके चित्र और उन साक्षियोंके नाम स्मरणार्थ एक पत्रपर लिख ले।

शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः ।
सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते समञ्जसम् ॥२५६॥

वे साक्षी लाल वस्त्र पहन, गलेमें माला धारण कर, सिरपर मिट्टी रख, अपने-अपने पुण्योंकी शपथ करके उचित रीतिसे सीमाका निर्णय करें।

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः।
विपरीतं नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥२५७॥

वे साक्षी सत्य सत्य सीमा बतलानेपर निर्दोष होते हैं। पर सीमाके विषयमें जो मिथ्या भाषण करें, राजा उन्हें दो सौ पण दण्ड करे।

साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः।
सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयता राजसंनिधौ ॥२५८॥

साक्षियोंके अभावमें समीपवर्ती चार गांवोंके प्रधान लोग राजाके सामने आकर सीमाका निर्णय करें।

सामन्तानामभावेतु मौलान सीम्नि साक्षिणाम्।
इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् ॥२५९॥

यदि ऐसे लोगोंका भी अभाव हो तो राजा आगे कहे हुए वनमें घूमनेवाले पुरुष जो सीमाका कुछ ज्ञान रखते हों उनसे पूछे।

व्याधाञ्छाकुनिकान्गोपान्कैवर्तान्मूलखानकान्।
व्यालग्राहानुञ्छवृत्तानन्यांश्च वनचारिणः ॥२६०॥

व्याध, बहेलिये, ग्वाले, मल्लाह, जड़ी-बूटी खोजनेवाले, सँपेरे, गिरे हुए दाने चुनकर गुजर करनेवाले और जंगलमें रहनेवाले, इनसे सीमाके विषयमें पूछे।

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम्।
तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥२६१॥

पूछे जानेपर वे लोग सीमाके विषयमें जो चिह्न बतावें, उसीके अनुसार राजा धर्मपूर्वक दोनों गांवोंकी सीमा निर्दिष्ट करे।

क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च।
सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥२६२॥

खेत, कुआं, तालाब, बाग, मकान, इन सबकी सीमाका विवाद

हो तो राजा उस गांवके रहनेवाले गवाहोंसे पूछकर सीमाका निश्चय करे ।

सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् ।
सर्वे पृथक्पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥२६३॥

सीमाके लिये झगड़ते हुए पुरुषोंके ग्रामवासी गवाह झूठ बोलें तो राजा हर एकको अलग-अलग मध्यम साहस दण्ड करे ।

गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः ॥२६४॥

जो भय दिखाकर दूसरेका घर, पोखर, बाग और खेत ले ले तो राजा उसपर पांच सौ पण दण्ड करे और जाने बिना ले तो दो सौ पण दण्ड करे ।

सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् ।
प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुपकारादिति स्थितिः ॥२६५॥

साक्षी और चिह्नोंके अभावमें धर्मज्ञ राजा स्वयं दो गांवोंके बीचकी वह विवादगत भूमि उन लोगोंको दे दे जिन्हें देनेसे उपकार हो, यही शास्त्रकी स्थिति है ।

एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥२६६॥

सीमाके निर्णयमें यह सम्पूर्ण धर्म तुमसे कहा, इसके अनन्तर अब कठोर भाषणके दण्डका विधान कहते हैं ।

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।
वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति ॥२६७॥

ब्राह्मणको ( चोर-चाण्डाल इत्यादि ) कटुवचन कहनेवाले क्षत्रिय-को एक सौ पण, वैश्यको १५० या २०० पण दण्ड और शूद्रको देह-दण्ड करना चाहिये ।

पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने।
वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥२६८॥

ब्राह्मण क्षत्रियको वैसी कठोर बात कहे तो ५० पण, वैश्यको कहे तो २५ पण और शूद्रको कहे तो १२ पण दण्ड देनेयोग्य होता है।

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे।
वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत् ॥२६९॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीन वर्णोंके सजातियोंमें यदि परस्पर एक दूसरेको कटु शब्द कहें तो १२ पण, और अवाच्य वचन बोलें तो पूर्वोक्त दण्डका दुगुना दण्ड देनेयोग्य होता है।

एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन्।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः ॥२७०॥

शूद्र यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको पापी आदि कहकर गाली दे तो वह जिह्वाछेदनका दण्ड पावेगा; क्योंकि उसकी उत्पत्ति जघन्य स्थानसे है।

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः।
निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥२७१॥

यदि शूद्र द्रोहसे ब्राह्मण आदि द्विजातियोंका नाम और जाति ग्रहणपूर्वक बुरी बात कहे तो जलती हुई दस अंगुलकी लोहशलाका उसके मुँहमें डाल देनी चाहिये।

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥२७२॥

यदि शूद्र ब्राह्मणोंको अभिमानसे धर्मका उपदेश करे तो राजा उसके मुँह और कानमें खौलता हुआ तेल डलवा दे।

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च।
वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतं दमम् ॥२७३॥

किसीकी विद्या, देश, जाति और शारीरिक कार्यको घमण्डसे झूठा बतानेपर ( जैसे तुमने यह शास्त्र नहीं पढ़ा है, तुम उस देशके रहनेवाले नहीं हो, तुम्हारी यह जाति नहीं है, तुम्हारा कर्णवेध और मुण्डन आदि संस्कारकर्म नहीं हुआ है ) उसे दो सौ पण दण्ड देना पड़ेगा।

काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम्।
तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥२७४॥

जो वास्तवमें काना या लंगड़ा है या उसी तरहका अन्य अङ्ग भङ्गवाला है उसे वैसा कहकर चिढ़ानेवालेको कमसे कम एक कार्षापण दण्ड देना होगा।

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम्।
आक्षारयञ्छतं दाप्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥२७५॥

जो माता, पिता, पत्नी, भाई, बेटे और गुरुको पापी आदि कहकर निन्दा करे या गुरुको आते देख मार्गसे न हटे उसे एक सौ पण दण्ड देना होगा।

ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो विजानता।
ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः ॥२७६॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय यदि परस्परको पापी आदि कहकर गाली दें तो नीतिज्ञ राजा ब्राह्मणको प्रथम साहस और क्षत्रियको मध्यम साहस दण्ड करे।

विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिं प्रति तत्त्वतः।
छेदवर्जं प्रणयनं दण्डस्येति विनिश्चयः ॥२७७॥

वैश्य और शूद्र भी इसी प्रकार परस्परको गाली दें तो कहासुनी होनेपर पूर्वोक्त दण्डकी व्यवस्था करे ( अर्थात् वैश्य शूद्रको गाली दे तो उसे प्रथम साहस और शूद्र वैश्यको गाली दे तो उसे मध्यम

साहस दण्ड करे ), वहां शूद्रकी जीभ न काटे। ( यह कठोर दण्ड ब्राह्मण क्षत्रियोंको गाली देनेपर ही कहा गया है। ) इस दण्डका यही निश्चय जानना।

एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥२७८॥

यह कठोर भाषणकी दण्डविधि तत्वतः कही गयी। अब इसके अनन्तर ताड़न आदि दंडपारुष्यका विधान कहते हैं।

येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः।

छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ॥२७९॥

अन्त्यज अपने जिस किसी अङ्गसे द्विजको मारे, उसका वही अङ्ग काट डालना चाहिये, यह मनुजीकी आज्ञा है।

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति।

पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति ॥२८०॥

यदि द्विजको मारनेके लिये उसने हाथ उठाया हो या लठताना हो तो उसका हाथ काट लेना चाहिये, और क्रोधसे ब्राह्मणको लात मारे तो उसका पैर काट डालना चाहिये।

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः।

कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत् ॥२८१॥

जो नीचवर्ण ब्राह्मणादि उत्कृष्ट वर्णके साथ आसनपर बैठना चाहे, राजा उसकी कमर दगवाकर देशसे निकाल दे अथवा उसके चूतड़का मांस कतरवा ले।

अवनिष्ठीवतो दर्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः।

अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्धयतो गुदम् ॥२८२॥

राजा ब्राह्मणके ऊपर गर्वसे थूकनेवाले शूद्रके दोनों होंठ, पेशाब करनेवालेका लिङ्ग और अधोवायु करनेवालेका मलद्वार कटवा ले।

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन् ।
पादयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥२८३॥

जो शूद्र अभिमानवश ब्राह्मणकी चोटी, पैर, दाढ़ी, गर्दन या अण्डकोश पकड़े, राजा बिना विचारे उसके दोनों हाथ कटवा ले ।

त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः ।
मांसभेत्ता तु षण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥२८४॥

ब्राह्मण आदि द्विजातियोंके अन्तर्गत जो अपने सजातीयका चमड़ा छील डाले या लहू निकाल दे उसे १०० पण दण्ड होना चाहिये । मांसच्छेदन करनेवालेको ६ निष्क दण्ड दे और हड्डी तोड़नेवालेको देशसे निकाल दे ।

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा ।
तथातथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा ॥२८५॥

वृक्षोंमें, जिसके फल-फूल और पत्तोंका जैसा उपभोग हो, उसे नष्ट करनेपर उसीके अनुसार दण्ड देना उचित है ।

मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ।
यथायथा महद्दुःखं दण्डं कुर्यात्तथातथा ॥२८६॥

मनुष्य और पशुओंको पीड़ित करनेके लिये प्रहार करनेपर उन्हें जितना कष्ट हो, प्रहारकर्ताको उतना ही अधिक दण्ड करे ।

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ।
समुत्थानव्ययं दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥२८७॥

हाथ-पैर आदि अङ्गोंमें अधिक चोट लगने या शोणित बहनेके कारण अधिक पीड़ा होनेपर राजा उसके औषध और पथ्यपानीका कुछ खर्च प्रहार करनेवालेसे दिलावे, न देनेपर उसे पूरा दण्ड दे ।

द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञे दद्याच्च तत्समम् ॥२८८॥

जानकर या भूलसे कोई किसीकी वस्तु नष्ट करे तो उसे उसके बदलेमें दूसरी चीज देकर सन्तुष्ट करना चाहिये, और उस वस्तुका जितना मूल्य हो, उतना दण्ड भी राजाको दे ।

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च ।
मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः पुष्पमूलफलेषु च ॥२८९॥

चमड़े, चमड़ेके पात्र, लकड़ी और मिट्टीके बर्तन, फल-फूल और मूल, इनके नष्ट करनेपर उनके मूल्यका पचगुना राजाको दण्ड दे ।

यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च ।
दशातिवर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥२९०॥

रथ, सारथी और रथस्वामीके दस अपराधोंको छोड़ और अपराधोंमें दण्डका विधान किया गया है ।

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ।
अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च ॥२९१॥
छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च ।
आक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुरब्रवीत् ॥२९२॥

नाथ कट जाने, जूआ टूटने, गाड़ी अपने पथसे बाहर होने, धुरी या पहिया टूट जाने, चमड़ेका बन्धन, सवारीके गलेकी रस्सी और रासके टूटनेपर सारथी यदि चिल्लाकर कहे कि हटो, हटो, उसपर भी यदि कुछ अनिष्ट हो जाय तो उसके लिये सारथी दण्डभागी नहीं हो सकता ।

यत्रापवर्तते युग्यं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु ।
तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमम् ॥२९३॥

जहाँ गाड़ी हांकनेवालेके दोषसे गाड़ी रास्तेसे अलग होनेके कारण कुछ हानि हो तो वहाँ उसके स्वामीको २०० पण दण्ड देना होगा ।

प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति ।
युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतं शतम् ॥२९४॥

यदि गाड़ी हांकनेवाला होशियार हो तो वह २०० पण उसीको देना होगा । सारथी अयोग्य होनेसे कोई अनिष्ट घटना हो तो गाड़ीके सभी सवारोंको १००, १०० पण दण्ड देना होगा ।

स चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ।
प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः ॥२९५॥

यदि वह सारथी गौ आदि पशुओंसे या दूसरे रथसे रास्ता रुद्ध हो जानेपर भी अपने रथको न रोके और उससे किसी प्राणीकी हिंसा हो जाय तो बिना विचार किये ही उसे दण्ड देना चाहिये ।

मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्बिषं भवेत् ।
प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु ॥२९६॥

गाड़ी हाँकनेवालेकी गफलतसे यदि कोई मनुष्य गाड़ीके नीचे दबकर मर जाय तो गाड़ीवानको चोरका पाप लगता है । ( इसलिये राजा उसे चोरका दण्ड दे । ) गाय, हाथी, ऊंट और घोड़े आदि वृहत् जन्तुओंके मरनेपर उसका आधा पाप होता है । ( अतएव उसका आधा दण्ड करे । )

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दमः ।
पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु ॥२९७॥

छोटे प्राणियोंकी हिंसा होनेपर गाड़ीवानको दो सौ पण, और श्रेष्ठ हिरन तथा सुग्गा मैना आदि पक्षियोंके मरनेपर ५० पण दण्ड देना होगा ।

गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्पञ्चमाषिकः ।
माषिकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥२९८॥

गधे, बकरे, भेड़ आदिको मारनेपर गाड़ीवानको पांच मासेभर

चांदी और श्वान शूकरके मारनेपर एक मासा चांदी दण्ड देना होगा।

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः।
प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥२९९॥

स्त्री, पुत्र, नौकर, दूत और सगे भाई, ये लोग यदि कोई अपराध करें तो रस्सी या बांसकी पतली छड़ीसे ताड़ना करनेयोग्य हैं।

पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथंचन।
अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥३००॥

पीठपर प्रहार करे, सिरपर कभी प्रहार न करे। नियमविरुद्ध प्रहार करनेवाला चोरके अपराधका दण्ड पाता है।

एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः।
स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥३०१॥

यह कठोर दण्डका सम्पूर्ण विधान कहा। अब चोरकी दण्डविधि कहते हैं।

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः।
स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते ॥३०२॥

राजाको चाहिये कि चोरोंको कैद करनेमें परम यत्नवान रहे। चोरोंका निग्रह करनेसे राजाका यश और राज्य बढ़ता है।

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः।
सत्रं हि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥३०३॥

जो राजा अपनी प्रजाको अभय देता है वह सदा पूज्य होता है, क्योंकि उसका यह अभय दक्षिणावाला प्रजापालनरूपी यज्ञ सदा बढ़ता है।

सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः।
अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः ॥३०४॥

प्रजाके जान-माल और धर्मकी रक्षा करनेवाले राजाको उन सबके धर्मका छठा भाग प्राप्त होता है । वैसे ही रक्षा न करनेपर उसे प्रजाओंके अधर्मका छठा भाग होता है ।

यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति ।
तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात् ॥३०५॥

जो राजा प्रजाओंकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा करता है वह उनके पढ़ने, यज्ञ करने, दान देने और देवताओंके पूजनेके धर्मका छठा भाग पाता है ।

रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन् ।
यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥३०६॥

धर्मसे प्राणियोंकी रक्षा करके और वध्य दुष्टोंको मारकर राजा इस प्रकार मानो नित्य एक लाख दक्षिणावाले ही यज्ञ करता है ।

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ।
प्रतिभागं च दण्डं च स सद्यो नरकं व्रजेत ॥३०७॥

जो राजा प्रजागणकी रक्षा न करके उनसे अनाजका छठा हिस्सा कर, शुल्क और चुंगी आदि लेता है, वह शीघ्र नरकगामी होता है ।

अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम् ।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥३०८॥

प्रजाकी रक्षा न करे, पर उनसे कर बराबर लिया करे, ऐसे राजाको महर्षिगण सब लोगोंके समग्र पापोंका भागी कहते हैं ।

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् ।
अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् ॥३०९॥

शास्त्रकी मर्यादाको न माननेवाला, नास्तिक, वृथा दण्डादि देकर धन लेनेवाला, रक्षा न करके प्रजाओंका अंश खानेवाला राजा अधोगतिको प्राप्त होता है ।

अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः ।

निरोधनेन बन्धेन विविधेन वधेन च ॥३१०॥

राजा तीन उपायोंसे अधार्मिकोंका निग्रह करे—कारागारमें बन्द करके, बेड़ी-हथकड़ी डालकर, या विविध प्रकारके दैहिक दण्ड देकर।

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ।

द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥३११॥

द्विज जैसे यज्ञोंके द्वारा पवित्र होते हैं, वैसे राजा पापियोंको दण्ड देने और साधुओंकी रक्षा करनेसे सदा पवित्र होते हैं।

क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम् ।

बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥३१२॥

अपनी भलाई चाहनेवाला राजा, कार्यार्थी, बालक, वृद्ध और रोगी इनके द्वारा होनेवाली निन्दाको क्षमा करता जाय।

यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते ।

यस्त्वैश्वर्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥३१३॥

आर्त्तमनुष्योंके द्वारा किये आक्षेपको जो राजा सहता है वह स्वर्गमें पूजित होता है, और जो ऐश्वर्यके घमण्डमें फूलकर नहीं सहता वह नरक जाता है।

राजा स्तेनेन गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता ।

आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवंकर्मास्मि शाधि माम् ॥३१४॥

स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् ।

शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा ॥३१५॥

चोरको चाहिये कि वह चोटी खोलकर, कन्धेपर मूसल या खैरकी लाठी या दोनों ओर पैनी नोकवाली बरछी या लोहेका डंडा रखकर दौड़ता हुआ राजाके पास जाकर कहे कि मैंने चोरी की है, मुझे उचित दण्ड दीजिये।

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ॥३१६

राजाके द्वारा दण्डित होने या मुक्त होनेपर चोर चोरीके पापसे मुक्त होता है । यदि राजा चोरका शासन न करे तो चोरका पाप उसीके सिर चढ़ता है ।

अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम् ॥३१७

बालघातीका पाप उसका अन्न खानेवालेको, व्यभिचारिणी स्त्रीका पाप उसके पतिको, शिष्यका पाप गुरुको, यजमानका पाप पुरोहितको और चोरका पाप राजाको लगता है ।

राजभिः कृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा ॥३१८॥

अपराधी मनुष्य राजासे दण्ड पानेपर साधु-धर्मात्माओंकी तरह पवित्र होकर स्वर्ग जाते हैं ।

यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिद्याच्च यः प्रपाम् ।
स दण्डं प्राप्नुयान्माषं तच्च तस्मिन्समाहरेत् ॥३१९॥

जो कुएँ परकी रस्सी या पथिकोंके पानी पीनेका पात्र या घड़ा चुराता है या प्याऊको नष्ट करता है, राजा उसे एक मासा सोना दण्ड करे और जो वस्तु चुराकर ले जाय वह, या उसके बदलेमें वैसी ही दूसरी वस्तु वहां रख दे ।

धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ।
शेषेऽप्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य च तद्धनम् ॥३२०॥

दश कुम्भ* धान्यसे अधिक चुरानेपर चुरानेवालेको शारीरिक

---

* दो सौ पलका एक द्रोण और बीस द्रोणका एक कुम्भ ( घड़ा ) होता है ।

दण्ड देना चाहिये और उतनेसे कम चुरानेपर जितना चुरावे उसका ग्यारह गुना राजाको दंड दे, और धानवालेको धान वापस कर दे।

तथा धरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ।
सुवर्णरजतादीनामुत्तमानां च वाससाम् ॥३२१॥

सोना-चांदी आदि और उत्तम वस्त्रकी पूरी संख्या मालूम न होनेपर भी १०० से अधिक चुराया हो तो राजा चोरको प्राण दण्ड दे।

पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते ।
शेषे त्वेकादशगुणं मूल्याद्दण्डं प्रकल्पयेत् ॥३२२॥

गिनतीमें १ से ५० तक चुरानेपर मूल्यका ग्यारह गुना दण्ड करे और २० से १०० तक अपहरण करनेपर राजा उसे हस्तच्छेदनका दण्ड दे।

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ॥३२३॥

कुलीन पुरुषोंको विशेषकर कुलीन स्त्रियोंको और बहुमूल्य रत्नोंको जो चुरावे, राजा उसे प्राणदण्ड दे।

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।
कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥३२४॥

श्रेष्ठ पशु ( हाथी घोड़ा आदि ), शस्त्र और दवाई इनका हरण करनेपर राजा समय और कार्य देखकर दण्डकी व्यवस्था करे।

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छूरिकायाश्च भेदने ।
पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥३२५॥

ब्राह्मणकी गौओंको अपहण करने, वन्ध्या गायके नाथने और पशुओंके चुरानेपर राजा तुरन्त चोरका आधा पांव कटवा डाले।

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ।
दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥३२६॥

वेणुवैदलभाण्डानां लवणानां तथैव च ।
मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥३२७॥
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ।
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥३२८॥
अन्येषां चैवमादीनां मद्यानामोदनस्य च ।
पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः ॥३२९॥

सूत, कपास, सुरा बनानेकी द्रव्यसामग्री, गोबर, गुड़, दही, दूध, छाछ, पानी, तृण, बांसकी टोकरी आदि, नमक, मिट्टीके बर्तन, मिट्टी, राख, मछली, चिड़िया, तेल, घी, मांस, मधु ( शहद ), पशुके चमड़े, सींग आदि, मद्य, भात, पक्वान्न और ऐसी ही अन्य साधारण वस्तुओं-का हरण करनेपर उनके मूल्यका दुगुना दण्ड करना चाहिये ।

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ।
अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥३३०॥

फूल, खेतके हरे धान, गुल्म, लता, पेड़ और पुरुषके ढोनेयोग्य अन्य वस्तु चुरानेपर पांच कृष्णल दण्ड करना चाहिये ।

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ।
निरन्वये शतं दण्डः सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥३३१॥

परिपूत धान्य, साग, मूल और फलका चुरानेवाला यदि सम्बन्धी न हो तो एक सौ पण और सम्बन्धी हो तो उससे ५० पण दण्ड लेना चाहिये ।

स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म यत्कृतम् ।
निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापव्ययते च यत् ॥३३२॥

स्वामीके समक्ष बलपूर्वक कोई चीज लेनेको साहस कहते हैं । स्वामीके परोक्षमें कोई चीज लेना या लेकर छिपा रखना चोरी कह-लाता है ।

यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ।
तमाद्यं दण्डयेद्राजा यश्चाग्निं चोरयेद्गृहात् ॥२३३॥

जो मनुष्य किसीके व्यवहारोपयुक्त सूत्र आदि वस्तु चुरावे या घरसे हवन करनेकी आग चुराकर ले जाय तो राजा उसे प्रथम साहस दण्ड करे ।

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।
तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥२३४॥

जिस जिस अङ्गसे चोर दूसरेकी वस्तु चुरानेकी चेष्टा करे राजा उसके उस उस अङ्गको कटवा डाले जिससे कि वह फिर चोरी न कर सके ।

पिताचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥२३५॥

मां, बाप, आचार्य, स्त्री, पुत्र, मित्र और पुरोहित, ये लोग यदि अपने धर्ममें स्थित न रहें तो राजा उन्हें भी दण्ड दिये बिना न छोड़े ।

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥२३६॥

जिस अपराधमें साधारण मनुष्यको एक कार्षापण दण्ड होता है उस अपराधमें राजाको एक हजार पण दण्ड * होना चाहिये, यह शास्त्रका सिद्धान्त है ।

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम् ।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥२३७॥

---

* राजा अपने दण्डका द्रव्य ब्राह्मणोंको दे या वरुणके उद्देशसे जलमें छोड़ दे ।

ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् ।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ॥३३८॥

चोरीके गुणदोषको जाननेवाला शूद्र चोरी करे तो वह चोरीके मालका अठगुना, वैश्य सोलह गुना, क्षत्रिय बत्तीस गुना और ब्राह्मण चौसठ गुना, या सौ गुना या एक सौ अट्ठाइस गुना दण्ड देनेयोग्य है ।

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च ।
तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् ॥३३९॥

वनके फल-मूल, होमके लिये सूखी लकड़ी और गौओंके खिलानेके लिये तृण लेना चोरी नहीं है, यह मनुजीने कहा है ।

योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ।
याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः ॥३४०॥

जो ब्राह्मण यज्ञ कराकर या पढ़ाकर चोरके हाथसे धन पानेकी इच्छा करे तो वह भी चोरके बराबर है ।

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ।
आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति ॥३४१॥

राह चलते हुए ब्राह्मणके पास यदि खानेको कुछ न हो और वह किसीके खेतसे दो ईख या दो मूली ले ले तो इसके लिये वह दण्डभागी नहीं हो सकता ।

असंदितानां संदाता संदितानां च मोक्षकः ।
दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चोरकिल्बिषम् ॥३४२॥

जो दूसरेके खुले हुए घोड़े आदि पशुओंको बाँधरखे और बंधे हुए पशुओंको खोल दे या दूसरेके नौकर, घोड़े और रथका हरण कर ले तो वह चोरके समान दंड देनेयोग्य है ।

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम्।
यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥३४३

जो राजा इस प्रकार चोरोंको दण्ड देता है, वह इस लोकमें यश और परलोकमें परम सुख पाता है।

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥३४४॥

जो राजा इन्द्रपद पानेका अभिलाषी हो और सदाके लिये विमल यश पाना चाहे, वह क्षणभर भी साहसी मनुष्यको दण्ड देनेमें उपेक्षा न करे।

वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः।
साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥३४५॥

बुरी बात बोलनेवाले चोर और लाठीसे मारपीट करनेवाले मनुष्यसे भी साहस करनेवाला मनुष्य कहीं बढ़कर अपराधी है।

साहसे वर्तमाने तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥३४६॥

जो राजा साहस करनेवालेको क्षमा करता है, वह शीघ्र विनाशको प्राप्त होता है और सभी लोग उससे शत्रुता करने लग जाते हैं।

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥३४७॥

राजा मित्रकी धारणासे या प्रचुर धनके लाभसे सब प्राणियोंको भयभीत करनेवाले साहसिकको न छोड़े।

शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते ॥३४८॥
आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे।
स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति ॥३४९॥

जब द्विजातियोंका वर्ण और आश्रम-धर्म "साहसी" लोग चलने नहीं देते, जब विपरीत कालके कारण देशमें अराजकता फैली हो, अपनी रक्षाके लिये अथवा धन, गौ आदिकी रक्षाके लिये युद्ध करनेका प्रसंग हो, उसी प्रकार जब स्त्रियों और ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये आवश्यक हो तब द्विजातियोंको शस्त्र ग्रहण करना चाहिये—ऐसे समय धर्मतः हिंसा करनेमें दोष नहीं है ।

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥३५०॥

गुरु, बालक, वृद्ध या बहुत शास्त्रोंका जाननेवाला ब्राह्मण भी आततायी होकर ( मारनेके लिये ) आवे तो उसे बेखटके मार डाले ।

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥३५१॥

सबके सामने या एकान्तमें आततायीको मारनेका दोष नहीं है । कारण आततायी जिसे मारना चहता है उसके क्रोधको उस आततायीका क्रोध ही बढ़ाता है ।

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः ।
उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥३५२॥

पराई स्त्रीके साथ सम्भोग करनेमें प्रवृत्त मनुष्योंको राजा भयङ्कर दण्डोंसे नाक कान आदि कटवाकर देशसे निकाल दे ।

तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ।
येन मूलहरोऽधर्मः सर्वनाशाय कल्पते ॥३५३॥

कारण परस्त्री गमनसे वर्णसंकर होता है जिससे मूलको ही हरण करनेवाला अधर्म सर्वनाशका कारण होता है ।

परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन्रहः ।
पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥३५४॥

परस्त्रीगमनका अपवाद जिसपर लगा है ऐसा कोई पुरुष यदि किसी परस्त्रीके साथ एकान्तमें संभाषण करे तो राजा उसपर प्रथम साहस दण्ड करे।

यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात्।
न दोषं प्राप्नुयात्किंचिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः ॥३५५॥

जो परस्त्रीगमनके अपवाद-दोषसे रहित हो और किसी कारणसे दूसरेकी स्त्रीके साथ लोगोंके सामने या एकान्तमें भाषण करे तो वह अपराधी न होनेके कारण दण्ड पानेयोग्य भी नहीं है।

परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेऽपि वा।
नदीनां वापि संभेदे स संग्रहणमाप्नुयात् ॥३५६॥

जो पुरुष पराई स्त्रीसे तीर्थमें या नदीके तटवर्ती जंगलमें या गांवके बाहर निर्जन उपवनमें या नदियोंके संगम-स्थानमें रहस्यभाषण करे उसे राजा संग्रहणका दंड ( एक सहस्र पण ) करे।

उपचारक्रिया केलिः स्पर्शो भूषणवाससाम्।
सह खट्वासनं चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥३५७॥

परस्त्रीके पास माला, फूल, इत्र आदि भेजना, उसके साथ हँसी, दिल्लगी करना, आलिंगन करना, उसका भूषणवस्त्र छूना, उसके साथ चारपाईपर बैठना, ये सब शास्त्रोंमें संग्रहण कहे गये हैं।

स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया।
परस्परस्यानुमते सर्वं संग्रहणं स्मृतम् ॥३५८॥

कोई पुरुष परस्त्रीके स्पर्श न करनेयोग्य अङ्गको स्पर्श करे अथवा उसके अपने अंगको स्पर्श करनेपर कुछ न बोले, यह सब परस्परके अनुमोदनसे होनेवाला संग्रहण ही है।

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति।
चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा ॥३५९॥

यदि शूद्र द्विजातिकी स्त्रीके साथ संग्रहण करे तो वह प्राणदण्ड देनेयोग्य है । चारों वर्णोको सबसे अधिक अपनी स्त्रियोंकी ही सदा रक्षा करनी चाहिये ।

भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा ।
संभाषणं सह स्त्रीभिः कुर्युरप्रतिवारिताः ॥३६०॥

भिक्षुक, भाट, दीक्षित और सूपकार, ये लोग गृहस्थपत्नीसे ( कार्य्यवश ) बेरोक बात कर सकते हैं ।

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ।
निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥३६१॥

गृहस्थने जिस पुरुषको मना कर दिया हो वह उस गृहस्थकी पत्नीसे बात न करे । ऐसा निषिद्ध भाषण जो करता है वह सोलह मासा सुवर्ण दण्डका पात्र होता है ।

नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु ।
सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढाश्चारयन्ति च ॥३६२॥

यह विधि नटोंकी स्त्रियोंके लिये नहीं है, भार्यासे अपनी जीविका चलानेवालोंके लिये भी नहीं है, क्योंकि वे अपनी स्त्रियोंको स्वयंही परपुरुषोंसे संबद्ध कराते, और स्वयं छिपे रहकर उनसे व्यभिचार कराते हैं ।

किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन् ।
प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च ॥३६३॥

तथापि ऐसी स्त्रियोंके साथ भी एकान्तमें बात करनेवाले पुरुषको राजा कुछ दंड करे । वैसे ही दासियों, वैरागिनों और ब्रह्मचारिणियों-के साथ जो पुरुष रहस्य-भाषण करे उसे भी कुछ दण्ड करे ।

योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ।
सकामां दूषयंस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ॥३६४॥

जो मनुष्य किसी कन्यापर बलात्कार करके उसे दूषित करता है वह तत्काल वध करने योग्य होता है। पर कन्याकी इच्छासे उसे कोई दूषित करे और वह पुरुष उस कन्याका सजातीय हो तो वह वधके योग्य नहीं होता।

कन्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत्।
जघन्यं सेवमानां तु संयतां वासयेद्गृहे ॥३६५॥

उच्च जातिके पुरुषके साथ संभोग करनेकी इच्छासे उसकी सेवा करनेवाली कन्याको कुछ भी दंड न करे; पर हीन जातिके पास जाने-वालीका यत्नपूर्वक नियमन करे।

उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति।
शुल्कं दद्यात्सेवमानःसमामिच्छेत्पिता यदि ॥३६६॥

उत्तम वर्णकी कन्याके साथ समागम करनेवाला नीच वर्णका पुरुष वधके योग्य है। समान वर्णकी कन्याके साथ समागम करने-वाला, यदि उस कन्याका पिता चाहे तो शुल्क देकर छूट सकता है ( इसका मतलब यह हुआ कि फिर उसीके साथ उस कन्याका विवाह हो जाता है।)

अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्याद्दर्पेण मानवः।
तस्याशु कर्त्ये अंगुल्यौ दण्डं चार्हति षट्शतम् ॥३६७॥

जो मनुष्य घमण्डमें आकर बरजोरीसे समान जातिकी कन्याकी योनिमें उंगली डालकर उसे भ्रष्ट करता है, राजा शीघ्र उसकी दो उँगलियाँ कटवाकर उसे ६०० पण जुर्माना करे।

सकामां दूषयंस्तुल्यो नांगुलिच्छेदमाप्नुयात्।
द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसङ्गविनिवृत्तये ॥३६८॥

स्वयं चाहनेवाली कन्याको उंगली डालकर भ्रष्ट करनेवाले समान जातिके पुरुषकी उंगली नहीं काटना चाहिये। दो सौ पण दण्ड उसे इसलिये करना चाहिये, कि वह फिर कभी ऐसा दुष्कर्म न करे।

कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः ।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ॥३६९॥

यदि कन्या कन्याके साथ ऐसा दुर्व्यवहार करे तो वह दो सौ पण दण्ड राजाको दे और दुगुना शुल्क उस लड़कीके बापको दे । ऐसी लड़कीको १० कोड़े लगवावे ।

या तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति ।
अंगुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनं तथा ॥३७०॥

यदि स्त्री कन्याकी योनिमें उंगली डाले तो राजा तत्काल उसके सिरका बाल मुड़वा दे या उसकी दो उंगली कटवा डाले या गधेपर चढ़ाकर उसे सड़कोंपर घुमावे ।

भर्तारं लङ्घयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥३७१॥

जो स्त्री अपने बाप-दादेके धन और अपने रूप-गुणसे गर्विष्ठ होकर पराये पुरुषके साथ शयन करके पतिका निरादर करे, राजा उसे बहुत लोगोंके सामने कुत्तोंसे नुचवा डाले ।

पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥३७२॥

उस जार पापी पुरुषको राजा तपाये हुए लोहेकी शय्यापर सुलाकर ऊपरसे लकड़ी रखवा दे जिसमें वह पापकर्त्ता जलकर खाक हो जाय ।

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ।
व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्या तावदेव तु ॥३७३॥

परस्त्रीगमनसे दूषित पुरुष दण्डित होनेपर यदि एक वर्षके बाद फिर वैसा अपराध करे तो उसे पहलेसे दूना दण्ड करना चाहिये । व्रात्य पुरुषकी स्त्री और चाण्डालिनके पास जानेवालेके लिये भी राजा

इसी दण्डकी व्यवस्था करे अर्थात् जो पुरुष एक वर्षके अनन्तर फिर उसी व्रात्य-स्त्री या चाण्डालपत्नीमें गमन करे तो राजा उसे पूर्व दंडका दूना दण्ड करे ।

शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् ।
अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥३७४॥

जो द्विजाति ( ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ) की स्त्री स्वामी आदि अभिभावकसे रक्षित न हो, यदि शूद्र उसके साथ व्यभिचार करे तो राजा उसका लिङ्गच्छेदनपूर्वक सर्वस्व हरण कर ले, और रक्षित स्त्रीके साथ व्यभिचार करे तो सर्वस्व हरणके साथ उसे प्राणदण्ड दे ।

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः ।
सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो मौण्ड्यं मूत्रेण चार्हति ॥३७५॥

यदि वैश्य, रक्षित ब्राह्मणीके साथ मैथुन करे तो सर्वस्वहरण पूर्वक उसे एक वर्षकी कैदकी सजा दे और क्षत्रियको एक हजार पण जुर्माना करे और गधेके मूतसे उसका सिर मुड़वा दे ।

ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ ।
वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥३७६॥

यदि वैश्य और क्षत्रिय अरक्षित ब्राह्मणीके साथ गमन करें तो वैश्यको ५०० पण और क्षत्रियको १००० पण दण्ड करे ।

उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ।
विप्लुतौ शूद्रवद्दण्ड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ॥३७७॥

वैश्य और क्षत्रिय, ये दोनों यदि रक्षित ब्राह्मणीके साथ मैथुन करें, तो शूद्रके लिये जो दंड पहले कहा गया है, वह दण्ड इन्हें देना चाहिये अथवा तृणकी धधकती हुई आगमें इन्हें जला देना चाहिये ।

सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां बलाद्व्रजन् ।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सह संगतः ॥२७८

यदि ब्राह्मण रक्षित ब्राह्मणीके साथ बरजोरी मैथुन करे तो उसे एक हजार पण दंड देना चाहिये, और वह सकामा हो तो उसके साथ संगम करनेपर राजा उसे ५०० पण दण्ड करे ।

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ।
इतरेषां तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥२७९॥

अवध्य होनेके कारण ब्राह्मणके सिरका बाल मुड़ा देना ही उसके लिये प्राणान्तक दण्ड है । परन्तु अन्य वर्णोंको प्राणान्तक दंड दिया जा सकता है ।

न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥२८०॥

सब प्रकारके पाप करनेपर भी ब्राह्मणका कभी वध न करे । उसे समग्र धनके साथ, अभग्न शरीरसे अपने देशसे बाहर कर दे ।

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि ।
तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् ॥२८१॥

ब्रह्मवधसे बढ़कर संसारमें दूसरा पाप नहीं है । इसलिये राजा उसके वधकी चिन्ता कभी मनसे भी न करे ।

वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत् ।
यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः ॥२८२॥

यदि वैश्य रक्षित क्षत्राणीसे और क्षत्रिय रक्षित वैश्यासे गमन करे तो अरक्षिता ब्राह्मणीके साथ गमन करनेमें जो दण्ड कहा गया है, वही दंड इन दोनोंके लिये भी उचित है ।

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन्।
शूद्रायां क्षत्रियविशोः सहस्रो वै भवेद्दमः ॥३८३॥

यदि ब्राह्मण रक्षित क्षत्राणी और वैश्याके साथ व्यभिचार करे तो उसे १००० पण दंड दे और क्षत्रिय तथा वैश्य यदि रक्षित शूद्रासे रमण करें तो उन्हें भी एक हजार पण जुर्माना देना होगा।

क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः।
मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा ॥३८४॥

अरक्षित क्षत्रियासे गमन करनेपर वैश्यको पांच सौ पण दण्ड देना होगा। यदि क्षत्रिय उससे गमन करे तो गधेके मूतसे उसका सिर मुड़ा दे या उससे पांच सौ पण दंड ले।

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन्।
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम् ॥३८५

यदि ब्राह्मण अरक्षित क्षत्राणी, वैश्या या शूद्रासे गमन करे तो पांच सौ पण दंड दे और चाण्डालकी स्त्रीके साथ मैथुन करनेसे एक हजार पण दण्ड दे।

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥३८६॥

जिस राजाके राज्यमें चोर, लम्पट, मिथ्यावादी, अनुचित कर्ममें साहस दिखानेवाला और लाठीसे मारपीट करनेवाला नहीं है, वह राजा इन्द्रपुरीका सुख भोगता है।

एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके।
साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥३८७॥

जो राजा अपने राज्यमें पूर्वोक्त चोर आदि पांचों अपराधियोंको दण्ड देता है, वह अपने सजातीय राजाओंके बीच साम्राज्यसम्पन्न और संसारमें यशस्वी होता है।

ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं चर्त्विक्त्यजेद्यदि ।
शक्तं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतं शतम् ॥३८८॥

यजमान यदि योग्य ऋत्विज ( पुरोहित ) को और ऋत्विज निर्दोषी यजमानको छोड़ दे तो राजा उन दोनोंपर सौ सौ पण दण्ड करे ।

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ।
त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥३८९॥

मां, बाप, स्त्री और पुत्र, ये अत्याज्य होते हैं । इन निर्दोषियोंका त्याग करनेपर राजा प्रत्येकके लिये उसे छः छः सौ पण दण्ड करे ।

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ।
न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥३९०॥

गार्हस्थ्य आदि आश्रमोचित कार्यमें परस्पर विवाद करते हुए द्विजातियोंके बीच अपना हित चाहनेवाला राजा सिद्धान्तकी कोई बात न बोले, अर्थात् यह न कहे कि यह शास्त्रसम्मत है और यह नहीं है ।

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ।
सांत्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥३९१॥

राजा उन सबका उचित सम्मान करके अन्य ब्राह्मणोंके साथ पहले उन्हें शान्त करे, पीछे जो उनका अपना धर्म हो उसका प्रतिपादन करे ।

प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशतिद्विजे ।
अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥३९२॥

किसी शुभ कार्यमें बीस ब्राह्मणोंको खिलाना हो और उसमें योग्य प्रतिवेश्य ( पड़ोसी ) और अनुवेश्य ( पड़ोसीके पड़ोसी ) को भोजन

न कराकर अन्य ब्राह्मणोंको खिलानेवाला वह ब्राह्मण एक मासा चांदी दण्ड देनेयोग्य है।

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिकृत्येष्वभोजयन्।
तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैव माषकम् ॥३९३॥

जो वेदाध्यायी ब्राह्मण शुभकार्यमें प्रतिवेश्य अनुवेश्य वैदिक सद्ब्राह्मणोंको भोजन न करावे, राजा उसे भोज्यान्नका दूना अन्न और एक मासा सोना दण्ड करे।

अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः।
श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम् ॥३९४॥

अन्धे, बहरे, लंगड़े और सत्तर वर्षके बूढ़े तथा वेदपाठी ब्राह्मणोंका उपकार करनेवालेसे किसी राजाको कर न लेना चाहिये।

श्रोत्रियं व्याधितार्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम्।
महाकुलीनमार्यं च राजा संपूजयेत्सदा ॥३९५॥

वैदिक, व्याधिग्रस्त, बालक, वृद्ध, दरिद्र, श्रेष्ठकुलजात और उदार-चरित्र—इनका राजा सदा सम्मान करे।

शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः।
न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् ॥३९६॥

धोबीको चाहिये कि सेमरके चिकने काठपर धीरे-धीरे वस्त्र धोवे, वस्त्रोंसे वस्त्रोंका हेरफेर न करे और किसीका कपड़ा किसी दूसरेको पहननेके लिये न दे।

तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम्।
अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम् ॥३९७॥

जुलाहा ( कपड़ा बुननेवाला ) दस पल सूत लेकर एक पल और अधिक अर्थात् ग्यारह पल कपड़ा तौलकर सूतवालेको दे। अन्यथा

बर्ताव करनेपर अर्थात् वजनमें कम देनेपर राजा उसे बारह पण दण्ड करे।

शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः।
कुर्युरर्घं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत् ॥३९८॥

शुल्कसम्बन्धी विषयमें कुशल, बाजारमें बिकनेवाली चीजोंका तत्त्व जाननेवाले मनुष्य, जिस वस्तुका जो दाम निर्णय करें उसके लाभका २० वां भाग राजा ले।

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च।
तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः ॥३९९॥

राजाके खरीदनेयोग्य विशेष पात्र वस्त्र वाहन आदि और जिन चीजोंको बाहर ले जानेके लिये राजाने मना कर दिया हो, लोभसे उन चीजोंको देशान्तर ले जानेवालेका राजा सर्वस्वहरण कर ले।

शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्रयी।
मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ॥४००॥

जो व्यापारी चुंगी देनेके डरसे सदर रास्ता छोड़कर दूसरे रास्तेसे जाय, असमयमें खरीद-फरोख्त करे, राजकर न देनेके अभिप्रायसे जो विक्रेय वस्तुका परिमाण झूठ बतावे तो जितना कर उसने झूठ बोलकर बचाया हो, राजा उसका अठगुना दण्ड करे।

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ।
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥४०१॥

बाहरसे कौन-कौनसी चीजें आयी हैं, अपने देशकी कौन कौन चीजें देशान्तर गयी हैं, कितने दिनोंतक रखनेसे कितना लाभ होगा, नफा लेकर बेचनेपर कितनी वृद्धि होगी, उन वस्तुओंकी रक्षा करनेमें कितना खर्च होगा, इन सब बातोंको भलीभांति विचार करके सभी विक्रेय वस्तुओंकी दर ठीक कर दे, जिससे खरीदने और बेचनेवालेके मनमें किसी प्रकारका दुःख न हो।

पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते।
कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनं नृपः ॥४०२॥

पांच पांच दिन पीछे या एक-एक पखपर राजा व्यापारकुशल पुरुषोंद्वारा व्यापारियोंकी वस्तुओंकी दरका निश्चय करे।

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम्।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥४०३॥

सोना तौलनेका तोला मासा और रत्ती आदि तथा अनाज तौलनेके सेर पसेरी आदि बटखरे वजनमें पूरे हैं या नहीं, राजा प्रति छठे मास इसकी जांच करावे।

पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं तरे।
पादं पशुश्च योषिच्च पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥४०४॥

खाली सवारी पार उतारनेका खेवा एक पण, भार उतारनेका आधा पण, पशु और स्त्रीको पार उतारनेका चौथाई पण और बोझ रहित पुरुषका खेवा एक पणका आठवां हिस्सा देना चाहिये।

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्यं दाप्यानि सारतः।
रिक्तभाण्डानि यत्किंचित्पुमांसश्चापरिच्छदाः ॥४०५॥

वस्तुओंसे भरी हुई गाड़ीका खेवा वस्तुओंके सार-असारकी विवेचना करके देना चाहिये। किन्तु खाली छकड़े और दरिद्र मनुष्योंकी पार उतराई बहुत ही कम देनी चाहिये।

दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालं तरो भवेत्।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥४०६॥

जलपथसे दूरतक जानेमें नदीका वेग, स्थिरता, अनुकूल-प्रतिकूल प्रवाह और समय आदि देखकर नावके भाड़ेका निश्चय करे। यह नियम केवल नदीपथसे जानेके लिये हो सकता है, समुद्रयात्राके लिये नहीं।

गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ।
ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकं तरे ॥४०७॥

दो मासके ऊपरकी गर्भिणी स्त्री, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी और ब्राह्मण, इन लोगोंसे केवट पार उतारनेका खेवा न ले ।

यन्नावि किञ्चिद्दाशानां विशीर्येतापराधतः ।
तद्दाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोंऽशतः ॥४०८॥

नाव खेनेवालोंकी भूलसे यात्रियोंकी कोई चीज नष्ट हो तो नाविकोंको चाहिये कि थोड़ा थोड़ा अपने पाससे देकर उसे पूरा करें ।

एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ।
दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः ॥४०९॥

यह नौ-यात्रियोंके व्यवहारका निर्णय कहा है । नाविकोंके दोषसे जो वस्तु पानीमें गिरकर नष्ट होगी उसका हर्जाना नाविक लोग देंगे, किन्तु जो दैवी दुर्घटना ( तूफान आदि ) से नष्ट होगी, वह नाविक न देंगे ।

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च ।
पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥४१०॥

राजाको चाहिये कि वैश्यसे खेती, वाणिज्य, महाजनी और गाय-बैल आदि पशुओंका पालन और शूद्रोंसे द्विजातियोंकी सेवा करावे ।

क्षत्रियं चैव वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितौ ।
बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन् ॥४११॥

क्षत्रिय और वैश्य यदि अपनी वृत्तिसे निर्वाह न कर सकनेके कारण पीड़ित हों तो ब्राह्मणको चाहिये कि उनसे उनकी वृत्ति कराकर दयापूर्वक उनका भरण-पोषण करे ।

दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृतान्द्विजान् ।
अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥४१२॥

जो ब्राह्मण लोभसे या प्रभुत्वसे उपनीत द्विजातियोंसे उनकी इच्छा न रहते टहलूका काम ले, राजा उसे छः सौ पण दण्ड करे।

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥४१३॥

शूद्र खरीदा हुआ हो या न हो उससे नौकरका काम ले, क्योंकि ब्रह्माने ब्राह्मणकी सेवाके ही लिये उसे सिरजा है।

न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ।
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥४१४॥

स्वामीसे परित्यक्त होनेपर भी शूद्र सेवावृत्तिसे छुटकारा नहीं पा सकता। क्योंकि वह उसकी स्वाभाविक वृत्ति है, उस वृत्तिसे उसे कौन अलग कर सकता है।

ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ ।
पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः ॥४१५॥

युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर लाया गया, भोजनके लालचसे स्वयं ठहरा हुआ, दासीके गर्भसे उत्पन्न, खरीदा हुआ, किसीका दिया हुआ, जो बाप-दादेके समयसे काम करता आया हो और जो दण्ड, ऋण आदि चुकानेके लिये दास हुआ हो, ये सातों दास-योनि हैं।

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥४१६॥

पत्नी, पुत्र और सेवक, ये तीनों निर्धन कहे गये हैं, इनका हासिल किया धन उसका होगा, जिसके ये पुत्र, कलत्र और सेवक हैं।

विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत् ।
नहि तस्यास्ति किञ्चित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ॥४१७॥

काम आ पड़नेपर शूद्रका धन ब्राह्मण बेरोक ले सकता है। क्योंकि उसका अपना धन कुछ नहीं है, सब धन उसके स्वामीका है। वह तो पहले ही निर्धन कहा जा चुका है।)

वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् ॥४१८॥

राजा वैश्य और शूद्रसे जो उनकी वृत्ति है, यत्नपूर्वक करावे, क्योंकि वे दोनों अपने कर्मोंसे च्युत होनेपर सारे संसारको क्षुब्ध कर सकते हैं।

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोशमेव च ॥४१९॥

राजा आरम्भ किये कार्यकी सम्पन्नता, नियत आय-व्यय, खान, खजाना और वाहनोंका प्रतिदिन निरीक्षण करे।

एवं सर्वानिमान्राजा व्यवहारान्समापयन् ।
व्यपोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥४२०॥

जो राजा इस प्रकार इन सब पूर्वोक्त व्यवहारोंको पूरा करता है, वह सब पापोंसे छूटकर परमपदको प्राप्त होता है।

❋ अष्टम अध्याय समाप्त ❋

## अध्याय ९



पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्मे वर्त्मनि तिष्ठतोः ।
संयोगे विप्रयोगे च धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥१॥

धर्मपथमें स्थित पति-पत्नियोंको मिलन और विरहमें जिन नित्य धर्मोंका पालन करना चाहिये, अब उनका वर्णन करेंगे ।

अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम् ।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे ॥२॥

पुरुषोंको चाहिये कि अपनी स्त्रियोंको कभी स्वतन्त्र न होने दें। रूपरसादि विषयोंमें उनके आसक्त होनेपर भी उन्हें अपने वशमें रखें ।

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥३॥

बालापनमें पिता, यौवनमें स्वामी और बुढ़ापेमें पुत्र स्त्रीकी रक्षा करते हैं। स्त्री कभी स्वतन्त्रताके योग्य नहीं ।

कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन्पतिः ।
मृते भर्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥४॥

समयपर कन्यादान न करनेसे पिता, ऋतुकालमें पत्नीके साथ प्रसङ्ग न करनेसे पति और पिताके मरनेपर माताकी रक्षा न करनेसे पुत्र निन्दाके पात्र होते हैं ।

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥५॥

थोड़े दुःसङ्गसे भी स्त्रियोंकी विशेष रूपसे रक्षा करनी चाहिये ।

क्योंकि अरक्षित स्त्रियां दोनों कुलोंको कलङ्कित और शोकान्वित करती हैं।

इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो धर्ममुत्तमम्।
यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि ॥६॥

सब वर्णोंके इस उत्तम स्त्री-रक्षा धर्मको देखते हुए दुर्बल पति भी अपनी स्त्रीकी रक्षा करनेमें यत्नवान हों।

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति ॥७॥

यत्नसे अपनी स्त्रीकी रक्षा करनेवाला पुरुष अपनी सन्तान, चरित्र, कुल, आत्मा और अपने धर्मकी रक्षा करता है।

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥८॥

स्वामी वीर्यरूपसे स्त्रीके गर्भाशयमें प्रवेश कर पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। पति उसमें फिर जायमान होता है यही जाया (पत्नी) का "जायापन" है।

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम्।
तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥९॥

स्त्री जैसे पुरुषका सेवन करती है वैसा ही पुत्र जनती है। इसलिये पवित्र सन्तानके प्रसवनिमित्त स्त्रीकी बड़े यत्नसे रक्षा करे।

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्।
एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥१०॥

कोई पुरुष जोर करके स्त्रियोंकी रक्षा नहीं कर सकता। नीचे लिखे उपायोंसे ही उनकी रक्षा की जा सकती है।

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे ॥११॥

रुपये-पैसे रखने, खर्च करने, शरीर और उपभोगकी वस्तुओंको साफ रखने, पतिकी सेवा-शुश्रूषा करने, रसोई बनाने तथा घरके सभी सामानोंकी देखभाल करनेमें उसे लगावे।

अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः।
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः ॥१२॥

अपने मान्य पुरुषोंके द्वारा घरमें बन्द की जानेपर भी स्त्री रक्षित नहीं रह सकती। जो आप अपनी रक्षा करती है वही अपनेको सुरक्षित रख सकती है।

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट् ॥१३॥

मद्य पीना, बुरे लोगोंका संसर्ग, स्वामीका वियोग, अकेली इधर-उधर घूमना, असमयमें सोना और दूसरेके घरमें रहना, ये छः स्त्रियोंके दोष हैं।

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः।
सरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥१४॥

न वे रूपकी परीक्षा करती हैं, न उम्रका ही कुछ ख्याल रखती हैं, सुन्दर हो चाहे कुरूप, पुरुष होनेसे ही वे उसके साथ भोग करती हैं।

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते ॥१५॥

पराये पुरुषको देखकर उसके साथ भोग करनेकी इच्छा, चित्तकी चपलता और स्वभावसे ही स्नेहशून्य होनेके कारण यत्नपूर्वक घरमें रोक रखनेपर भी वे अपने पतिके विरुद्ध काम करती हैं।

एवंस्वभावं ज्ञात्वासां प्रजापतिनिसर्गजम्।
परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥१६॥

स्त्रियोंका ऐसा स्वभाव ब्रह्माका ही सिरजा हुआ है, ऐसा जान-कर पुरुष स्त्रीकी रक्षाके प्रति पूरा प्रयत्न करे ।

शय्यासनमलंकारं कामं क्रोधमनार्जवम् ।
द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् ॥१७॥

शय्या, आसन, अलङ्कार, काम, क्रोध, कुटिलता, द्रोह और दुराचारको मनुजीने सृष्टिके आदिमें स्त्रियोंके लिये रख छोड़ा ।

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मे व्यवस्थितिः ।
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥१८॥

स्त्रियोंकी जातकर्मादिक्रिया मन्त्रोंसे न हो, यह इनके लिये धर्मशास्त्रमें व्यवस्था की गयी है। उन्हें ज्ञान नहीं होता, मंत्रका उन्हें अधिकार नहीं, इसलिये झूठमें ही उनकी स्थिति है।

तथा च श्रुतयो बह्व्यो निगीता निगमेष्वपि ।
स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः ॥१९॥

वेदोंमें भी अनेक ऐसी श्रुतियां हैं—उनमें जो मन्त्र व्यभिचारके प्रायश्चित्तस्वरूप हैं, उन्हें सुनो ।

यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता ।
तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् ॥२०॥

( कोई पुत्र माताके मानसिक व्यभिचारकी बात जानकर कहता है ) "मेरी मांने अपतिव्रता होकर दूसरेके घरमें जा परपुरुषकी इच्छा की, इसलिये माताके उस गर्हित ( परपुरुष ) संकल्पदूषित रजको मेरे पिता शुद्ध करें ।" यह मन्त्र उस समयके व्यभिचारका द्योतक है ।

ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसा ।
तस्यैष व्यभिचारस्य निह्नवः सम्यगुच्यते ॥२१॥

स्त्री अपने स्वामीके विरुद्ध परपुरुषसे गमन करनेकी जो भावना

मनमें करती है, उस मानसिक व्यभिचारके पापका संशोधन इस मन्त्रके द्वारा कहा गया है ।

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि ।
तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा ॥२२॥

जैसे गुणवाले पुरुषके साथ स्त्री ब्याही जाती है वह वैसे ही गुणसे युक्त होती है । जैसे नदीका सुस्वादु जल भी समुद्रमें मिलनेसे खारा हो जाता है ।

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥२३॥

नीच योनियोंमें जन्म लेनेवाली अक्षमाला वशिष्ठसे और शारङ्गी मन्दपाल मुनिसे विवाहसूत्रमें बद्ध होनेके कारण परमपूज्यताको प्राप्त हुईं ।

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥२४॥

इस लोकमें और भी कितनी ही नीच कुलकी स्त्रियाँ ( सत्यवती आदि ) अपने स्वामीके अच्छे गुणोंसे युक्त होकर श्रेष्ठताको प्राप्त हुईं ।

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ।
प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्मान्निबोधत ॥२५॥

यह मैंने स्त्री-पुरुषोंके नित्य लोकव्यवहारका शुभ नियम कहा । अब इस लोक और परलोकमें सुख बढ़ानेवाले सन्तानधर्मोंको सुनिये ।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥२६॥

ये स्त्रियाँ सन्तानोत्पत्ति करनेके कारण बड़ा उपकार करनेवाली

पूजाके योग्य और घरकी शोभा हैं। घरोंमें लक्ष्मी और स्त्री दोनों एक समान हैं, इनमें कुछ अन्तर नहीं है। ( जैसे लक्ष्मीके बिना घर सूना लगता है वैसे स्त्रीके बिना भी। )

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥२७॥

सन्तान जनना, जने हुएका पालन करना, और नित्यका गृहकार्य इनका प्रत्यक्ष कारण स्त्री ही है।

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥२८॥

सन्तान, अग्निहोत्र आदि धर्मकार्य, सेवा, उत्कृष्ट रति, पितरोंका तथा अपना स्वर्गसाधन, ये सभी कुछ पत्नीके अधीन हैं।

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ।
सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते ॥२९॥

जो स्त्री मन, वचन और शरीरको संयत रख कभी पतिके विरुद्ध आचरण नहीं करती, वह इस लोकमें पतिव्रताके नामसे ख्यात होती है और देहत्यागके अनन्तर स्वामीके साथ स्वर्गका सुख भोगती है।

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यताम् ।
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥३०॥

स्वामीके विरुद्ध व्यभिचार करनेसे स्त्री इस लोकमें निन्दाकी पात्र होती है और जन्मान्तरमें शृगालयोनिमें जन्म लेकर पापरोगों- ( कुष्ठ आदि ) से पीड़ित होती है।

पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ।
विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥३१॥

मन्वादि महात्माओं और पहलेके महर्षियोंने पुत्रके सम्बन्धमें

संसारके हितार्थ जो आगे पुण्य विचार कथन किया है, उसे श्रवण करो।

भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि।
आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः॥३२॥

पुत्र स्वामीका होता है, यह मुनियोंका मत है। किन्तु स्वामीके विषयमें दो प्रकारकी श्रुति है। कोई पुत्र उत्पन्न करनेवालेको ( फिर चाहे वह पति न हो तोभी ) पुत्रवान कहते हैं और कोई जिसकी पत्नीमें पुत्र हुआ उसीका वह पुत्र मानते हैं।

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्।
क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम्॥३३॥

महर्षियोंने स्त्रीको क्षेत्रके समान और पुरुषको बीजके समान माना है; क्षेत्र बीजके संयोगसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है।

विशिष्टं कुत्रचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित्।
उभयं तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते॥३४॥

कहीं बीज प्रधान * होता है और कहीं क्षेत्रकी प्रधानता † होती है। जहां बीज और क्षेत्र दोनों समान होते हैं वहां सन्तान पति-बीजसे उत्पन्न होनेके कारण श्रेष्ठ मानी जाती है।

बीजस्य चैव योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते।
सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता॥३५॥

बीज और क्षेत्रमें बीजको ही प्रधान कहा है; क्योंकि सभी जीवोंकी उत्पत्ति बीजके वर्णरूपादि चिह्नोंसे अङ्कित होती है।

यादृशं तृप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते।
तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः॥३६॥

---

* जैसे व्यास, ऋष्यश्रृङ्ग आदि।
† जैसे धृतराष्ट्र, पांडु आदि।

ठीक समयपर जोते हुए खेतमें जैसा बीज बोया जाता है, बीजके गुणोंसे युक्त वैसा ही अंकुर उसमें उत्पन्न होता है।

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते ।
न च योनिगुणान्कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥३७॥

सब लोग जानते हैं कि यह धरती सब प्राणियों और पेड़पौधोंका नित्य उत्पत्ति-स्थान है। परन्तु धरतीका कोई गुण बीजमें न आकर वह अपने ही गुणोंसे अंकुरित होता है।

भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः ।
नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥३८॥

कृषकोंके द्वारा एक ही खेतमें समयपर बोये हुए विविध प्रकारके बीज अपने गुण-रूपके ही अनुसार अलग-अलग उत्पन्न होते हैं।

व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः ।
यथाबीजं प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा ॥३९॥

धान, मूंग, तिल, उड़द, और जौ आदि अन्न तथा लहसन और ईख, ये सभी अपने बीजके सदृश नाना रूपोंमें अंकुरित होते हैं।

अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते ।
उप्यते यद्धि यद्बीजं तत्तदेव प्ररोहति ॥४०॥

बोया कुछ और उपजा कुछ ऐसा कभी नहीं होता, जो बीज बोये जाते हैं वही उपजते हैं।

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ।
आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ॥४१॥

इसलिये ज्ञान-विज्ञानका जाननेवाला विनीत विद्वान, जो दीर्घ आयु चाहता हो, कभी परस्त्रीमें बीज न बोवे।

अत्र गाथा वायुगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे ॥४२॥

भूतकालको जाननेवाले इस विषयमें वायुकी गायी हुई गाथाएं कहते हैं कि दूसरे पुरुषको दूसरेकी स्त्रीमें बीज नहीं बोना चाहिये।

नश्यतीषुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्ध्यतः।
तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परपरिग्रहे ॥४३॥

एकके बेधे हुए हिरनके निशानेपर दूसरेका प्रक्षिप्त बाण जैसे निष्फल होता है (पहले जिसकी गोली लग चुकी है, उसीका सावज होता है) वैसे ही पराई स्त्रीमें बोया हुआ बीज शीघ्र निष्फल होता है; क्योंकि गर्भधारणके अनन्तर क्षेत्रस्वामीका ही उस गर्भपर पूरा अधिकार होता है, बीज बोनेवालेका नहीं।

पृथोरपीमां पृथिवीं भार्यां पूर्वविदो विदुः।
स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥४४॥

पूर्व समयके पण्डितगण इस पृथ्वीको पृथुकी भार्य्या कहते हैं। जो जिस भूमिका परिष्कार करता है, वह भूमि क्षेत्ररूपसे उसीकी होती है। जैसे मृगपर जिसका बाण पहले लगता है, उसीका वह होता है।

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह।
विप्रा प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ॥४५॥

स्त्री, अपना शरीर और सन्तति, ये तीनों मिलकर पुरुष होता है। वेद जाननेवाले ब्राह्मण कहते हैं कि जो भार्या है, वही भर्ता है अर्थात् भार्या और भर्तामें कुछ भेद नहीं है। (इसलिये स्त्रीमें उत्पादित सन्तान उसके स्वामीकी ही होती है)।

न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या विमुच्यते।
एवं धर्मं विजानीमः प्राक्प्रजापतिनिर्मितम् ॥ ।४६॥

बेच डालने या त्याग देनेसे स्त्री पतिके पत्नीत्वसे पृथक् नहीं

होती । प्रजापतिके द्वारा निर्मित इस धर्मको हमलोग अच्छी तरह जानते हैं ।

**सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते ।**

**सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् ॥४७॥**

पैतृक धनका विभाग भाइयोंमें एक ही वार होता है, कन्या एक ही वार दी जाती है, दान एक ही वार दिया जाता है अर्थात् ये तीनों सज्जनोंके लिये एकसे दो वार नहीं होते ।

**यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च ।**

**नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि ॥४८॥**

जैसे गाय, घोड़ी, ऊंटनी, भैंस, बकरी, भेड़ी और दासीमें बच्चा पैदा करनेवाले वृषभ आदिके स्वामी सन्तानभागी नहीं होते, वसे परस्त्रीमें उत्पन्न करनेसे पुरुष भी सन्तानका भागी नहीं होता ।

**येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः ।**

**ते वै सस्यस्य जातस्य न लभन्ते फलं क्वचित् ॥४९॥**

जो खेतका मालिक नहीं है वह दूसरेके खेतमें धान बोवे तो वह उस खेतकी पैदावार किसी हालतमें नहीं पा सकता । ( वैसे परस्त्रीमें सन्तान पैदा करनेवालेका उस सन्तानपर कोई अधिकार नहीं रहता । )

**यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् ।**

**गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कन्दितमार्षभम् ॥५०॥**

दूसरेकी गौओंमें वृषभ सौ बछड़े भी पैदा करे तो वे बछड़े उन गौओंके स्वामीके ही होते हैं, वृषभस्वामीके नहीं । वृषभका वह वीर्य्यसींचन उसके स्वामीके लिये व्यर्थ होता है ।

**तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः ।**

**कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम् ॥५१॥**

उसी प्रकार दूसरेके खेतमें बोनेवालोंका बीज व्यर्थ जाता है। उनका वह बीज क्षेत्रस्वामियोंके ही निमित्त होता है। बीजवाला उस फलको नहीं पाता।

फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा।
प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी ॥५२॥

खेतवालों और बीज बोनेवालोंमें खेतकी उपजके सम्बन्धमें कोई बात पक्की न हो तो खेतवालोंकी ही वह उपज होगी, क्योंकि बीजसे खेत श्रेष्ठ है।

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते।
तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च ॥५३॥

इस खेतमें जो उपज होगी वह हमारी तुम्हारी दोनोंकी होगी, इस नियमपर बीज बोनेके लिये जो खेत दिया जाता है, उस खेतकी उपजमें क्षेत्रस्वामी और बीज बोनेवाले दोनोंका ही हक देखा जाता है।

ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति।
क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वप्ता लभते फलम् ॥५४॥

जलके प्रवाह और वायुसे किसी दूसरेके खेतसे आया हुआ बीज भी उसी खेतवालेका होता है जिसमें वह उगता है, जिस खेतसे आया उस खेतके मालिकका नहीं।

एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च।
विहंगमहिषीणां च विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥५५॥

यह नियम गौ, घोड़ी, दासी, ऊंटनी, भेड़ बकरी, पक्षी और भैंसकी सन्तानोंके लिये भी जानना चाहिये।

एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्तितम्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममापदि ॥५६॥

यह बीज-क्षेत्रकी प्रधानता और अप्रधानता तुमसे कही, इसके अनन्तर अब स्त्रियोंके आपत्कालका धर्म कहेंगे ।

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥५७॥

बड़े भाईकी स्त्रीको छोटा भाई गुरुपत्नी और छोटे भाईकी स्त्रीको बड़ा भाई पतोहूके समान जाने, यह महर्षियोंने कहा है ।

ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥५८॥

बड़ा भाई छोटे भाईको स्त्रीसे और छोटा भाई बड़े भाईकी स्त्रीसे निरापद अवस्थामें नियुक्त होकर भी गमन करनेसे पतित होता है ।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये ॥५९॥

स्त्रीको चाहिये कि सन्तान न होनेपर स्वामी आदि गुरुजनोंकी आज्ञासे नियुक्त होकर देवरसे या सपिण्डके किसी अन्य पुरुषसे अभिलषित सन्तान उत्पन्न करावे ।

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि ।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥६०॥

इस प्रकार नियुक्त पुरुष सारे शरीरमें घी लेपकर रातमें मौन धारणकर विधवामें एक पुत्र उत्पन्न करे, दूसरा कदापि नहीं ।

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः ।
अनिर्वृतं नियोगार्थं पश्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥६१॥

नियोग-विषयके जाननेवाले अन्य आचार्योंका मत है कि एक पुत्रका होना न होनेके बराबर है, इसलिये नियुक्त पुरुष उस स्त्रीमें धर्मपूर्वक द्वितीय पुत्रका उत्पादन करे ।

विधवायां नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि ।
गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् ॥६२॥

विधवामें शास्त्रोचित नियोगका कार्य सम्पन्न हो जानेपर अर्थात् उसके गर्भधारण करनेपर वे दोनों स्त्री-पुरुष आपसमें गुरु और पुत्रवधूकी भांति व्यवहार करें ।

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कामतः ।
तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ ॥६३॥

पर जो कोई शास्त्रविधिको त्यागकर मनमाना आचरण करते हैं वे पुत्रवधू और गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेके पापसे पतित होते हैं ।

नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम् ॥६४॥

द्विजोंको चाहिये कि विधवा स्त्रीका नियोग दूसरेसे न करावे, क्योंकि दूसरे पुरुषसे नियोग करानेवाले उसके पातिव्रतस्वरूप सनातनधर्मको नष्ट कर डालते हैं ।

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥६५॥

वैवाहिक वेदमन्त्रोंमें कहीं नियोगका उल्लेख नहीं है और न विवाह-विधायक शास्त्रोंमें ही विधवाविवाहका जिक्र है ।

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥६६॥

विद्वान् ब्राह्मणोंने इस पशुधर्मकी बड़ी निन्दा की है । अधर्मी वेन राजाके राज्यशासन-समयसे यह पशुधर्म आरम्भ हुआ ।

स महीमखिलां भुञ्जन्राजर्षिप्रवरः पुरा ।
वर्णानां सङ्करं चक्रे कामोपहतचेतनः ॥६७॥

राजर्षियोंमें श्रेष्ठ राजा वेन जो सारी पृथ्वीका भोग कर रहा था, उसने कामसे हतज्ञान होकर वर्णसंकरको प्रथा चलायी।

**ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्।**
**नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥६८॥**

उस समयसे जो लोग अज्ञानवश विधवा स्त्रीको देवर आदिसे सन्तानोत्पत्तिके लिये नियोजित करते हैं, साधुमण्डलीमें उनकी निन्दा होती है।

**यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।**
**तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥६९॥**

वाग्दान हो चुकनेपर जिस कन्याका भावी पति मर जाय, उससे इस ( आगे कहे हुए ) विधानसे उसका देवर विवाह करे।

**यथाविध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्।**
**मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ ॥७०॥**

वह देवर विवाहविधिसे नियोग कर उस पवित्र व्रतवाली श्वेत वस्त्रधारिणी स्त्रीसे गर्भधारण समयतक प्रत्येक ऋतुकालमें एक बार गमन करे।

**न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः।**
**दत्त्वा पुनः प्रयच्छन्हि प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥७१॥**

एकके साथ वाग्दान होनेके अनन्तर ज्ञानी मनुष्य फिर दूसरेको कन्या न दे, क्योंकि एकको देकर फिर दूसरेको देनेसे उसे पुरुषानृत दोषका भागी होना पड़ता है।

**विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्।**
**व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ॥७२॥**

जो कन्या निन्दित, रोगिणी, व्यभिचारादि दोषसे दूषित या

जो छलसे अच्छी बतायी गयी हो, उसे विधिवत् ग्रहण करके भी त्याग सकता है।

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत् ।
तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ॥७३॥

जो पुरुष दोषवाली कन्याका दोष बताये बिना उसे किसीके साथ ब्याह दे तो वह उस दुरात्मा कन्यादाताके दानको लौटाकर व्यर्थ कर दे अर्थात् उस कन्याको अपने पास न रखकर देनेवाले-को सौंप दे।

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः ।
अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥७४॥

कार्य्यार्थी मनुष्य भार्य्याकी वृत्तिका विधान करके देशान्तर गमन करे, क्योंकि भोजन-वस्त्रके अभावसे सुशीला स्त्री भी अन्य पुरुषके सम्पर्कसे दूषित हो सकती है।

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ।
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥७५॥

जीविकाका प्रबंध कर स्वामीके विदेश जानेपर स्त्री नियम-पूर्वक समय बितावे। यदि स्वामी जीविकाका प्रबंध किये बिना जाय तो स्त्रीको चाहिये कि अनिन्दित वृत्तिसे अर्थात् सूत आदि कातकर जीवननिर्वाह करे।

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।
विद्यार्थं षट् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥७६

धर्मकार्यके लिये स्वामी विदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या या यशके निमित्त गया हो तो छः वर्ष, और विषयवासनासे गया हो तो तीन वर्षतक उसके आगमनकी प्रतीक्षा करे। (पीछे वह स्वयं पतिके पास जाय।)

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः ।
ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत् ॥७७॥

द्वेष करनेवाली स्त्रीकी प्रतीक्षा उसका पति एक वर्षतक करे, उसके बाद भी यदि उसकी द्वेषबुद्धि न जाय तो पति अपना दिया हुआ भूषण आदि हरण कर उसके साथ समागम न करे।

अतिक्रामेत्प्रमत्तं या मत्तं रोगार्तमेव वा ।
सा त्रीन्मासान्परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥७८॥

जो स्त्री जुआ आदि खेलोंमें भूले हुए, मतवाले या रोगपीड़ित पतिकी सेवा न कर उसका अनादर करे, उसको उसका पति तीन मासतकके लिये त्याग दे और उससे वस्त्र-आभूषण आदि रखना ले

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम् ।
न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम् ॥७९॥

पतिके पागल, पतित, नपुंसक, वीर्यहीन, और कुष्ठ आदि पापरोगोंसे युक्त होनेके कारण स्त्री परिचर्या न करे तो उसका त्याग नहीं करना चाहिये और न उसके गहने लेने चाहिये।

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत् ।
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्रार्थघ्नी च सर्वदा ॥८०॥

यदि स्त्री मद्य पीनेवाली, बुरा आचरण करनेवाली, स्वामीकी आज्ञाके विपरीत चलनेवाली, कुष्ठरोगादिसे युक्त, हिंसास्वभाव वाली, और सर्वदा अपरिमित खर्च करनेवाली हो तो उसका स्वामी उसके रहते दूसरा व्याह कर सकता है।

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥८१॥

स्त्री वन्ध्या हो तो आठवें वर्षमें, मृतवत्सा हो तो दसवें वर्षमें,

केवल कन्या प्रसविनी हो तो ग्यारहवें वर्षमें और अप्रियवादिनी (अपुत्रिणी) हो तो पतिको शीघ्र ही दूसरा व्याह कर लेना चाहिये।

या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः।
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥८२॥

जिस रोगिणी स्त्रीको अपने पतिमें प्रेम हो और जो शील-वती हो, उसकी आज्ञा लेकर पति दूसरा व्याह करे और कभी उसका अपमान न करे।

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात्।
सा सद्यः संनिरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसंनिधौ ॥८३॥

स्वामीके दूसरा व्याह कर लेनेपर जो स्त्री रुष्ट होकर घरसे निकल भागे उसे शीघ्र पकड़कर घरके भीतर बन्द कर रखना चाहिये अथवा उसे उसके बापके घर भिजवा देना चाहिये।

प्रतिषिद्धापि चेद्या तु मद्यमभ्युदयेष्वपि।
प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट् ॥८४॥

जो स्त्री पतिसे रोकी जानेपर भी उत्सवोंमें मद्य पीये या तमाशा आदि देखनेके लिये जाय तो राजा उसे छः कृष्णल दण्ड करे।

यदि स्वाश्चापराश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः।
तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यं पूजा च वेश्म च ॥८५॥

कोई द्विजाति ( ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ) सजातीय और विजातीय दोनों कन्याओंके साथ व्याह करे तो उन स्त्रियोंमें वर्ण-क्रमसे छुटाई-बड़ाई और भूषण-वस्त्र तथा गृह आदिकी व्यवस्था होती है।

भर्तुःशरीरशुश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम्।
स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन ॥८६॥

सब वर्णोंके लिये यह नियम है कि स्वामीके शरीरकी सेवा और नित्यका धर्मकार्य सजातीय स्त्री करे, विजातीया कदापि न करे ।

यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यया ।
यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः ॥८७॥

जो पुरुष सजातीया स्त्रीके रहते मोहवश विजातीयासे देह-सेवा कराता है वह ब्राह्मणीमें शूद्रसे उत्पन्न ब्राह्मण-चाण्डालके सदृश है, यह पूर्व ऋषियोंका मत है ।

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥८८॥

उत्तम कुलवाला, सुन्दर, सजातीय वर मिल जाय तो कन्या ब्याहने योग्य न होनेपर भी उसे उस वरके साथ विधिपूर्वक ब्याह दे ।

काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥८९॥

कन्या ऋतुमती होनेपर भी आजीवन पिताके घरमें कुमारी रहे यह अच्छा है, किन्तु उसे गुणहीन (मूर्ख) वरको कदापि न दे ।

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥९०॥

कन्या ऋतुधर्म होनेके तीन वर्षतक अच्छे कुलशीलवाले विद्वान वरकी प्रतीक्षा करे। इसके बाद मनोनुकूल वर न मिलने-पर समान जाति-गुणवाले वरको स्वयं वरण करे।

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ।
नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति ॥९१॥

पिता भ्राता आदि द्वारा जिसका विवाह नहीं हुआ ऐसी कुमारिका

यदि विहित समयपर स्वयं पतिको वरण करे तो इससे उसे या उसके पतिको कुछ भी पाप नहीं होता।

अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयंवरा।

मातृकं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥९२॥

स्वयंवर करनेवाली कन्या, पिता, माता या भाईका दिया हुआ पहलेका अलंकार न ले, यदि ले तो वह चोर समझी जायगी।

पित्रे न दद्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमतीं हरन्।

स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात् ॥९३॥

ऋतुमती कन्यासे व्याह करनेवाला वर उसके पिताको शुल्क न दे, क्योंकि ऋतु प्राप्त होनेपर उसका व्याह न कर देनेके कारण सन्तानोत्पत्तिके निरोधसे पिताका कन्यापर दायित्व नहीं रहता।

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्।

त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥९४॥

तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी सुन्दरी कन्यासे अथवा चौबीस वर्षका युवा आठ वर्षकी बालिकासे विवाह करे। शीघ्रता करनेवाला गार्हस्थ्य धर्ममें क्लेश पाता है।

देवदत्तां पतिर्भार्यां विन्दते नेच्छयात्मनः।

तां साध्वीं बिभृयान्नित्यं देवानां प्रियमाचरन् ॥९५॥

पति अपनी इच्छासे पत्नी न पाकर देवताकी दी हुई भार्या पाता है। इसलिये देवताओंके प्रीत्यर्थ उस साध्वी स्त्रीका नित्य पालन करे।

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवाः।

तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥९६॥

ब्रह्माने गर्भग्रहणके लिये स्त्रियोंको और गर्भाधानके लिये पुरुषों-

को बनाया है। इसलिये वेदमें कहा है कि साधारण धर्म भी स्त्रीके साथ करना चाहिये।

कन्यायां दत्तशुल्कायां म्रियेत यदि शुल्कदः ।
देवराय प्रदातव्या यदि कन्यानुमन्यते ॥९७॥

कन्याके निमित्त शुल्क देकर यदि शुल्क देनेवाला विवाह करनेके पहले ही मर जाय तो कन्याकी अनुमतिसे उसे उसके देवरके साथ व्याह दे।

आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददन् ।
शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥९८॥

शूद्र भी कन्यादानमें शुल्क न ले, क्योंकि शुल्क लेनेवाला कन्या-दानके बदले छिपकर कन्याविक्रय करता है।

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः ।
यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥९९॥

ऐसा न तो पहले किसी सज्जनने किया और न कोई वर्त-मान कालमें ही कर रहा है, जो किसीको कन्या देनेका अङ्गीकार करके किसी दूसरेको दे दे।

नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ।
शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम् ॥१००॥

हमने पूर्वकल्पमें भी कभी यह नहीं सुना कि शुल्करूपी मूल्य-के भीतर किसी महात्माने कन्याविक्रयको छिपाया हो।

अन्योन्यस्याव्यभीचारो भवेदामरणान्तिकः ।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥१०१॥

स्त्री-पुरुष दोनों जबतक जीयें, धर्म अर्थ काम्य कर्मोंमें परस्पर अभिन्न होकर रहें, यह स्त्री-पुरुषका संक्षेपसे परम धर्म जानना चाहिये।

तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्ताावितरेतरम् ॥१०२॥

विवाह होनेके अनन्तर स्त्री-पुरुषको सदा ऐसा यत्न करना चाहिये जिसमें धर्म, अर्थ और काम्य विषयमें अलग-अलग रहनेपर भी कोई किसीके विरुद्ध आचरण न करे ।

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः ।
आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निबोधत ॥१०३॥

स्त्री-पुरुषका यह रतियुक्त धर्म और आपद अवस्थामें सन्तानोत्पत्तिकी विधि तुमसे कही अब दायभागकी व्यवस्था सुनो ।

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम् ।
भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः ॥१०४॥

माता-पिताके लोकान्तर गमन करनेपर सब भाई मिलकर बापके धनको बराबर-बराबर बांट लें । माता-पिताकी जीवित अवस्थामें उन्हें धन बांटनेका कोई अधिकार नहीं है ।

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यं धनमशेषतः ।
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥१०५॥

ज्येष्ठ पुत्र ही पिताके सम्पूर्ण धनको ग्रहण करे, शेष सभी उस ज्येष्ठ भाईको पिताके तुल्य जानकर उसकी अधीनतामें रहें ।

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्रीभवति मानवः ।
पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति ॥१०६॥

ज्येष्ठ पुत्रके जन्म लेते ही मनुष्य पुत्रवान होता है और पितृ-ऋणसे उत्तीर्ण होता है, इसलिये वह पिताका सब धन पानेका अधिकारी है ।

यस्मिन्नृणं संनयति येन चानन्त्यमश्नुते ।
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥१०७॥

जिसके जन्म लेनेसे पिता पितृऋणसे मुक्त होता है और जिसके द्वारा मोक्षको प्राप्त होता है, वही धर्मज पुत्र है, अन्य पुत्रोंको महर्षियोंने कामज कहा है।

पितेव पालयेत्पुत्राञ्ज्येष्ठो भ्रातॄन्यवीयसः ।
पुत्रवच्चापि वर्तेरञ्ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥१०८॥

जैसे पिता पुत्रोंका पालन करता है, वैसे बड़ा भाई छोटे भाइयोंका पालन करे। छोटे भाई भी बड़े भाईके साथ पुत्रकी भाँति निश्छल भावसे बर्ताव करें।

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ।
ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः ॥१०९॥

बड़ा भाई चाहे तो कुलको बढ़ा सकता है और चाहे तो वह कुलका नाश कर सकता है। ज्येष्ठ भ्राता संसारमें पूज्यतम है। कोई सज्जन उसकी निन्दा नहीं करता।

यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः ।
अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बन्धुवत् ॥११०॥

जो बड़ा भाई छोटे भाइयोंके साथ अच्छा बर्ताव करता है वह माता-पिताके समान आदरणीय होता है, लेकिन जो ऐसा नहीं करता वह बन्धुके तुल्य सम्मान पाने योग्य है।

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया ।
पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥१११॥

इस प्रकार सब भाई मिलकर एक साथ रहें या धर्मसम्पादनकी इच्छासे पृथक् होकर रहें। पृथक् रहनेसे धर्मकी वृद्धि*होती है

*एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम् ।
एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे ॥ बृहस्पतिः ॥

( पृथक् पृथक् देवकर्म पितृकर्मादि करनेसे ), इसलिये विभाग-क्रिया धर्मसंगत है।

ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम्।
ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥११२॥

धनका बीसवां भाग और सब वस्तुओंमें जो उत्तम हो वह बड़े भाईको देना चाहिये। उसका आधा अर्थात् चालीसवां भाग मंझले भाईको और अस्सीवां भाग सबसे छोटे भाईको देकर जो शेष बचे वह आपसमें बराबर बराबर बांट लें।

ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम्।
येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमे धनम् ॥११३॥

जेठा और सबसे छोटा भाई जैसा ऊपर कहा गया है, अपना अंश ले। ज्येष्ठ कनिष्ठके बीचवाले जितने भाई हों वे प्रत्येक ४०वां अंश लें।

सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः।
यच्च सातिशयं किंचिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् ॥११४॥

जेठा भाई सब धनोंमें उत्तम धन, सब द्रव्योंमेंसे श्रेष्ठ वस्तु और दश पशुओंमेंसे एक अच्छा और पसन्दलायक पशु ले।

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु।
यत्किंचिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्धनम् ॥११५॥

यदि सब भाई गुण-कर्ममें समान हों तो जेठेको दश पशुओंमें जो एक श्रेष्ठ लेनेकी बात पहले कही है, नहीं मिल सकता। केवल उसके सम्मानार्थ कुछ अंश विशेष देना चाहिये।

एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत्।
उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ॥११६॥

इस प्रकार सब भाइयोंके यथायोग्य अंश ले लेनेपर जो बचे वह बराबर बराबर बांट लें। यदि पूर्वकथित अंश न मिले हों तो वे लोग आपसमें आगे कही व्यवस्थाके अनुसार धनका विभाग करें।

एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठः पुत्रोऽध्यर्धं ततोऽनुजः ।
अंशमंशं यवीयांस इति धर्मो व्यवस्थितः ॥११७॥

जेठा भाई दो भाग, उसका छोटा डेढ़ भाग और उसके छोटे जितने भाई हों वे सब एक अंश लें, यह विभागकी व्यवस्था धर्मानुकूल है।

स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् ।
स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः ॥११८॥

अविवाहित बहनोंके लिये सब भाई अपने अपने अंशोंसे अलग दें। जो अपने अंशका चौथा भाग बहनके विवाहके लिये नहीं देते वे पतित होते हैं।

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ।
अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते ॥११९॥

बकरे, भेड़ और घोड़े आदि पशुओंका यदि बराबर भाग न बंट सके तो उनका जो उचित मूल्य हो वह आपसमें बांट लें या बराबर भाग करके जो दो-एक बच जायं वे बड़े भाईको देवें।

यवीयाञ्ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि ।
समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१२०॥

यदि छोटा भाई नियोगके द्वारा जेठे भाईकी स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न करे तो उस पुत्रको भी चचाके बराबर ही हिस्सा मिलेगा, यह धनकी व्यवस्था नियत जानना।

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते ।
पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् ॥१२१॥

जेठेका वह पुत्र क्षेत्रज होनेके कारण जेठेकी भांति अंश ग्रहण नहीं कर सकता। सन्तानोत्पत्तिमें पिता ही प्रधान होता है, इसलिये पूर्वोक्त विभागव्यवस्थाके अनुसार वह क्षेत्रज अपने चचाके समान भागका ही अधिकारी होगा।

पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः।
कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत् ॥१२२॥

यदि पहली विवाहिता स्त्रीमें छोटा पुत्र हो और छोटी स्त्रीमें ज्येष्ठ पुत्र हो तो उन दोनोंमें धन किस प्रकार बांटा जायगा, यदि यह संशय उत्पन्न हो तो—

एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः।
ततोऽपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः ॥१२३॥

प्रथम स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र छोटा होनेपर भी अपने हिस्सेमें एक बैल अधिक ले। इसके और सौतेले भाई जो उम्रमें बड़े हों, उनमें माताकी ज्येष्ठता और न्यूनताके अनुसार जेठाई-छुटाई और तदनुसार ही बांट-बखरा होगा।

ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद्वृषभषोडशाः।
ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा ॥१२४॥

पहली विवाहिता स्त्रीमें ज्येष्ठ पुत्र हो तो वह अपने हिस्सेसे एक गौ और एक बैल अधिक ले। और जितने पुत्र हों वे अपनी माताकी ज्येष्ठताके अनुसार धनका बांट करें, यही धर्म-संगत व्यवस्था है।

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः।
न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥१२५

सजातीय स्त्रियोंमें जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, उनमें जातिकी विशेषता न होनेके कारण माताकी ज्येष्ठताके अनुसार उनकी ज्येष्ठता

नहीं होती, जन्मसे उनकी बड़ाई-छुटाई ली जाती है। अर्थात् जिसका जन्म पहले हुआ वही जेठा है।

जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्राह्मण्यास्वपि स्मृतम् ।
यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥१२६॥

"सुब्रह्मण्याख्य" मन्त्रमें भी जो जन्मसे बड़ा है, उसीके द्वारा इन्द्रका आवाहन कहा है। जोड़े लड़के पैदा होनेपर जिसका जन्म पहले हो उसीको मन्वादि महर्षियोंने ज्येष्ठ कहा है।

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम् ॥१२७॥
[ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ।
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥ ]

पुत्रहीन मनुष्य इस विधिसे बेटीको पुत्रिका करे कि इस कन्यासे जो सन्तान उत्पन्न होगी वह मेरा श्राद्ध करेगी।

( मैं अलङ्कारयुक्त यह भ्रातृहीन कन्या तुमको देता हूं। इसमें जो पुत्र जन्म लेगा, वह मेरे पुत्रके स्थानापन्न होगा )

अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः ।
विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥१२८॥

इस विधिसे स्वयं दक्षप्रजापतिने वंशवृद्धिके लिये पहले पुत्रिका की थी।

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥१२९॥

उस दक्ष प्रजापतिने प्रसन्न मनसे सम्मानपूर्वक दस कन्याएं धर्मराजको, तेरह कश्यपको और सत्ताईस कन्याएं द्विजराज चन्द्रमाको दी थीं।

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥१३०॥

जैसे आत्मा और पुत्रमें कुछ भेद नहीं है, वैसे ही पुत्र और पुत्रीमें भी कुछ भेद नहीं है। उस आत्मरूपिणी पुत्रीके वर्तमान रहते दूसरा कैसे धन ले सकता है?

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः।
दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम् ॥१३१॥

माताके विवाह-समयका जो उसके बाप-भाईका दिया हुआ धन हो वह उसकी अविवाहित कन्याओंको मिलना चाहिये। पुत्र-हीन नानाके सम्पूर्ण धन लेनेका अधिकार उसके दौहित्रको है।

दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्।
स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥१३२॥

दूसरा पुत्र न रहनेसे पिताका भी सम्पूर्ण धन दौहित्रको ही मिलेगा और वही पिता और मातामह दोनोंको पिण्ड देगा।

पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः।
तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः ॥१३३॥

संसारमें दौहित्र और पौत्रमें धर्मतः कुछ विशेषता नहीं है। क्योंकि उन दोनोंके माता-पिता एक ही देहसे उत्पन्न हुए हैं।

पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनु जायते।
समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः १३४

पुत्रिका करनेके बाद यदि पीछे पुत्रका जन्म हो, तो उन दोनोंको धनका अंश बराबर मिलेगा, कन्याकी ज्येष्ठता नहीं होती। अर्थात् उसे पुत्रसे अधिक अंश नहीं मिल सकता।

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन।
धनं तत्पुत्रिकाभर्ता हरेतैवाविचारयन् ॥१३५॥

कदाचित् पुत्रिका अपुत्र ही मर जाय तो उस पुत्रिकाका पति बिना विचारे ही वह धन, जिसकी वह अधिकारिणी थी; ले ले।

अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सदृशात्सुतम्।
पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिंडं हरेद्धनम् ॥१३६॥

मातामह अपुत्र होनेपर पुत्रिका करे चाहे न करे, यदि उसकी पुत्रीके समान जातीय पतिसे पुत्र उत्पन्न हो तो उसी पुत्रसे मातामह पौत्रवान् होगा, वही मातामहका पिण्डदानादि करके धन लेगा।

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम् ॥१३७॥

पुत्रके जन्मसे मनुष्य स्वर्गादि लोकोंको पाता है, पौत्रके जन्मसे स्वर्गमें चिरकालतक अवस्थिति होती है, और प्रपौत्रकी उत्पत्तिसे सूर्यलोकमें निवास करता है।

पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥१३८॥

जिस कारणसे बेटा 'पु'नाम नरकसे पितरोंका त्राण करता है, इस कारण स्वयं ब्रह्माने बेटेको पुत्र कहा है।

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते।
दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत् ॥१३९॥

संसारमें पौत्र और दौहित्रमें कुछ विशेषता नहीं है। दौहित्र भी पौत्रकी तरह मातामहका पिण्डदानादि क्रियासे परलोकमें उद्धार करता है।

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिकासुतः।
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥१४०॥

पुत्रिकाका पुत्र पहला पिण्ड माताको, दूसरा मातामह (नाना) को और तीसरा प्रमातामह (परनाना) को दे ।

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्त्रिमः ।
स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥१४१॥

जो दत्तक पुत्र सब गुणोंसे सम्पन्न है, वह दूसरे गोत्रसे आया हुआ होनेपर भी पिताके सब धनका अधिकारी होता है ।

गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्त्रिमः क्वचित् ।
गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा ॥१४२॥

दत्तक पुत्रको जन्मदाताके गोत्र और धनसे कुछ सम्बन्ध नहीं रहता और जो उसे लेता है उसीको उसका दिया पिण्ड प्राप्त होता है। दत्तक देनेसे पिताका उसके हाथका पिण्ड-पानी पानेका हक नहीं रहता ।

अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् ।
उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातककामजौ ॥१४३॥

विधिपूर्वक नियोग किये बिना अथवा पुत्रके अभावमें जो स्त्री देवरसे पुत्र उत्पन्न करावे, वे दोनों पुत्र जारज और कामज होनेके कारण धनके भागी नहीं हो सकते ।

नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः ।
नैवार्हः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः ॥१४४॥

नियुक्ता स्त्रीमें भी जो पुत्र अविधिसे उत्पन्न होता है, वह पिताका धन पानेका अधिकारी नहीं हो सकता, क्योंकि वह पतितसे उत्पादित हुआ है ।

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ।
क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः ॥१४५॥

नियुक्ता स्त्रीमें जो पुत्र शास्त्रविधिसे उत्पन्न होता है वह औरस

पुत्रके समान पिताके धनका अधिकारी होता है। क्योंकि वह क्षेत्रज पुत्र धर्मसे उत्पन्न किया जाता है।

धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च।
सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥१४६॥

भाईके मर जानेपर जो छोटा भाई उसके धन तथा स्त्रीकी रक्षा करे, वह शास्त्रविधिसे भौजाईमें सन्तान उत्पन्नकर बड़े भाईका सब धन उसको दे दे।

या नियुक्तान्यतः पुत्रं देवराद्वाप्यवाप्नुयात्।
तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥१४७॥

जो स्त्री गुरुजनोंसे नियुक्त होकर देवरसे या किसी अन्य पुरुषसे पुत्र उत्पन्न करावे, वह यदि कामज हो तो पिताके धनका अधिकारी नहीं हो सकता, क्योंकि विद्वान् लोग उसकी उत्पत्तिको वृथा कहते हैं।

एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु।
बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥१४८॥

यह सजातीय स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंके विभागकी व्यवस्था कही है। अब विविध जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंके विभागकी विधि सुनो।

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः।
तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिः स्मृतः ॥१४९॥

ब्राह्मणके यदि चारों वर्णोंकी स्त्रियां हों और उन सबमें पुत्र उत्पन्न हों तो उनके विभागकी व्यवस्था मनुजीने इस प्रकार कही है।

कीनाशो गोवृषो यानमलंकारश्च वेश्म च।
विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः ॥१५०॥

जो पुत्र सवर्णा स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हो उसे हलमें जोतने योग्य

एक मजबूत बैल, सवारीके लिये घोड़ा, गहने, घर और विभागकी वस्तुओंमें जो सबसे अच्छी हो वह देकर जो शेष धन बचे उसे आगे कही हुई व्यवस्थाके अनुसार सब भाई बांट लें।

त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः ।
वैश्याजः सार्धमेवांशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥१५१॥

पिताके धनका साढ़े सात भाग करके तीन भाग ब्राह्मणीका पुत्र, दो भाग क्षत्राणीका पुत्र, डेढ़ भाग वैश्याका पुत्र और एक भाग शूद्राका पुत्र ले।

सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च ।
धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनानेन धर्मवित् ॥१५२॥

अथवा धर्मज्ञ पुरुष सब धनके दस भाग करके आगे कही हुई विधिके अनुसार धर्मपूर्वक बांट दे।

चतुरोऽशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रियासुतः ।
वैश्यापुत्रो हरेद्द्व्यंशमंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥१५३॥

ब्राह्मणीसे जो पुत्र उत्पन्न हो उसे धनका चार अंश, क्षत्रिया स्त्रीसे उत्पन्न पुत्रको तीन अंश, वैश्यासे उत्पन्न पुत्रको दो अंश और शूद्राके पुत्रको एक अंश दे।

यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यसत्पुत्रोऽपि वा भवेत् ।
नाधिकं दशमाद्दद्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ॥१५४॥

ब्राह्मणके द्विजाति स्त्रियोंमें पुत्र विद्यमान हो या न हो, शूद्राके पुत्रको धनके दसवें अंशसे अधिक न दे।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक् ।
यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत् ॥१५५॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यका जो पुत्र शूद्राके गर्भसे उत्पन्न हो वह धनका भागी नहीं होता, पिता जो कुछ उसे दे वही उसका धन होगा।

समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम् ।
उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् ॥१५६॥

द्विजातियोंके सजातीया पत्नियोंमें जितने पुत्र उत्पन्न हों वे जेठे भाईको ज्येष्ठांश देकर जो धन बचे वह सब बराबर बराबर बांट लें ।

शूद्रस्य तु सवर्णैव नान्या भार्या विधीयते ।
तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतं भवेत् ॥१५७॥

शूद्रको दूसरे वर्णकी कन्यासे विवाह करनेका अधिकार न होनेके कारण अपनी समान जातिकी ही भार्या होती है । इसलिये उससें एक सौ पुत्र हों, तोभी पिताकी सम्पत्तिमें सबका अंश बराबर होता है ।

पुत्रान्द्वादश यानाह नृणां स्वायंभुवो मनुः ।
तेषां षड्बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः ॥१५८॥

मनुजीने मनुष्योंके जो बारह प्रकारके पुत्र कहे हैं, उनमें छः सगोत्र और बान्धव दोनों होते हैं और छः सगोत्र न होकर केवल बन्धुमात्र होते हैं । [सगोत्र (गोतिया) को पितरकी पिण्डदानादि क्रिया करने और गोतियाका धन पानेका अधिकार होता है, किन्तु जो गोत्रसे बाहर हो जाते हैं उन्हें गोतियाका धन पानेका हक नहीं रहता ।]

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट् ॥१५९॥

औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न और अपविद्ध, ये छः प्रकारके पुत्र धनके भागी और बान्धव होते हैं ।

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ॥१६०॥

कानीन, सहोढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र, ये छः प्रकारके पुत्र गोत्रके धनाधिकारी नहीं होते, केवल बान्धव होते हैं।

याद्दशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरञ्जलम्।
ताद्दशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरंस्तमः ॥१६१॥

टूटी-फूटी नावसे पार उतरनेमें उतरनेवालेको जैसा अनिष्ट फल मिलता है वैसा ही फल पितरको कुपुत्रोंके द्वारा भवसागर पार करनेमें मिलता है।

यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ।
यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः ॥१६२॥

यदि औरस और क्षेत्रज दोनों पुत्र एक धनके भागी हों तो जिसके पिताका धन है वही उस धनको ले, दूसरा पुत्र (क्षेत्रज) नहीं ले सकता।

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः।
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ॥१६३॥

एक औरस पुत्र ही पिताके धनका उत्तराधिकारी होता है। शेष पुत्रोंको निर्दयता-दोषके निवारणार्थ कुछ जीविका देनी चाहिये।

षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृकाद्धनात्।
औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेव वा ॥१६४॥

औरस पुत्र पिताकी सम्पत्ति बांटते समय क्षेत्रजको छठा या पांचवां अंश दे।

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ।
दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥१६५॥

औरस और क्षेत्रज, ये दोनों पितृधनके भागी होते हैं। अन्य दत्तक आदि दशविध पुत्र क्रमसे गोत्रधनके अंशाधिकारी होते हैं अर्थात् पूर्वके अभावमें परवर्त्तीको धनका अंश लेनेका हक होता है।

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम्।
तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥१६६॥

वेदविधिसे विवाहिता स्त्रीमें पिता जिस पुत्रको स्वयं उत्पन्न करे, उसे सब पुत्रोंमें मुख्य औरस जानना चाहिये।

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा।
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥१६७॥

मृत, रोगी या नपुंसककी स्त्रीमें शास्त्रविधिसे नियोगके द्वारा उत्पन्न पुत्रको महर्षियोंने क्षेत्रज कहा है।

माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि।
सदृशं प्रीतिसंयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः ॥१६८॥

माँ-बाप जिस सजातीय पुत्रको अपनी खुशीसे जलसे उत्सर्ग कर किसीको पुत्राभावरूपी आपत्कालमें दे देते हैं, उस पुत्रको दत्तक जानना।

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम्।
पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥१६९॥

जिस सजातीय, गुण-दोषके जाननेवाले, पुत्रके गुणोंसे युक्त बालकको पुत्र मानकर ग्रहण किया जाता है, उसे कृत्रिम पुत्र कहते हैं।

उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः।
स गृहे गूढ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥१७०॥

जिसके घरमें लड़केका जन्म हो, परन्तु उसकी पैदाइश किससे हुई यह किसीको मालूम न हो, वह गूढ़ोत्पन्न पुत्र उसका होगा, जिसकी स्त्रीमें वह उत्पन्न हुआ है।

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा।
यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते ॥१७१॥

माता-पितासे या उन दोनोंमें किसी एकसे त्यागे हुए पुत्रको ग्रहण कर जो उसे पालता है उसका वह अपविद्ध पुत्र कहलाता है।

पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः।
तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥१७२॥

बापके घरमें कुमारी कन्या छिपकर जिस पुत्रको जनती है, वह कानीन नामका पुत्र उसका होता है जो उस कन्यासे व्याह करता है।

या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा सती।
वोढुः स गर्भो भवति सहोढ इति चोच्यते ॥१७३॥

गर्भवती कन्याके गर्भकी बात जानकर या न जानकर जो उसके साथ व्याह करता है, उसका वह सहोढ़ पुत्र कहलाता है।

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमन्तिकात्।
स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ॥१७४॥

माता-पितासे जो पुत्र सन्तानार्थ खरीदा जाता है, वह सजातीय हो या विजातीय, उसका क्रीत पुत्र होता है।

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥१७५॥

जो स्त्री पतिसे त्यागी जानेपर या विधवा होनेपर अपनी इच्छासे फिर दूसरेकी जोरू बनकर लड़का पैदा करे वह उस जन्मदाताका पौनर्भव पुत्र कहलाता है।

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥१७६॥

यदि वह विधवा अक्षतयोनि हो तो दूसरे पुरुषके पास जाकर फिर उसके साथ व्याह कर सकती है या पतिसे त्यागी जानेपर

वह पतिके पास लौट आवे तो पति फिर उसके साथ ब्याह कर सकता है। वह स्त्री पुनर्विवाह होनेसे पुनर्भू कहलायेगी।

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ।
आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः ॥१७७॥

माता-पिताहीन या माता-पितासे निष्कारण परित्यक्त पुत्र अपनेको जिसे दे डाले, उसका वह स्वयंदत्त पुत्र कहा जाता है।

यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम् ।
स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः ॥१७८॥

ब्राह्मण कामवश विवाहिता शूद्रामें जो पुत्र उत्पन्न करता है उसे पारशव कहते हैं, क्योंकि वह जीता रहनेपर भी 'शव' के समान अर्थात् मुर्देके बराबर है।

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ।
सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः ॥१७९॥

दासीमें या दासकी दासीमें शूद्रका जो पुत्र उत्पन्न हो, वह पितासे आज्ञा पाकर धनका सम भाग ले; यह धर्मशास्त्रकी व्यवस्था है।

क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान् ।
पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ॥१८०॥

पण्डितोंके पूर्वोक्त क्षेत्रज आदि ग्यारह प्रकारके पुत्रोंको पुत्रके प्रतिनिधिरूप कहनेका अभिप्राय यह है कि जिसमें पितरोंकी पिण्ड-दानादि क्रियाका लोप न हो।

य एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः ।
यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥१८१॥

औरस पुत्रका प्रसङ्ग आनेपर जो दूसरेके बीजसे उत्पन्न पुत्र

कहे गये हैं, वे जिसके बीजसे उत्पन्न हुए हों उन्हींके पुत्र होते हैं, दूसरेके नहीं।

भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत्।
सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥१८२॥

एक ही माता-पितासे उत्पन्न अनेक भाइयोंमें यदि एक पुत्रवान हो तो उसी एक पुत्रसे सब सपुत्र होते हैं, ऐसा मनुजीने कहा है।

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत्।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः ॥१८३॥

सब सपत्नियोंमें यदि एक ही स्त्रीके पुत्र हो तो मनुजीने उसी पुत्रसे सब स्त्रियोंको पुत्रवती कहा है।

श्रेयसः श्रेयसोऽलाभे पापीयान्रिक्थमर्हति।
बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥१८४॥

श्रेष्ठ पुत्रके अभावमें अधम पुत्रोंमें जो अच्छा हो वह पिताके धनका अधिकारी हो सकता है। यदि बहुतसे पुत्र एक समान हों तो सभी धनके भागी होते हैं।

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः।
पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च ॥१८५॥

पिताके धनाधिकारी पुत्र ही होते हैं। उसके सगे भाई या पिता चचा आदि नहीं होते, परन्तु पुत्रहीन होनेपर उसकी सम्पत्ति उसके भाई या पिता ले सकते हैं।

त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते।
चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥१८६॥

पिता, पितामह और प्रपितामह, इन तीनोंको पिण्ड पानी देनेचौथा कोई होता है, पांचवेंका इसमें कोई सम्बन्ध नहीं।

अनन्तरः सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत् ।
अत ऊर्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥१८७॥

सपिण्डमें जो जितना समीपी होता है, गोतियाके धनपर उसका उतना अधिक अधिकार होता है। सपिण्डमें कोई अधिकारी न रहनेपर सकुल्य, आचार्य, या शिष्य क्रमसे धनके अधिकारी होते हैं।

सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा रिक्थभागिनः ।
त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ॥१८८॥

इन सबके अभावमें जो ब्राह्मण तीनों वेदोंके जाननेवाले, शुद्ध-हृदय और जितेन्द्रिय हों वे धनके भागी होते हैं, इससे मृत धनीके श्राद्धादि कर्मकी हानि नहीं होती।

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ।
इतरेषां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥१८९॥

अपुत्र ब्राह्मणका धन राजाको कभी न लेना चाहिये, यह शास्त्रकी सनातन मर्यादा है। अन्य वर्णोंका धन अधिकारियोंके अभावमें राजा ले सकता है।

संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् ।
तत्र यद्रिक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ॥१९०॥

जिस स्त्रीका पति मर जाय और कोई सन्तान न हो तो वह सगोत्रसे यथाविधि पुत्र ग्रहण कर अपने पतिका सब धन उस पुत्रको देदे।

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने ।
तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्स गृह्णीत नेतरः ॥१९१॥

एक ही मातामें दो पिताओंसे उत्पन्न दो पुत्र यदि मातृधनके लिये विवाद करें तो उन दोनोंमें जिसके पिताका धन हो वही उस धनको ले, दूसरा नहीं।

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः।
भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ॥१९२॥

माताके मर जानेपर सभी सगे भाई और अविवाहिता बहन मातृधनको बराबर बांट लें।

यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः।
मातामह्या धनात्किंचित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥१९३॥

विवाहिता बहनकी कुंवारी कन्याओंको भी मातामही (नानी) के धनमेंसे उनके सन्तोषार्थ प्रसन्नतापूर्वक कुछ देना चाहिये।

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।
भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥१९४॥

अध्यग्नि, अध्यावाहनिक, प्रीतिप्रदत्त, भ्रातृदत्त, मातृदत्त और पितृदत्त, ये छः प्रकारके स्त्रीधन कहे गये हैं।

अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत्।
पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥१९५॥

पतिने प्रसन्न होकर स्त्रीको जो अन्वाधेय* दिया हो, पतिकी जीवित अवस्थामें स्त्री मर जाय तो उसका सब धन उसकी सन्तानका होता है।

ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्वसु।
अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ॥१९६॥

ब्राह्म, दैव, आर्ष, गान्धर्व और प्राजापत्यकी विधिसे व्याही हुई स्त्रीका धन उसके निःसन्तान मरनेपर उसके पिताका ही होगा, यह मन्वादि महर्षियोंकी सम्मति है।

---

* विवाहात्परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुले स्त्रिया।
अन्वाधेयं तदुक्तं तु सर्वबन्धुकुले तथा ॥ कात्यायनः ॥

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु ।
अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥१९७॥

आसुर आदि विवाहोंमें स्त्रीको जो धन दिया जाता है वह उसके निःसन्तान मरनेपर उसके मां-बापको मिलना चाहिये ।

स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन ।
ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥१९८॥

ब्राह्मणकी अनेक वर्णोंकी स्त्रियोंके जो कुछ धन उनके बापके दिये हों, यदि वे सन्तानरहित मर जायं तो उनका धन ब्राह्मणी सौतकी कन्याको या उसकी सन्तानको मिलना चाहिये ।

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात् ।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥१९९॥

विविध कुटुम्बियोंके साधारण धनमेंसे स्त्रियोंको द्रव्य-संग्रह नहीं करना चाहिये ; और पतिकी आज्ञा बिना अपने धनमेंसे भी कुछ पैसा जमा करना उचित नहीं है ।

पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलङ्कारो धृतो भवेत् ।
न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते । ॥२००॥

पतिकी जीवित अवस्थामें उसकी सम्मतिसे स्त्रियोंने जो भूषण धारण किये हों, पतिके मरनेपर धन बांटते समय दायाद उसे न बांटें, बांटनेवाले पतित होते हैं ।

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ।
उन्मत्तजडमूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥२०१॥

जो नपुंसक, पतित, जन्मान्ध, जन्मबधिर, पागल, अचेष्ट, गूंगे और लूले-लंगड़े हैं उन्हें पिताके धनका अंश नहीं मिलता, (वे केवल भोजन-वस्त्र पानेके भागी हैं ।)

सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा ।
ग्रासाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥२०२॥

विचारवानको उचित है कि इन नपुंसक आदि असमर्थोंको जीवनपर्यन्त यथाशक्ति भोजन-वस्त्र दे, नहीं देनेसे पाप होता है।

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथचन ।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति ॥२०३॥

यदि इन क्लीबादिकोंको कदाचित् विवाहकी इच्छा हो और विवाहिता स्त्रीमें क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न हो तो वह धनका भागी हो सकता है।

यत्किंचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति ।
भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालितः ॥२०४॥

पिताके मरनेपर भाइयोंके साथ एक घरमें रहकर बड़ा भाई कुछ धन उपार्जन करे तो विद्याभ्यास करनेवाले छोटे भाइयोंको उसका अंश मिलेगा, अन्य भाइयोंको नहीं।

अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत् ।
समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ॥२०५॥

जो भाई पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे यदि खेती और वाणिज्यसे धन एकत्र करें तो उसमें सब भाइयोंको बराबर अंश मिलेगा, परन्तु पितृधनमें नहीं।

विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् ।
मैत्र्यमौद्वाहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥२०६॥

विद्या, मैत्री और विवाहके द्वारा तथा मधुपर्कके समय जिसे जो धन मिलता है वह उसीका होता है, यह धर्मशास्त्रकी व्यवस्था है।

भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्मणा ।

स निर्भाज्यः स्वकादंशात्किंचिद्दत्त्वोपजीवनम् ॥२०७॥

भाइयोंमें जो राजसेवा आदि कर्मसे धनोपार्जनमें समर्थ होनेके कारण बापके धनका अंश न लेना चाहे तो भी उसे उसके अंशका कुछ धन देकर अलग कर दे, इसलिये कि फिर कोई कलह उपस्थित न हो ।

अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जितम् ।

स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति ॥२०८॥

बापके धनको अक्षुण्ण रखकर अपने परिश्रम और उद्योगसे प्राप्त किया हुआ धन इच्छा न होनेपर वह किसी भाईको नहीं दे सकता ।

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात् ।

न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धमकामः स्वयमर्जितम् ॥२०९॥

अप्राप्त पैतृक सम्पत्तिको यदि पिता किसी तरह प्राप्त करे तो उसका वह निज-अर्जित धन उसकी मर्जीके बिना कोई पुत्र नहीं बांट सकता ।

विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्यदि ।

समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥२१०॥

अलग होनेके बाद सब भाई एक साथ होकर फिर जुदा होना चाहें तो पुनः सारी सम्पत्तिको बराबर-बराबर बांट लें, इसमें ज्येष्ठ पुत्रको ज्येष्ठांश नहीं मिलेगा ।

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः ।

म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते ॥२११॥

जिन भाइयोंका जेठा या छोटा भाई धन बांटते समय मरने

या कहीं चले जानेके कारण अपना भाग न ले सके तो इससे उसका भाग लुप्त न होगा ।

सोदर्या विभजेरंस्तं समेत्य सहिताः समम् ।

भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः ॥२१२॥

(उसका अंश उसके बेटेको दे देना चाहिये । बेटेके अभावमें) सब सहोदर भाई-बहनें आपसमें उस अंशको बराबर-बराबर बांट लें ।

यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन्यवीयसः ।

सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥२१३॥

जो बड़ा भाई लोभसे छोटे भाइयोंको ठगे वह न तो सम्मान-के योग्य और न ज्येष्ठांश पाने योग्य है, बल्कि वह राजासे दण्ड पाने योग्य है ।

सर्वं एव विकर्मस्था नार्हन्ति भ्रातरो धनम् ।

न चादत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥२१४

भाइयोंमें कोई जुआ या वेश्यागमन आदि कुकर्मोंमें आसक्त हो तो वह धनका भागी नहीं हो सकता और जेष्ठ भाई छोटे भाइयोंको धनका अंश न देकर स्वयं उसे हड़प न कर ले ।

भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ।

न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथंचन ॥२१५॥

यदि साझेमें रहकर सब भाई धन एकत्र करें तो उसमें पिता एकको थोड़ा और एकको अधिक न दे ।

ऊर्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम् ।

संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैः सह ॥२१६॥

यदि पिता अपने जीवनकालमें पुत्रोंकी इच्छासे धन बांट दे और उसके बाद फिर पुत्र उत्पन्न हो तो पिताके मरनेपर वह

पिताका ही अंश पावेगा। और जो पुत्र विभक्त होनेपर फिर पिताके साथ मिलकर रहें, वे पिताकी मृत्युके अनन्तर इस नवजात बालकको साथ मिलाकर धनका समान अंशोंमें विभाग करें।

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ।
मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥ २१७॥

निःसन्तान पुत्रका हिस्सा उसकी माताको मिलेगा। माताके अभावमें वह धन उसकी दादी ( पिताकी मां ) पावेगी।

ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि ।
पश्चाद्दृश्येत यत्किंचित्तत्सर्वं समतां नयेत् ॥२१८॥

सारी सम्पत्ति और ऋण विधिपूर्वक आपसमें बंट जानेपर यदि पीछे पिताका कुछ धन या ऋण दिखाई दे तो उसे भी आपसमें समान भागसे बांट लें।

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः ।
योगक्षेमं प्रचारं च न विभाज्यं प्रचक्षते ॥२१९॥

वस्त्र, वाहन, जेवर, पकवान, कुएं-पोखरका जल, दासी आदि स्त्रियाँ, पुरोहित और गौओंके आने-जानेका मार्ग, इन सबको मनुजी ने अविभाज्य कहा है, अर्थात् ये सब बांटने योग्य नहीं हैं।

अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च क्रियाविधिः ।
क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्मं निबोधत ॥२२०॥

यह तुमसे क्षेत्रज आदि पुत्रोंकी क्रियाविधि और विभागका विषय क्रमसे कहा, अब द्यूतकी व्यवस्था सुनो।

द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ।
राजान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥२२१॥

राजा अपने राज्यमें जुआ और समाह्वयको रोक दे, क्योंकि ये दोनों दोष राजाओंके राज्यका अन्त करनेवाले हैं।

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवनसमाह्वयौ ।
तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥२२२॥

क्योंकि जुआ और समाह्वय दोनों प्रत्यक्ष चोरी हैं, इसलिये राजा उन दोनोंके रोकनेमें सदा यत्नवान् हो।

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ।
प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥२२३॥

जड़ वस्तु जैसे पासे आदिसे जो जूआ खेला जाता है उसे लोग द्यूत कहते हैं और भेड़, तीतर, बटेर आदि प्राणियोंकी बाजी लगाकर खेलनेका नाम समाह्वय है।

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात्कारयेत वा ।
तान्सर्वान्घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥२२४॥

जो द्यूत या समाह्वय करे या दूसरोंसे करावे, राजा उन सबको हस्तच्छेदन आदि कठोर दण्ड दे। और जो शूद्र यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणोंका चिह्न धारण करे उसे भी दैहिक दण्ड दे।

कितवान्कुशीलवान्क्रूरान्पाषण्डस्थांश्च मानवान् ।
विकर्मस्थाञ्छौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात् ॥२२५॥

जुआरी, नट, दुष्ट, वेदनिन्दिक, कुकर्मी और मद्य बनानेवालोंको राजा शीघ्र अपने राज्यसे निकाल दे।

एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः ।
विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥२२६॥

ये जुआरी आदि गुप्त चोर राज्यमें रहकर छल-प्रपञ्चसे नित्य सज्जनोंको सताते हैं।

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ।
तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥२२७॥

यह द्यूत पूर्व कल्पमें भी अत्यन्त विरोधकारक हुआ है, इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य मन बहलानेके लिये भी कभी जुआ न खेले ।

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत यो नरः ।
तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥२२८॥

जो मनुष्य छिपकर या प्रकटरूपसे जुआ खेले, राजा उसे यथेष्ट दण्ड करे ।

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमशक्नुवन् ।
आनृण्यं कर्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैः शनैः ॥२२९॥

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये दण्ड देनेमें असमर्थ हों तो राजा इनसे दण्डके बदलेमें उचित कार्य करावे । ब्राह्मणसे कार्य न कराकर धीरे-धीरे दण्ड वसूल कर ले ।

स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् ।
शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥२३०॥

स्त्री, बालक, उन्मत्त, बूढ़ा, दरिद्र और रोगियोंको राजा बेंत, बांसकी कमची या रस्सीसे दण्ड दे ।

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम् ।
धनोष्मणा पच्यमानास्तान्निःस्वान्कारयेन्नृपः ॥२३१॥

जो राजकर्मचारी घूस लेकर कार्यकर्त्ताओंके कार्यको नष्ट करें, राजा उनका सर्वस्व हरण कर उन्हें दरिद्र कर दे ।

कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनां च दूषकान् ।
स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ॥२३२॥

छलसे राजाके नामपर मिथ्या शासन करनेवालों, प्रजाओंको बिगाड़नेवालों, स्त्री-बालक और ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेवालों और शत्रुसेवियोंको राजा मरवा डाले ।

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र क्वचन यद्भवेत्।
कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्भूयो निवर्तयेत् ॥२३३॥

जिस किसी ऋणादि व्यवहारमें जो कार्य शास्त्रकी व्यवस्थासे निर्णीत किया गया हो और दण्डपर्यन्त जो कुछ कार्रवाई की गयी हो उसे स्वीकार कर फिर न बदले।

अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः कार्यमन्यथा।
तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् ॥२३४॥

मन्त्री या न्यायकर्त्ता जिस कार्यको सम्यक् प्रकारसे न करे उसे राजा स्वयं करे और उन्हें एक हजार पण दण्ड करे।

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः।
एते सर्वे पृथग्ज्ञेया महापातकिनो नराः ॥२३५॥

ब्रह्मघाती, मद्यपायी, चोर, गुरुपत्नीमें गमन करनेवाला, इन सबको महापातकी जानना।

चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम्।
शारीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥२३६॥

ये पूर्वोक्त चारों महापातकी यदि प्रायश्चित्त न करें तो राजा उन्हें आगे कहे धर्मसम्बन्धी आर्थिक और शारीरिक दण्ड दे।

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः।
स्तेये च श्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥२३७॥

गुरुपत्नीगामीके ललाटपर तपे हुए लोहेसे भगका, मद्यपायीके ललाटपर मद्यपात्रका, चोरके ललाटपर कुत्तेके पंजेका और ब्रह्मघातीके ललाटपर मस्तकहीन पुरुषका चिह्न करवा दे।

असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याविवाहिनः।
चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥२३८॥

उन महापापियोंको भोजन न दे, उनकी पुरोहिती न करे, उनको न पढ़ावे, उनके साथ कन्यादान आदि सम्बन्ध न करे। वे सब धर्मोंसे बहिष्कृत होकर सारे संसारमें मारे-मारे फिरें।

ज्ञातिसम्बन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ।
निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥२३९॥

इन चिह्नित महापापियोंको बन्धुवर्ग स्वजन-परिजन [सभी लोग त्याग दें, इनपर दया न करें और न इनको नमस्कार ही करें, यह मनुमहाराजकी आज्ञा है।

प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्ववर्णा यथोदितम् ।
नाङ्क्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् ॥२४०॥

शास्त्रविहित प्रायश्चित्त करनेपर वह चाहे किसी वर्णका हो, राजा उसके ललाटपर दाग न दे। उन्हें उत्तम साहस दण्ड करे।

आगःसु ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः ।
विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः ॥२४१॥

इन पूर्वोक्त अपराधोंमें ब्राह्मणको मध्यम साहस दण्ड करना चाहिये—अथवा उसे रुपये-पैसे और कपड़के साथ राज्यसे बाहर कर दें।

इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्यकामतः ।
सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् ॥२४२॥

ब्राह्मणसे अतिरिक्त वर्ण यदि अनिच्छासे उन पापोंको करे तो राजा उनका सर्वस्व ले ले, यदि कामसे करे तो उन्हें देशसे निर्वासित कर दे।

नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् ।
आददानस्तु तल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते ॥२४३॥

धार्मिक राजा महापापियोंका धन न ले। लोभसे धन लेनेवाला उसी पापसे लिप्त होता है।

अप्सु प्रवेश्य तं दण्डं वरुणायोपपादयेत् ।
श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥२४४॥

वह दण्ड जलमें फेंकवा कर वरुण-देवताको अर्पित कर दे, अथवा वेदज्ञ सद्वृत्त ब्राह्मणको दे।

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ।
ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥२४५॥

क्योंकि महापापियोंके धनका स्वामी वरुण-देवता राजाओंका भी प्रभु है और वेदपारंगत ब्राह्मण तो सारे जगत्का स्वामी है।

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम् ।
तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः ॥२४६॥

निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक् ।
बालाश्च न प्रमीयन्ते विकृतं न च जायते ॥२४७॥

जिस देशमें राजा महापापियोंका धन नहीं लेता वहां ठीक समयपर मनुष्य जन्म लेते हैं और दीर्घजीवी होते हैं। वैश्योंके बोये हुए धान्य पृथक्-पृथक् पूर्ण रूपसे उपजते हैं, बच्चोंकी मृत्यु नहीं होती, कोई प्राणी अङ्गहीन उत्पन्न नहीं होता।

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम् ।
हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥२४८॥

समझ-बूझकर ब्राह्मणके सतानेवाले शूद्रको राजा उद्वेगकारी छेदन ताड़न आदि प्राणनाशक विविध कठोर दण्डोंसे दण्डित करे।

यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ।
अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः ॥२४९॥

राजाको अवध्यके मारनेमें जितना पाप होता है उतना ही वध्यके छोड़नेमें होता है। इसलिये अपराधियोंको उचित दण्ड देनेहीमें उसकी धर्मरक्षा होती है।

उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवदमानयोः ।
अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥२५०॥

परस्पर विवाद करनेवालोंके व्यवहारका अठारह विभागोंमें विस्तारपूर्वक यह निर्णय कहा।

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः ।
देशानलब्धाँल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत् ॥२५१॥

इस प्रकार धर्मसम्बन्धी राजकार्य करनेवाला राजा अप्राप्त देशोंके पानेकी इच्छा करे और प्राप्त देशका सम्यक् प्रकारसे पालन करे।

सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः ।
कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥२५२॥

अन्न-जलसे सम्पन्न देशका शास्त्रोक्त रीतिसे शासन करनेवाला राजा किला बनाकर चोर साहसिक आदि कण्टकोंको दूर करनेमें सदा विशेष यत्नवान् रहे।

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ।
नरेन्द्रास्त्रिदिवं यान्ति प्रजापालनतत्पराः ॥२५३॥

प्रजाओंके पालनमें तत्पर नृपति अच्छे आचरणवालोंकी रक्षा करने और दुष्ट दुराचारियोंको उचित दण्ड देनेसे स्वर्गको जाते हैं।

अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः ।
तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥२५४॥

जो राजा चोर-डाकुओंका शासन न करे और प्रजाओंसे कर

ले तो सारा देश उसका द्रोही हो जाता है और इस पापसे उसे स्वर्ग भी प्राप्त नहीं होता।

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम्।
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः॥२५५॥

जिस राजाके बाहुबलका आश्रित देश चोर आदिके उपद्रवोंसे निर्भय रहता है उस राजाका राज्य नित्य जलसिञ्चित वृक्षकी भांति हराभरा रहता और बढ़ता है।

द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान्।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः॥२५६॥

दूसरेका धन अपहरण करनेवाले चोर दो प्रकारके होते हैं, एक प्रकट, दूसरे गुप्त। चारचक्षु* राजा उन दोनोंकी खबर ले।

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः।
प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः॥२५७॥

जो नकली चीज बेचकर लोगोंको ठगते हैं वे प्रकट चोर हैं और जो सेंध मारते या जंगलमें छिपकर मुसाफिरोंको लूटते हैं वे गुप्त चोर हैं।

उत्कोचकाश्चोपधिका वञ्चकाः कितवास्तथा।
मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्च क्षणिकैः सह॥२५८॥
असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः।
शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः॥२५९॥
एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाँल्लोककण्टकान्।
निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः॥२६०॥

---

*जासूस (भेदिया) रूपी आंखोंसे गुप्त रहस्य देखनेवाले राजाको चारचक्षु कहते हैं।

घूसखोर, भय दिखाकर धन लेनेवाले, ठग, जुआरी, दूसरोंका मंगल मनाकर जीनेवाले, पाप छिपाकर साधु भेषसे पुजानेवाले, हस्तरेखा आदिका फल बताकर निर्वाह करनेवाले, हाथियोंको सिखाकर जीनेवाले, चिकित्साजीवी, चित्रकार और धूर्त वेश्याएं तथा इस चालके और लोगोंको राजा देशके कण्टकस्वरूप प्रकट चोर जाने । और अन्यान्य छद्मवेशी, नीचजन जो श्रेष्ठ पुरुषका रूप धारणकर पैसा बटोरते हैं उन्हें भी चोर जाने ।

तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्मकारिभिः ।
चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत् ॥२६१॥

इन्हीं कर्मोंको करनेवाले अनेक स्थानस्थित सुचरित्र गुप्तचरोंके द्वारा उन दोषापवाली कण्टकोंका पता लगाकर राजा उन्हें पूर्णरूपसे शासितकर अपने वशमें लावे ।

तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मणि तत्त्वतः ।
कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः ॥२६२॥

उन प्रकट गुप्त चोरोंमें जिसने जैसा कर्म किया हो उसके दोषोंकी लोगोंमें घोषणा करके राजा उनके अपराधकी यथार्थ रूपसे विवेचना कर उचित दण्ड दे ।

नहि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ।
स्तेनानां पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ ॥२६३॥

क्योंकि दण्ड दिये बिना असली रूपको छिपाकर संसारमें घूमनेवाले पापबुद्धि चोरोंको पापाचरणसे निवृत्त करना असाध्य है ।

सभाप्रपापूपशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ।
चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च ॥२६४॥
जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च ।
शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च ॥२६५॥

एवंविधान्नृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ।
तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत् ॥२६६॥

सभा-स्थान ( जहां दस लोग इकट्ठे होकर किसी विषयपर विचार करें ), प्रपा (पथिकोंको पानी पिलानेका स्थान—प्याऊ) मिठाईकी दूकान, वेश्यागृह, शराब बेचनेका घर, वह स्थान जहां अनाजकी बिक्री हो, चौराहे, प्रसिद्ध झंखाड़ वृक्ष जिनके तले व्यापारी लोग आकर टिकें, वह स्थान जहां दस लोग आकर बैठें, पुराने बगीचे, जंगल, चित्रशाला, सूना मकान, वन और उप-वन, ऐसे स्थानोंको चोरोंसे सुरक्षित रखनेके लिये राजा स्थायी और इधर उधर घूमनेवाले सैनिकों तथा जासूसोंको नियुक्त करे ।

तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ।
विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः ॥२६७॥

जो लोग चोरके सहायक हों, उसके अनुगामी हों, चोरीके अनेक कामोंके ज्ञाता हों, या पहलेके पक्के चोर हों, इन लोगोंकी सहायतासे राज-चोरोंका पता लगाकर उनका सर्वनाश करे ।

भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनैः ।
शौर्यकर्मापदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥२६८॥

राजाके गुप्तचर उन चोरोंको, उत्तम पदार्थ खिलाने पिलानेके छलसे या सिद्ध ब्राह्मणोंके दर्शन करानेके बहानेसे, या नकली लड़ाई या कुश्ती दिखलानेके व्याजसे अपने साथ लाकर राजपुरुषोंसे पकड़वा दें ।

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये ।
तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिबान्धवान् ॥२६९॥

जो चोर पकड़े जानेके डरसे उन चरोंके साथ न आवें और जो राजाके जासूसको जानकर सावधान हो गये हों, राजा जासू-

सोंसे उनका सच्चा पता लगाकर उन्हें सहायक, कुटुम्ब और बान्धवोंके साथ बरजोरी पकड़वाकर जेल दे या मरवा डाले ।

न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्मिको नृपः ।
सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥२७०॥

धार्मिक राजा चोरीके माल और औजार आदि पाये बिना केवल सन्देहसे चोरका वध न करे, चोरीका पूरा सबूत पा जाने पर विचार किये बिना उसके हाथ कटवा ले या सूली दे दे ।

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ।
भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥२७१॥

गांवोंमें जो कोई चोरको जान-बूझकर भोजन या चोरी करनेके उपयुक्त बर्तन और रहनेके लिये जगह दें, राजा उन सब को भी बांधकर पिटवावे और अपराध देखकर दण्ड दे ।

राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्तांश्चैव चोदितान् ।
अभ्याघातेषु मध्यस्थाञ्छिष्याच्चौरानिव द्रुतम् ॥२७२॥

जो राज्यमें रक्षाके लिये नियुक्त हों, जो सीमापर रक्षकरूपसे तैनात किये गये हों, वे यदि चोरी करानेमें सम्मिलित हों तो राजा शीघ्र चोरके तुल्य ही दण्ड उन्हें भी दे ।

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवनः ।
दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्माद्धि विच्युतम् ॥२७३॥

जो स्वयं धर्म न करके दूसरेके धर्मसे जीवन निर्वाह करें या अपने धर्म-कर्मसे रहित हो जायं तो राजा उन्हें भी दण्ड देकर सतावे ।

ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिदर्शने ।
शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः ॥२७४

गांवमें लूटपाट होनेपर, बांध टूटनेपर, रास्तेमें चोर दिखाई

देनेपर जो अपनी शक्तिके अनुसार न दौड़ें राजा उन्हें सब परि-च्छदोंके साथ देशसे बाहर कर दे ।

राज्ञः कोषापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ।
घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥२७५॥

राजाके कोशका अपहरण करनेवाले, राजाके विरुद्ध आचरणवाले और शत्रुओंके उसकानेवालेको राजा विविध प्रकारके वधोपयुक्त दण्डोंसे दण्डित करे ।

संधिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ।
तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ॥२७६॥

जो चोर रातमें संध मारकर चोरी करते हैं, राजा उनके दोनों हाथ काटकर तेज सूलीपर चढ़ा दे ।

अंगुलीर्ग्रन्थिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे ।
द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥२७७॥

कपड़ेमें बंधे हुए सुवर्ण या द्रव्यकी गांठ खोलकर उड़ानेवाल चोरकी पहली बारके अपराधमें उंगलियां और दूसरी बार हाथ पांव कटवा दे । तीसरी बार वह वधके योग्य होता है ।

अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् ।
संनिधातॄंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः॥२७८॥

चोरको आग, भोजन, हथियार और ठहरनेकी जगह देने-वालोंको तथा चोरीका माल रखनेवालोंको राजा चोरके समान दण्डित करे ।

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ।
यद्वापि प्रतिसंस्कुर्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् ॥२७९॥

बांध आदि देकर तालको नष्ट करनेवालेको राजा पानीमें गोता देकर या भिन्न प्रकारका कठोर दण्ड देकर मार डाले । यदि

वह मालको फिर दुरुस्त कर दे तो उसे एक उत्तम साहस दण्ड करे।

कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान्।
हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥२८०॥

भाण्डार, शस्त्रागार और देवताके मन्दिरको विनष्ट करनेवालों तथा हाथी, घोड़े और रथका अपहरण करनेवालोंको राजा बिना विचारे प्राणान्त दण्ड दे।

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत्।
आगमं वाप्यपां भिन्द्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् ॥२८१॥

प्रजाओंके हितार्थ खुदवाये हुए तालाबका जल जो हरण करे या तालाबमें पानी आनेका मार्ग बन्द कर दे, राजा उसे प्रथम साहस दण्ड करे।

समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि।
स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चाशु शोधयेत् ॥२८२॥

जो निरापद अवस्थामें राजमार्गमें अपवित्र वस्तु डाल दे वह दो कार्षापण दंड दे और शीघ्र ही मैलेको रास्तेसे हटा दे।

आपद्गतोऽथवा वृद्धा गर्भिणी बाल एव वा।
परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥२८३॥

रोगी, आतुर, वृद्ध, गर्भिणी और बालक, ये यदि रास्तेपर मल-मूत्रका त्याग करें तो वे दण्डके योग्य नहीं हैं, उनसे इतना ही कहना चाहिये कि "यह तुमने क्या किया" और उनसे मैला फेंकवाकर रास्तेको साफ करा ले, यह शास्त्रकी मर्यादा है।

चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्या प्रचरतां दमः।
अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥२८४॥

वैद्यकशास्त्र पढ़े बिना झूठा वैद्य बनकर जो गौ आदिकी

अच्छी चिकित्सा न करे उसे प्रथमसाहस और मनुष्योंकी अच्छी चिकित्सा न करनेसे मध्यमसाहस दण्ड करे।

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः।

प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥२८५॥

पानीके ऊपर रखी हुई लकड़ी या पत्थर जिसके सहारे लोग आते जाते हों, ध्वजा, पूजनका स्तम्भ और मूर्तियां, इनके तोड़नेवाले पाँच सौ पण राजाको दंड दें और उन बिगड़ी हुई सब चीजोंको फिर दुरुस्त कर दें।

अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा।

मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥२८६॥

अदूषित द्रव्योंको किसी वस्तुकी मिलावटसे दूषित करने, अभेद्य रत्नोंको तोड़ने और मोती आदिके अयुक्त स्थानमें छेद करनेसे प्रथमसाहस दण्ड करना चाहिये।

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतोऽपि वा।

समाप्नुयाद्दमं पूर्वं नरो मध्यममेव वा ॥२८७॥

जो कोई समान मूल्यमें किसीको थोड़ा और किसीको अधिक दे अथवा एकको अच्छी और दूसरेको बुरी चीज दे तो वह प्रथम साहस या मध्यम साहस दण्ड पावेगा।

बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निवेशयेत्।

दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पापकारिणः ॥२८८॥

राजा कारागार आदि बन्धनगृहोंको सड़कके किनारे बनवावे जिसमें कैदी लोग अपने अपराधके कारण जो दुःख भोगते हों उन्हें सब लोग देख सकें।

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च पूरकम्।

द्वाराणां चैव भङ्क्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥२८९॥

किलेकी दीवार तोड़नेवाले, खाई भरनेवाले और फाटक भग्न करनेवालेको राजा शीघ्र निर्वासित कर दे ।

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः ।
मूलकर्मणि चानाप्तेः कृत्यासु विविधासु च ॥२९०॥

सभी प्रकारके मारण, उच्चाटन आदि अभिचारोंमें तथा विविध प्रकारके टोने आदि करनेपर यदि इष्टसिद्धि प्राप्त न हो तो टोना करनेवालेको दो सौ पण दण्ड करना चाहिये ।

अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टं तथैव च ।
मर्यादाभेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम् ॥२९१॥

जो न उपजनेयोग्य बीजको या निकृष्ट बीजको अच्छा कहकर बेचे और गांव या नगरकी सीमाको नष्ट करे, राजा उसे अङ्गभङ्ग कर विकृत कर दे अर्थात् उसके हाथ या पैर या नाक या कान कटवाकर मरणतुल्य दण्ड दे ।

सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु पार्थिवः ।
प्रवर्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः ॥२९२॥

सब प्रकारके देशकण्टकोंमें सबसे पापी कंटक जो सुनार है वह अन्यायमें प्रवृत्त हो तो राजा उसके सारे अङ्गको छुरेसे खण्ड खण्ड कर डाले ।

सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ।
कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥२९३॥

हल, फाल आदि खेतीके उपकरण, हथियार और औषधकी चोरीमें राजा समयानुसार उचित दण्डकी कल्पना करे ।

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुहृत्तथा ।
सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥२९४॥

राजा, मन्त्री, नगर, देश, कोश, सेना और मित्र, ये सातों राज्यके अङ्ग हैं, इसलिये राज्य सप्ताङ्ग कहलाता है।

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं जानीयाद्व्यसनं महत् ॥२९५॥

राज्यके इन सात अङ्गोंमें जो पहले है वह विपत्तिमें अपने बादके अंगसे अधिक विपत्तिका कारण होता है यह जान लेना चाहिये। (इसलिये बादके अंगोंकी अपेक्षा पहलेके अंगोंकी रक्षामें विशेष यत्नवान रहे।)

सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत् ।
अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किंचिदतिरिच्यते ॥२९६॥

यतीके परस्पर मिले हुए तीन दण्डोंकी तरह ये सातों अंग एक दूसरेके उपकारक होनेके कारण, सभी बराबर हैं, कोई किसीसे छोटा बड़ा नहीं है।

तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते ।
येन तत्साध्यते कार्यं तत्तस्मिञ्श्रेष्ठमुच्यते ॥२९७॥

जिस अंगका जो कार्य है उस कार्यमें उस अंगकी विशेषता है, जो अंग अपना वह कार्य सिद्ध करता है, उस कार्यमें वही अंग श्रेष्ठ समझा जाता है।

चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्मणाम् ।
स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥२९८॥

( सातवें अध्यायमें कथित ) छद्मवेशी चरोंके द्वारा, सेनाके उत्साहसे और कर्तव्य कर्मोंके अनुष्ठानसे राजा अपनी और शत्रुकी शक्तिको सदा जानता रहे।

पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ।
आरभेत ततः कार्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥२९९॥

अपने और शत्रु के राज्यमें काम क्रोधसे उत्पन्न पीड़न और सब प्रकारके दुःखोंके गौरव और लाघवको सोचकर राजा सन्धि-विग्रहका कार्य आरम्भ करे ।

आरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्त पुनः पुनः ।
कर्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ॥३००॥

थक जानेपर भी राजा बार-बार कार्य आरम्भ करे । क्योंकि कर्म आरम्भ करनेवाले पुरुषका सेवन स्वयं लक्ष्मी करती है ।

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च ।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥३०१॥

सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये सब राजाके ही विशेष कर्म हैं, इसीलिये राजाको ही युग कहते हैं ।

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम् ।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥३०२॥

राजा जब ( अज्ञानसे ) सोया रहता है तब वह कलि होता है, जब जागता है तब द्वापर, जब कर्म करनेमें उद्यत होता है तब त्रेता, और कर्म करता हुआ जब रहता है तब वह सत्ययुग होता है ।

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥३०३॥

राजाको इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि और पृथिवी इनके तेजके अनुरूप बर्ताव करना चाहिये ।

वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ।
तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥३०४॥

जैसे इन्द्र वर्षासम्बन्धी चार मासोंमें पानी बरसाकर कृषकोंको सुखी करता है वैसे ही राजा इन्द्रव्रतका आचरण कर अभिलषित अर्थके प्रदानसे प्रजाओंको सन्तुष्ट करे ।

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥३०५॥

जैसे सूर्य आठ महीनेतक अपनी किरणोंद्वारा जल लेता है, वैसे ही राजा भी सदा राष्ट्रसे कर ले, यही उसका सूर्यव्रत है।

प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥३०६॥

जैसे वायु सब प्राणियोंके भीतर प्रवेश कर विचरता है वैसे ही राजा चर पुरुषोंके द्वारा सारे देशमें घूमा करे, यही उसके लिये वायुव्रत है।

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति।
तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥३०७॥

जैसे यम समय प्राप्त होनेपर शत्रु मित्र किसीको नहीं छोड़ता, सबको यथोचित कर्मका फल देता है, उसी प्रकार राजाको भी प्रजाओंके साथ नियमका पालन करना चाहिये, यह उसका यमव्रत है।

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते।
तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम् ॥३०८॥

वरुण देवता जिसे बांधनेकी इच्छा करते हैं, उसे वे निःशङ्क होकर पाशसे बांधते हैं, उसी तरह राजा पापियोंके बांधनेमें संकोच न करे, यही उसका वारुणव्रत है।

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः।
तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चान्द्रव्रतिको नृपः ॥३०९॥

जैसे पूर्णचन्द्रको देखकर मनुष्य प्रसन्न होते हैं, वैसे राजाको देखकर प्रजा प्रसन्न हो तो वही उसके लिये चान्द्रव्रत है।

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु।
दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम् ॥३१०॥

पापकर्त्ताओंको दण्ड देनेमें सर्वदा तेजस्वी होकर उग्र रूप धारण करे और दुष्ट मंत्रियोंको तपावे, यही उसका आग्नेयव्रत है।

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम्।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥३११॥

जैसे पृथ्वी सब प्राणियोंको समान भावसे धारण करती है, वैसे सब प्राणियोंके पालन-पोषणका भार धारण करना राजाके लिये पार्थिव व्रत है।

एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः।
स्तेनान्राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च ॥३१२॥

इन उक्त उपायोंसे तथा अन्य उपायोंसे युक्त राजा नित्य आलस्य-रहित होकर निज देशवर्ती तथा परराष्ट्रवर्ती चोरोंका निग्रह करे।

परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत्।
ते ह्येनं कुपिता हन्युःसद्यः सबलवाहनम् ॥३१३॥

घोर विपत्तिमें प्राप्त होनेपर भी राजा ब्राह्मणोंको क्रुद्ध न करे, क्योंकि वे कुपित होनेपर सेनावाहनसहित राजाका शीघ्र नाश कर देते हैं।

यैः कृतः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च महोदधिः।
क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान् ॥३१४

जिन ब्राह्मणोंने अभिशापसे अग्निको सर्वभक्षी, समुद्रको अपेय, और क्षयशील चन्द्रमाको पूरा कर दिया, उनको कुपित करके कौन नाशको न प्राप्त होगा ?

लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः।
देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात् ॥३१५॥

जो क्रुद्ध होनेपर अन्य स्वर्गादि लोक और लोकपालोंकी सृष्टि कर सकते हैं, देवताओंको मनुष्य बना सकते हैं, उन्हें सताकर कौन समृद्धिको प्राप्त हो सकता है ?

यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लोका देवाश्च सर्वदा ।
ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्ताञ्जिजीविषुः ॥३१६॥

जिन ब्राह्मणोंके आश्रित होकर लोक और देवता सदा स्थित रहते हैं, ब्रह्म ही जिनके धन हैं, उन्हें जीनेकी इच्छा रखनेवाला कौन ऐसा पुरुष है जो सतावेगा ?

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥३१७॥

वेद-विधिसे स्थापित हो या न हो, अग्नि जैसे महान् देवता हैं, वैसे ब्राह्मण मूर्ख हो या विद्वान्, वह महान् देवता है ।

श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्धते ॥३१८॥

श्मशानमें भी तेजस्वी अग्नि दूषित नहीं होती, और यज्ञमें आहुति पाकर वह और बढ़ती है ।

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत् ॥३१९॥

इसी प्रकार सब बुरे कामोंमें प्रवृत्त रहनेपर भी ब्राह्मण सर्वथा पूज्य हैं, क्योंकि वह पृथ्वीके सर्वश्रेष्ठ देवता हैं ।

क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ।
ब्रह्मैव संनियन्तृ स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥३२०॥

ब्राह्मणोंको पीड़ा देनेवाले क्षत्रियोंका शासनकर्त्ता ब्राह्मण ही हो सकता है, क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ है ।

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥३२१॥

जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है, उनका प्रभाव सर्वत्र सफल होनेपर भी अपने उत्पत्ति-स्थानमें शान्त होता है अर्थात् अपने कारणपर उनका प्रभाव निष्फल होता है।

नाब्रह्म क्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्धते ।
ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्धते ॥३२२॥

ब्राह्मणके बिना क्षत्रियकी और क्षत्रियके बिना ब्राह्मणकी वृद्धि नहीं होती। ब्राह्मण क्षत्रिय मिले रहें तो उन दोनोंकी इस लोक और परलोकमें वृद्धि होती है।

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ।
पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे ॥३२३॥

( महापातकको छोड़ ) सब प्रकारके दण्डोंसे प्राप्त धन ( व्यय करनेके पश्चात् बचा हुआ ) ब्राह्मणको देकर और पुत्रको राज्य सौंपकर राजाको युद्धमें शरीर त्यागना चाहिये।

एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ।
हितेषु चैव लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत् ॥३२४॥

इस प्रकार राजा राजधर्ममें सदा यत्नवान रहकर प्रजाओंके हितसाधनमें सब कर्म्मचारियोंको नियुक्त करे।

एषोऽखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः ।
इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥३२५॥

राजाकी यह सनातन सम्पूर्ण कर्मकी विधि कही। अब क्रमसे वैश्य और शूद्रकी कर्मविधिको जानिये।

वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिग्रहम्।

वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे ॥३२६॥

वैश्य यज्ञोपवीतके अनन्तर विवाह करके कृषि, व्यापार और पशुरक्षणमें सदा तत्पर रहे।

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून्।

ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः ॥३२७॥

ब्रह्माने पशुओंको उत्पन्नकर उनके पालनका भार वैश्योंको दिया और प्रजाओंको उत्पन्नकर उनकी रक्षाका भार ब्राह्मण और क्षत्रियोंको दिया।

न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति।

वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥३२८॥

पशुकी रक्षा न करूं, ऐसी इच्छा वैश्य कभी न करे। वैश्य जबतक पशुपालन करे तबतक राजा पशुपालन दूसरेसे न करावे।

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च।

गन्धानां च रसानां च विद्यादर्घबलाबलम् ॥३२९॥

वैश्यको मणि, मोती, मूंगा, लोहा, वस्त्र, कपूर और दुग्ध आदि पदार्थोंके देशकालानुसार मूल्यकी न्यूनता और अधिकताको जानते रहना चाहिये।

बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च।

मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥३३०॥

वैश्यको, किस समयमें कौन बीज कैसे खेतमें बोना चाहिये इसका और खेतके गुण-दोषका ज्ञान होना चाहिये। परिमाण और सब चीजोंके तौलनेकी रीति भी उसे जाननी चाहिये।

सारासारं च भाण्डानां देशानां च गुणागुणान्।

लाभालाभं च पण्यानां पशूनां परिवर्धनम् ॥३३१॥

भृत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा नृणाम् ।
द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥३३२॥

घटिया बढ़िया मालकी पहचान, किस देशमें कौन चीज सस्ती और कौन चीज महंगी है इसका ज्ञान, बिकाऊ चीजोंका नफा नुकसान, पशुवृद्धिका उपाय, किस नौकरको कितना वेतन देना चाहिये, इसका बोध और मनुष्योंकी विविध भाषा, किस वस्तुको कैसे स्थानमें रखना चाहिये जिससे वह खराब न हो इसका ज्ञान, कहां किस चीजकी खपत ज्यादा है, इन सब बातोंका ज्ञान रखना चाहिये ।

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ।
दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः ॥३३३॥

वैश्यको चाहिये कि धर्मपूर्वक धनकी वृद्धिमें विशेष यत्न करे और सब प्राणियोंको विशेषतः अन्न दे ।

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम् ।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः ॥३३४॥

वेद जाननेवाले, गृहस्थ, यशस्वी ब्राह्मणोंकी सेवा करना ही शूद्रके लिये स्वर्गप्रद परम धर्म है ।

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥३३५॥

शरीर और मनको पवित्र रखनेवाला, अपनेसे श्रेष्ठ जातिकी सेवा करनेवाला, मृदुभाषी, अहङ्काररहित, विशेषकर नित्य ब्राह्मणका आश्रित शूद्र अपनेसे उत्कृष्ट जातिको प्राप्त होता है ।

एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्मविधिः शुभः ।
आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्निबोधत ॥३३६॥

यह चारों वर्णोंका निरापद अवस्थाका शुभ कर्म-विधान कहा । अब आपत्कालका जो धर्म है उसे भी क्रमसे श्रवण करो ।

* नवम अध्याय समाप्त *

## अध्याय १०

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः ।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥१॥

अपने कर्ममें स्थित तीनों वर्ण ( ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ) वेद पढ़ें । इनमें ब्राह्मण ही इन सबको वेद पढ़ावें, क्षत्रिय वैश्य नहीं, यही शास्त्रका निश्चय है ।

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथाविधि ।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत् ॥२॥

ब्राह्मण सब वर्णोंके शास्त्रानुसार जीवनोपायको जानकर सबको उसका उपदेश करे और आप भी अपने नियमोंका पालन करे ।

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ।
संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥३॥

जातिश्रेष्ठता और उत्पत्तिके कारणकी श्रेष्ठतासे, वेदके अध्ययन अध्यापनसे तथा उपनयन आदि संस्कारोंकी विशेषतासे ब्राह्मण सब वर्णोंका स्वामी है ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥४॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनों वर्ण द्विजाति हैं, चौथा एक वर्ण शूद्र है, पांचवां कोई वर्ण नहीं है ।

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥५॥

चारों वर्णोंमें सवर्ण अक्षतयोनि विवाहिता स्त्रियोंमें अनुलोमसे जो सन्तान उत्पन्न हों वे उसी वर्णकी होंगी ( अर्थात् ब्राह्मणसे

ब्राह्मणीमें जो पुत्र उत्पन्न होगा वह ब्राह्मण कहलावेगा, इसी क्रमसे क्षत्रियादि वर्णोंमें भी जानना)।

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान्।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥६॥

अपने समीपी निम्न वर्णकी स्त्रीमें द्विजातियोंसे जो पुत्र उत्पन्न किये जाते हैं वे माताके दोषसे निन्दित, पिताके सदृश होनेपर भी सजातीयसे निकृष्ट होते हैं। (अभिप्राय यह कि ब्राह्मणका क्षत्रियासे, क्षत्रियका वैश्यासे और वैश्यका शूद्रासे उत्पन्न पुत्र माताकी जातिसे उत्तम और पिताकी जातिसे निकृष्ट होगा।)

अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः।
द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम् ॥७॥

सजातीयसे अव्यवहित (समीपी निम्न) वर्णकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंका यह सनातन नियम कहा। अब दो या एक वर्णके अनन्तरवाली स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रके धर्मसम्बन्धी नियमोंको जानें।

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥८॥

ब्राह्मणसे विवाहिता वैश्य कन्यामें जो पुत्र उत्पन्न हो वह अम्बष्ठ होता है और शूद्र कन्यामें जो उत्पन्न हो वह निषाद होता है। उसीको पारशव कहते हैं।

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान्।
क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते ॥९॥

क्षत्रियसे विवाहिता शूद्रकन्यामें उत्पन्न पुत्र क्रूरकर्मा होता है। उसका स्वभाव कुछ क्षत्रिय और कुछ शूद्रका-सा होता है और उसे उग्र कहते हैं।

विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः।
वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः ॥१०॥

ब्राह्मणका क्षत्रिया आदि तीनों वर्णोंकी स्त्रियोंमें, क्षत्रियका वैश्या आदि दो वर्णोंकी स्त्रियोंमें और वैश्यका एक वर्ण शूद्रा स्त्रीमें जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे अपसद कहलाते हैं।

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ ॥११॥

( अनुलोम कहकर अब प्रतिलोम कहते हैं— )

क्षत्रियसे ब्राह्मणकन्यामें जो पुत्र उत्पन्न होता है वह सूत जातिका होता है। वैश्यसे क्षत्रिय और ब्राह्मणकन्यामें उत्पन्न पुत्र क्रमसे मागध और वैदेह कहलाते हैं।

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चण्डालश्चाधमो नृणाम् ।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥१२॥

शूद्रसे वैश्या, क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें क्रमसे आयोगव, क्षत्ता और अधम चाण्डाल वर्णसंकरको प्राप्त पुत्र होते हैं।

एकान्तरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ।
क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येऽपि जन्मनि ॥१३॥

अनुलोमक्रमसे एकान्तर वर्णमें उत्पन्न अम्बष्ठ और उग्र ये दोनों जैसे स्पर्श आदिके योग्य हैं वैसे ही एकान्तर वर्णमें प्रतिलोम-क्रमसे उत्पन्न क्षत्ता और वैदेह भी स्पर्शके योग्य होते हैं।

पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम् ।
ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥१४॥

द्विजातियोंके जो पुत्र क्रमसे अनन्तर स्त्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, वे माताके न्यूनजातित्वके कारण अनन्तर नामसे अर्थात् जो जाति उनकी माताकी है उसी जातिसे पुकारे जाते हैं और तदनुसार ही उनकी जातिसंस्कारादि क्रिया होती है।

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते ।
आभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वणः ॥१५॥

ब्राह्मणसे उग्रकन्यामें उत्पन्न पुत्र 'आवृत', अम्बष्ठकन्यामें 'आभीर' और आयोगवी कन्यामें उत्पन्न पुत्र "धिग्वण" कहलाता है।

आयोगवश्च क्षत्ता च चण्डालश्चाधमो नृणाम्।
प्रातिलोम्ये न जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥१६॥

प्रतिलोमक्रमसे उत्पन्न आयोगव, क्षत्ता और मनुष्योंमें अधम चण्डाल, ये तीनों शूद्रसे भी नीच होते हैं।

वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु।
प्रतीपमेते जायन्ते परेऽप्यपसदास्त्रयः ॥१७॥

वैश्यसे क्षत्रियकी कन्यामें उत्पन्न पुत्र मागध और ब्राह्मणकी कन्यामें उत्पन्न वैदेह तथा क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें उत्पन्न पुत्र सूत, प्रतिलोमक्रमसे उत्पन्न ये तीनों पुत्र कार्यसे भ्रष्ट होते हैं।

जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः।
शूद्राज्जातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ॥१८॥

निषादसे शूद्रामें उत्पन्न पुत्र पुक्कस और शूद्रसे निषादकन्यामें उत्पन्न पुत्र कुक्कुटक कहलाता है।

क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते।
वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते ॥१९॥

क्षत्तासे उग्रकन्यामें उत्पन्न पुत्र 'श्वपाक' कहलाता है। वैदेहसे अम्बष्ठ कन्यामें उत्पन्न पुत्रको वेण कहते हैं।

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्।
तान्सावित्रीपरिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत् ॥२०॥

द्विजाति सवर्णा स्त्रियोंमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं, यदि उनका यज्ञोपवीत न हो तो वे व्रात्य कहलाते हैं।

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥२१॥

व्रात्य ब्राह्मणसे पापस्वभावका भूर्जकण्टक पुत्र उत्पन्न होता है। देशभेदसे इसको आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैख भी कहते हैं।

झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥२२॥

क्षत्रिय व्रात्यसे सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रके नाम झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण, खस और द्रविड़ हैं।

वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य एव च।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥२३॥

वैश्य व्रात्यसे सजातीय स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको क्रमसे सुधन्वाचार्य, कारुष, विजन्मा, मैत्र और सात्वत कहते हैं।

व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च।
स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥२४॥

ब्राह्मणादि वर्णोंके परस्पर स्त्रीगमनसे, सगोत्रमें विवाह करनेसे और स्वकर्मके त्यागसे वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं।

संकीर्णयोनियो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः।
अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥२५॥

जो संकीर्ण जाति प्रतिलोम अनुलोमसे उत्पन्न होती है और जो परस्परके व्यभिचारसे वर्णसंकर पैदा होते हैं, उन सबको सम्पूर्ण रूपसे कहते हैं।

सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः।
मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽऽयोगव एव च ॥२६॥

सूत, वैदेहक, मनुष्योंमें अधम चण्डाल, मागध, क्षत्ता और आयोगव, ये वर्णसंकर हैं।

एते षट् सदृशान्वर्णाञ्जनयन्ति स्वयोनिषु।
मातृजात्यां प्रसूयन्ते प्रवरासु च योनिषु ॥२७॥

ये छः अपनी जाति, माताकी जाति और श्रेष्ठ जातिकी कन्यामें अपने ही सदृश पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं।

यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य जायते।
आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात् ॥२८॥

जैसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीन वर्णोंमें अनुलोमक्रमसे क्षत्रिय और वैश्यकी विवाहिता कन्यामें ब्राह्मणके द्वारा उत्पन्न पुत्र वैश्य और क्षत्रियके अनुलोमजसे श्रेष्ठ होता है वैसे वैश्यका क्षत्रिया स्त्रीमें और क्षत्रियका ब्राह्मणी स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र शूद्रके प्रतिलोम पुत्रसे श्रेष्ठ होता है।

ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकदूषितान्।
परस्परस्य दारेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥२९॥

वे आयोगव आदि वर्णसंकर अनुलोम और प्रतिलोमक्रमसे परस्परकी स्त्रियोंमें अपनेसे भी अत्यन्त दूषित और निन्दित सन्तान उत्पन्न करते हैं।

यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जन्तुं प्रसूयते।
तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥३०॥

जैसे शूद्र ब्राह्मणीमें चण्डाल जन्तुको पैदा करता है वैसे वह चाण्डाल आदि चार जातियों ( चाण्डाल, मागध, क्षत्ता और आयोगव )में चाण्डालसे भी निकृष्ट सन्तानोंको उत्पन्न करता है।

प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः।
हीना हीनान्प्रसूयन्ते वर्णान्पञ्चदशैव तु ॥३१॥

प्रतिकूल वर्तमान अर्थात् प्रतिलोम उत्पन्न ( शूद्रसे चाण्डाल, क्षत्ता और आयोगव ) ये तीन बाह्य हीन पुत्र चारों वर्णोंकी स्त्रियोंमें और अपनी जातिकी स्त्रियोंमें ( इस प्रकारसे पांच वर्णोंसे ) पंद्रह-पंद्रह प्रकारकी बाह्यतर हीन जातियां उत्पन्न करते हैं।

प्रसाधनोपचारज्ञमदासं दासजीवनम्।
सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे ॥३२॥

दस्युसे आयोगव स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको सैरिन्ध्र कहते हैं। वह केशरचनामें प्रवीण होता है, उच्छिष्ट न खाकर दासवृत्तिसे और व्याधकी वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करता है।

मैत्रेयकं तु वैदेहो माधूकं संप्रसूयते।
नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टाताडोऽरुणोदये ॥३३॥

पूर्वोक्त वैदेह जातिसे आयोगव स्त्रीमें जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे मैत्रेय कहते हैं, वह मधुरभाषी होता है और प्रातःकालमें घंटा बजाकर वृत्तिके लिये नित्य मनुष्योंकी स्तुति करता है।

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजीविनम्।
कैवर्तमिति यं प्राहुरार्यावर्तनिवासिनः ॥३४॥

निषादके द्वारा आयोगवी स्त्रीमें उत्पन्न पुत्रको मार्गव या दास कहते हैं, जो नाविकका काम करके जीता है, जिसे आर्यावर्तवासी कैवर्त कहते हैं।

मृतवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च।
भवन्त्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक् त्रयः ॥३५॥

सैरिन्ध्र, मैत्रेय और मार्गव, ये तीनों हीन जातियां मृतकका वस्त्र पहननेवाली और सबका जूठन खानेवाली आयोगवी स्त्रियोंमें पिताके भेदसे भिन्न-भिन्न होती हैं।

कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते।
वैदेहिकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥३६॥

निषादसे वैदेह जातिकी स्त्रीमें कारावर नामक चमार उत्पन्न होता है। वैदेहिक जातिसे कारावर और निषादकी स्त्रियोंमें

उत्पन्न पुत्रोंको क्रमसे अन्ध्र और मेद कहते हैं। ये दोनों गांवके बाहर घर बनाकर रहते हैं।

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान्।

आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते ॥३७॥

चाण्डालसे वैदेहिक स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र पांडुसोपाक कहलाता है, जो बांसकी टोकरी आदि बीनकर गुजर करता है। निषादसे वैदेहिक स्त्रीमें आहिण्डक उत्पन्न होता है।

चण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान्।

पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥३८॥

चाण्डालसे पुक्कसी स्त्रीमें सोपाक जातिकी उत्पत्ति होती है। यह जाति वधिक-वृत्तिसे जीनेके कारण बड़ी ही पापात्मा और सज्जनोंके द्वारा निन्दित है।

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यावसायिनम्।

श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम् ॥३९॥

चाण्डालसे निषादजातीया स्त्रीमें अन्त्यावसायी उत्पन्न होता है, जो चाण्डालसे भी निकृष्ट है। श्मशानमें रहकर मुर्दोंका जलाना इसका काम है।

संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः।

प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्मभिः ॥४०॥

वर्णसंकरमें मातापिताके द्वारा इतनी जातियां दिखलाई गयी हैं। और भी कितनी ही गुप्त या प्रकट जातियां हैं, जिन्हें उनकी क्रियासे जान लेना चाहिये।

सजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः।

शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥४१॥

द्विजातियोंके सजातीया स्त्रियोंके गर्भसे तीन, और ब्राह्मणके

अनुलोम क्रमसे क्षत्रिया और वैश्याके गर्भसे दो तथा क्षत्रियके वैश्याके गर्भसे उत्पन्न एक, इस प्रकार छः पुत्र द्विजकर्मके अधिकारी होते हैं; और प्रतिलोमक्रमसे उत्पन्न जो सूतादिक हैं, वे शूद्रके सहधर्मी हैं, अतएव उनका उपनयन नहीं होता।

तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥४२॥

वे सजातीय और अनुलोमज पुत्र तपस्या और बीजके प्रभावसे जन्मतः मनुष्योंके बीच जातिकी उत्कृष्टता और निकृष्टताको प्राप्त होते हैं।

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥४३॥

ये ( आगे कहे जानेवाले ) क्षत्रिय और वैश्य उपनयनादि कर्मोंके लोपसे और यजन अध्यापन आदिके निमित्त ब्राह्मणके दर्शनाभावसे इस लोकमें धीरे-धीरे शूद्रत्वको प्राप्त हुए।

पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥४४॥

पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद और खश ( ये सब पूर्वोक्त कारणसे शूद्रत्वको प्राप्त हुए। )

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥४५॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी जो जातियां क्रियालोपसे बाह्य हो गई हैं, चाहे म्लेच्छ भाषा बोलें या आर्य भाषा वे दस्यु कहलाती हैं।

ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः।
ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥४६॥

द्विजोंसे उत्पन्न जो (छः) अपसद जातियां हैं तथा जो प्रतिलोमज हैं, वे द्विजोंके उपकारार्थ आगे कहे हुए निन्दित कर्मोंसे जीविका चलावें।

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम्।
वैदेहकानां स्त्रीकार्यं मागधानां वणिक्पथः ॥४७॥

सूतोंका काम घोड़ोंको शिक्षितकर रथमें जोतना और रथ हांकना, अम्बष्ठोंका चिकित्सा करना, वैदेहकोंका अन्तःपुरकी सेवा करना, मागधोंका स्थलपथमें वाणिज्य करना है।

मत्स्यघातो निषादानां त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च।
मेदान्ध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् ॥४८॥

निषादोंका मछली मारना, आयोगवोंका लकड़ी चीरना, मेद, अन्ध्र, चुञ्चु और मद्गुजातियोंका कर्म जंगली पशुओंका मारना है।

क्षत्त्रुग्रपुक्कसानां तु बिलौकोवधबन्धनम्।
धिग्वणानां चर्मकार्यं वेणानां भाण्डवादनम् ॥४९॥

क्षत्ता, उग्र और पुक्कसोंका कर्म बिलमें रहनेवाले जन्तुओंका बांधना और मारना है, धिग्वणोंका चमड़ा बेचना, वेणोंका कर्म कांसेकी थाली और झांझ आदि बजाना है।

चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च।
वसेयुरेते विज्ञाना वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥५०॥

ये लोग गांव या नगरके समीप किसी प्रसिद्ध वृक्षके नीचे अथवा श्मशान, पहाड़ या उपवनके पास अपने कर्मोंके द्वारा जीविका चलाते हुए निवास करें।

चण्डालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः।
अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥५१॥

वासांसि मृतचेलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ।
कार्ष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥५२॥

चाण्डाल और श्वपचका निवास गांवसे बाहर होना चाहिये । ये कांसे-पीतलका वर्तन न रखे मिट्टीके वर्तन रखें, कुत्ते और गधे, येही इनके धन हैं । मुर्दोंके बदनसे उतारे हुए वस्त्र ही इनके परिधान वस्त्र हैं । मिट्टीके टूटे-फूटे वर्तनोंमें भोजन करना, लोहेका गहना पहनना और नित्य एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाना, यही इनकी वृत्ति है ।

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ।
व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥५३॥

धर्मकार्य करते समय मनुष्य इनके साथ दर्शन संभाषण आदि व्यवहार न करें । इनका लेन-देनका व्यवहार और विवाह उनकी अपनी समान जातिमें ही होता है ।

अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ।
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥५४॥

इनको दूसरे (नौकर आदि) के हाथसे मिट्टीके फूटे वर्तनमें अन्न दिलावे । ये रातमें नगर या गांवमें घूमने न पावें ।

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ।
अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥५५॥

वे दिनमें राजाकी आज्ञाका चिह्न धारणकर अपने कामसे घूमें और बन्धु-बांधवोंसे रहित मृतकको श्मशानमें ले जायं, उनके लिये शास्त्रकी यही आज्ञा है ।

वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ।
वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥५६॥

राजाकी आज्ञासे शास्त्रानुसार अपराधी वध्य मनुष्योंका वध करें और उनके वस्त्र, शय्या और अलङ्कार लें ।

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ।
आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥५७॥

जो मनुष्य वर्णसे बहिष्कृत, अज्ञात, वर्णसंकरसे उत्पन्न, आर्यके रूपमें अनार्य हो, उसे उसके कर्मोंसे पहचाने ।

अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता ।
पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥५८॥

असाधुता, निष्ठुरता, निर्दयता और अकर्मण्यता, ये लक्षण इस लोकमें दुष्ट योनिमें उत्पन्न पुरुषको प्रकट कर देते हैं ।

पित्र्यं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ।
न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥५९॥

वह संकरजातीय मनुष्य पिताके या माताके या माता-पिता दोनोंके स्वभावका सेवन करता है । वह दुष्टकुलोत्पन्न किसी प्रकार अपने असली रूपको नहीं छिपा सकता ।

कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसङ्करः ।
संश्रयत्येव तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥६०॥

श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेनेपर भी जो वर्णसंकर होता है, वह अपने जन्मदाताके स्वभावको नहीं छोड़ता । उसमें थोड़ा या बहुत गुप्त पिताका स्वभाव अवश्य रहता है ।

यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः ।
राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ॥६१॥

जिस देशमें वर्णोंको दूषित करनेवाले ये वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं, वह देश प्रजाओंके साथ शीघ्र ही नष्ट होता है ।

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः ।
स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥६२॥

ब्राह्मण, गाय, स्त्री और बालक, इनमें किसीके रक्षार्थ निरपेक्ष

होकर प्रतिलोमज जातिका प्राण देना उसके अपने लिये स्वर्गप्राप्तिका कारण होता है ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥६३॥

( मनसे, वचनसे या शरीरसे ) किसी प्राणीको दुःख न देना, सच बोलना, अन्यायसे दूसरेका धन न लेना, पवित्रता और इन्द्रियोंका निग्रह, यह संक्षेपमें चारों वर्णोंका धर्म मनुजीने कहा है ।

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जाता श्रेयसा चेत्प्रजायते ।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥६४॥

ब्राह्मणसे शूद्र जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न बालिका यदि ब्राह्मणसे व्याही जाय और इसी प्रकार आगेकी सात पीढ़ीतक ऐसा ही होता रहे तो वह पारशव अपनी नीच योनिसे उद्धार पाकर सातवीं पीढ़ीमें ब्राह्मण हो जाता है ।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥६५॥

जैसे शूद्र ब्राह्मणत्वको प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्रताको प्राप्त होता है, वैसे क्षत्रिय और वैश्यसे उत्पन्न शूद्र भी क्षत्रियत्व और वैश्यत्वको प्राप्त होते हैं ।

अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया ।
ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत् ॥६६॥

ब्राह्मणसे अविवाहिता शूद्रामें और शूद्रसे ब्राह्मणीमें पुत्र उत्पन्न हो तो इन दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है, ऐसा यदि संशय हो तो—

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः ।
जातोऽप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः ॥६७॥

शूद्र जातिकी कन्यामें ब्राह्मणसे उत्पन्न पुत्र पाकयज्ञादि गुणोंसे

युक्त होनेके कारण प्रशस्त होता है। परन्तु शूद्रसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्र प्रतिलोमज होनेके कारण, शूद्र जातिमें भी अग्राह्य होता है, इसलिये वह अप्रशस्त है, यह सिद्धान्त है।

तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मो व्यवस्थितः।
वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः ॥६८॥

वे दोनों पारशव और चाण्डाल उपनयनके अधिकारी नहीं हैं, यह धर्मशास्त्रकी व्यवस्था है, क्योंकि पारशव शूद्राके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण जातिवैगुण्यसे उपनयनके योग्य नहीं और चाण्डाल प्रतिलोमज होनेके कारण यज्ञोपवीतके योग्य नहीं।

सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा।
तथार्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति ॥६९॥

जैसे अच्छा बीज अच्छे खेतमें पड़नेसे अच्छी तरह उपजता है उसी तरह आर्य पुरुषसे आर्य स्त्रीमें उत्पन्न पुत्र सब संस्कारोंका अधिकारी होता है।

बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः।
बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः ॥७०॥

कोई बीजकी प्रशंसा करता है और कोई क्षेत्रकी, कोई बीज क्षेत्र दोनोंकी ही प्रशंसा करता है, इसलिये इस विषयमें ऐसी व्यवस्था है—

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति।
अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत् ॥७१॥

ऊसर खेतमें बोया हुआ बीज फल देनेके पूर्व बीचमें ही नष्ट हो जाता है, और जिस खेतमें बीज ही न पड़े वह केवल स्थण्डिलवत रह जाता है ( धान्य उत्पन्न नहीं करता )।

यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन्।
पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते ॥७२॥

जिस कारण बीजके प्रभावसे तिर्यक्‌ जातिमें जन्म लेनेपर भी ( ऋष्यश्रृङ्ग आदि ) ऋषि होकर पूजित और प्रशंसित हुए, इसलिये बीज ही प्रशस्त है ।

अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम् ।
संप्रधार्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति ॥७३॥

द्विजका कर्म करनेवाला शूद्र और शूद्रका कर्म करनेवाला द्विज, इन दोनोंका विचार करके ब्रह्माने यह कहा कि ये दोनों समान भी नहीं हैं और असमान भी नहीं हैं ।

ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्मण्यवस्थिताः ।
ते सम्यगुपजीवेयुः षट्कर्माणि यथाक्रमम् ॥७४॥

जो ब्राह्मण अपने कर्ममें निरत और ब्रह्मनिष्ठ हैं, वे आगे कहे हुए अध्यापन आदि छः कर्मोंको भलीभांति क्रमसे अनुष्ठित करें ।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः ॥७५॥

अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह ये छः कर्म अग्रजन्मा (ब्राह्मण) के हैं ।

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका ।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥७६॥

इन छः कर्मोंमें तीन कर्म ब्राह्मणकी जीविका हैं—याजन (यज्ञ कराना ), अध्यापन और विशुद्ध जातियोंसे दान लेना ।

त्रयो धर्मा निवर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति ।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥७७॥

ब्राह्मणके कारण तीन धर्म क्षत्रियोंसे निवृत्त हैं—अध्यापन, याजन और तीसरा प्रतिग्रह ( अर्थात् इन तीनोंका अधिकार क्षत्रियको नहीं है ) ।

वैश्यं प्रति तथैवैते निवर्तेरन्निति स्थितिः ।
न तौ प्रति हि तान्धर्मान्मनुराह प्रजापतिः ॥७८॥

उसी प्रकार वैश्यसे भी ये तीन धर्म निवृत्त हैं, ऐसी शास्त्रकी मर्यादा है । कारण प्रजापति मनुने उन दोनोंके लिये ये धर्म नहीं कहे ।

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः ।
आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः ॥७९॥

क्षत्रियको अपनी जीविकाके लिये अस्त्रशस्त्र धारण करना चाहिये और वैश्यको वाणिज्य, पशुपालन और खेती करनी चाहिये । इनके लिये धर्म, दान देना, अध्ययन और यज्ञ करना है ।

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् ।
वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥८०॥

ब्राह्मणका वेदाध्ययन, क्षत्रियका प्रजारक्षण और वैश्यका वाणिज्य-ये ही उनके अपने अपने कर्मोंमें विशेष हैं ।

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा ।
जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥८१॥

ब्राह्मण अपने यथोक्त कर्मसे जीविका न चला सके तो क्षत्रियके कर्म ( ग्राम-नगर आदिकी रक्षा ) से जीये, क्योंकि क्षत्रिय-धर्म ही उसका अपने धर्मके बादका निकट धर्म है ।

उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥८२॥

यदि ब्राह्मण अपनी वृत्ति और क्षत्रिय वृत्तिसे भी जीवननिर्वाह न कर सके तो उसे क्या करना चाहिये, ऐसी अवस्थामें खेती और गोरक्षा करके वैश्यवृत्तिका अवलम्बन करे ।

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ।
हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥८३॥

वैश्यवृत्तिसे जीता हुआ ब्राह्मण या क्षत्रिय भी अधिक जीवहिंसा-वाली पराधीन खेतीको यत्नपूर्वक त्याग दे ।

कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता ।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥८४॥

कोई-कोई खेतीको श्रेष्ठ मानते हैं, परन्तु साधुओंने कृषिकर्मकी निन्दा की है, क्योंकि हल, कुदाल आदि लोहा लगा काष्ठ धरतीको विदीर्ण करता है और धरतीमें सोये हुए जीवोंको नष्ट करता है ।

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मनैपुणम् ।
विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥८५॥

अपनी वृत्तिसे रहना असम्भव होनेपर जिन ब्राह्मण-क्षत्रियोंने अपना धर्म-नैपुण्य त्यागा हो वे अपनी धन-वृद्धिके लिये वैश्योंके ही क्रय-विक्रय करनेकी वस्तुओंको ( जो आगे कही गयी हैं उन्हें ) छोड़कर अन्य वस्तुओंका व्यापार करें ।

सर्वान्रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह ।
अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ॥८६॥

सब प्रकारके रसयुक्त पदार्थ, पकान्न, तिल, पत्थर, नमक, पशु और मनुष्य ( इन वस्तुओंको न बेचे ) ।

सर्वं च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च ।
अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः ॥८७॥

सब प्रकारके बुने हुए वस्त्र, कुसुंभादि रंग, और तीसीकी छालके बने तथा ऊनी कपड़े, रंगे न हों तो भी तथा फल, मूल और ओषधिको भी ( न बेचे ) ।

अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गन्धांश्च सर्वशः ।
क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥८८॥

पानी, हथियार, विष, मांस, सोमरस, सब प्रकारकी सुगन्धियां, दूध, दही, घी, तेल, मोम, मधु, गुड़ और कुश (न बेचे)।

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च।
मद्यं नीलिं च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा ॥८९॥

सब प्रकारके जंगली जानवर, डाढ़वाले पशु, पक्षी, मद्य, नील और लाह तथा जिन पशुओंका खुर जुटा हो ( उन्हें न बेचे )।

काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः।
विक्रीणीत तिलाञ्छूद्रान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ॥९०॥

किसान स्वयं अपनी खेतीमें दूसरे अन्नके साथ यथेष्ट तिल उपजाकर धर्मार्थ शीघ्र बेच डाले।

भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः।
कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति ॥९१॥

भोजन, उबटन और दानके अतिरिक्त यदि तिलोंसे अन्य कार्य करे तो करनेवाला कीड़ा होकर पितरोंके साथ कुत्तेकी विष्ठामें निवास करता है।

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥९२॥

मांस लाख और नमक बेचनेसे ब्राह्मण शीघ्र पतित होता है और दूध बेचनेसे तीन दिनमें शूद्र होता है।

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः।
ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैश्यभावं नियच्छति ॥९३॥

ब्राह्मण मांसादिको छोड़, अन्य वर्जित वस्तुओंको अपनी इच्छासे सात दिनतक बेचे तो वैश्यत्वको प्राप्त होता है।

रसा रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः।
कृतान्नं चाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः ॥९४॥

गुड़ आदि रसोंका घृत आदि रसोंसे बदला कर सकते हैं, परन्तु नमक अन्य रसोंसे नहीं बदला जा सकता । पकान्न कच्चे अन्नसे और तिल धानसे तौलमें बराबर करके बदला कर सकते हैं ।

जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ।

न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित् ॥९५॥

विपद्ग्रस्त क्षत्रिय इस प्रकार जीवन-निर्वाह करे, परन्तु ब्राह्मण-की वृत्तिका कभी अवलम्बन न करे ।

यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः ।

तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥९६॥

जो नीच जातिका मनुष्य लोभसे उत्तम जातिकी वृत्तिसे जीविका चलावे, राजा उसका सर्वस्व हरणकर उसी समय देशसे निकाल दे ।

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ।

परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥९७॥

अपना धर्म किसी अंशमें न्यून भी हो तो वही अच्छा है किन्तु दूसरेका धर्म सर्वाङ्गसम्पन्न होनेपर भी अच्छा नहीं है, क्योंकि दूसरेके धर्मका आचरण करता हुआ मनुष्य शीघ्र ही अपनी जातिसे पतित होता है ।

वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि वर्तयेत् ।

अनाचरन्नकार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान् ॥९८॥

वैश्य यदि अपनी वृत्तिसे अपना निर्वाह न कर सके तो कोई अकार्य न करके शूद्रवृत्तिसे भी जीविका चलावे । शक्तिमान होनेपर शूद्रवृत्ति करना छोड़ दे ।

अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् ।

पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः ॥९९॥

यदि शूद्र द्विजातियोंकी सेवा करनेमें असमर्थ हो और उसके स्त्री पुत्र अन्न वस्त्रका कष्ट पा रहे हों तो वह कारीगरी करके अपने परिवारका पोषण करे।

यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः।
तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ॥१००॥

जिन प्रचलित कार्योंसे द्विजातियोंकी सेवा की जा सकती है ऐसे विविध प्रकारके शिल्प तथा कारीगरीके काम हैं।

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथि स्थितः।
अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत् ॥१०१॥

अपने कर्मपथमें स्थित ब्राह्मण वृत्तिके अभावसे पीड़ित होकर यदि वैश्यवृत्ति करना न चाहे तो आगे कही हुई धर्मवृत्तिका आचरण करे।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयं गतः।
पवित्रंदुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते ॥१०२॥

आपदमें फंसा हुआ ब्राह्मण सबसे प्रतिग्रह ले, पवित्र वस्तुका (अपवित्र वस्तुसे) दूषित होना शास्त्रसिद्ध नहीं है। (अभिप्राय यह कि जैसे गङ्गाजीका जल नालियोंके पानीसे दूषित नहीं होता, वैसे वेदाध्यायी ब्राह्मण दुष्ट प्रतिग्रहसे सहसा दूषित नहीं होता।)

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात्।
दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि ते ॥१०३॥

आपत्कालमें अपात्रका अध्यापन करने, याजन करने या प्रतिग्रह लेनेसे ब्राह्मणोंको अधर्म नहीं होता, क्योंकि वे पवित्रतामें अग्नि और जलके समान हैं।

जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः।
आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥१०४॥

प्राण जानेकी नौबत आनेपर जो चाहे जहां अन्न खा लेता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता, जैसे आकाश पङ्कसे लिप्त नहीं होता।

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पद्बुभुक्षितः ।
न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥१०५॥

अजीगर्त ऋषिने क्षुधासे व्याकुल होकर (शुनःशेप नामक) पुत्रको बेंच डाला और यज्ञमें उसकी बलि देनेको तैयार हुआ। क्षुधा-निवृत्तिके लिये ऐसा आचरण करनेपर भी वह पापसे लिप्त न हुआ।

श्वमांसमिच्छन्नार्तोऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः ।
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥१०६॥

धर्म अधर्मको जाननेवाले वामदेव ऋषिने भूखसे व्याकुल होकर प्राणरक्षाके लिये कुत्तेका मांस खानेकी इच्छा की और उस पापसे लिप्त नहीं हुआ।

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने ।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः ॥१०७॥

बेटेके साथ निर्जन वनमें महा तपस्वी भरद्वाज मुनिने क्षुधासे पीड़ित होकर वृधु नामक बढ़ईसे बहुत गायें लीं।

क्षुधार्तश्चात्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ।
चण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥१०८॥

धर्म अधर्मके पूर्ण ज्ञाता विश्वामित्र क्षुधासे पीड़ित होकर चाण्डालके हाथसे कुत्तेकी जंघाका मांस लेकर खानेको उद्यत हुए।

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ।
प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः ॥१०९॥

दान लेना, यज्ञ कराना और वेद पढ़ाना, इन तीनोंमें जो प्रतिग्रह लिया जाता है वह ब्राह्मणके लिये अति निकृष्ट है—वह परलोकमें उसके लिये नरक प्राप्त कराता है।

याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम् ।
प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ॥११०॥

सभी समयोंमें याजन और अध्यापन, ये दोनों कर्म उन्हीं द्विजोंके किये जाते हैं जिनका यज्ञोपवीत-संस्कार होता है। किन्तु प्रतिग्रह तो शूद्र और अन्त्यजसे भी लिया जाता है। (इस कारण पढ़ाने और यज्ञ करानेसे दान लेना निषिद्ध है।)

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् ।
प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च ॥१११॥

दुष्ट याजन और अध्यापनसे जो पाप होता है, वह जप और होमसे नष्ट होता है, परन्तु (असत्) प्रतिग्रहका पाप प्रतिगृहीत वस्तुके त्याग और (आगे बताये हुए) तपसे नष्ट होता है।

शिलोञ्छमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः।
प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युञ्छः प्रशस्यते ॥११२

चाहे जिससे प्रतिग्रह न लेकर ब्राह्मण शिलोञ्छवृत्ति ग्रहण करे। प्रतिग्रहसे शिल* अच्छा है और शिलसे उञ्छ† अच्छा है।

सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्धने वा पृथिवीपतिः ।
याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ॥११३॥

स्नातक ब्राह्मण दरिद्रताके कारण दुखी होकर धनकी इच्छा करें तो उन्हें राजासे याचना करनी चाहिये, यदि वह धन देना न चाहे तो उसे त्याग दे (फिर उससे याचना न करे)।

अकृतं च कृतात्क्षेत्राद्गौरजाविकमेव च ।
हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ॥११४॥

---

* कटे हुए खेतकी बालें बीनकर लाना शिल कहलाता है।

† खेतमें गिरे हुए धानका एक एक दाना चुननेको उञ्छ कहते हैं।

न जोती हुई भूमि जोती हुई भूमिकी अपेक्षा प्रतिग्रहके लिये प्रशस्त है, इसी प्रकार गाय, बकरी, भेड़, सुवर्ण, धान और चावल, इनमें जो पहले कहा गया, वह बाद कहे हुएकी अपेक्षा दोष रहित है।

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥११५॥

धनके सात आगम धर्मानुकूल हैं—दाय (वंशपरम्परागत धन) लाभ (निधि आदिका लाभ) क्रय ( मोल लेना ), जय ( जीतकर लाया हुआ ), प्रयोग ( व्याज आदि), कर्मयोग ( खेती और वाणिज्य ) और सत्प्रतिग्रह।

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः।
धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदं च दश जीवनहेतवः ॥११६॥

विद्या (ज्योतिष, वैद्यक आदि ), शिल्पकला, वैतनिक कार्य, सेवावृत्ति, पशुपालन, वाणिज्य, खेती, सन्तोष, भिक्षा और सूदपर रुपया कर्ज देना, ये दस जीवनोपाय आपत्कालमें हैं।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिं नैव प्रयोजयेत्।
कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् ॥११७॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय आपत्कालमें भी किसीसे सूद न लें। किन्तु धर्मकार्यके लिये यदि पापिष्ठ मनुष्य भी सूदपर रुपया लेना चाहे तो उसे थोड़े व्याजपर रुपया ऋण देना चाहिये।

चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि।
प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते ॥११८॥

आपत्कालमें राजा अन्नका चौथा भाग भी लेकर प्रजाका यथाशक्ति रक्षण करे तो अधिक कर लगानेके पापसे वह मुक्त होता है।

स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः ।
शस्त्रेण वैश्यान्रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥११९॥

शत्रुओंको जीतना यही राजाका स्वधर्म है। इसलिये वह युद्धमें पीठ न दिखावे । शस्त्र द्वारा वैश्योंकी रक्षा करके प्रजाओंसे धर्मानुकूल बलि ले ।

धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम् ।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा ॥१२०॥

(विपत्तिके समय) राजा वैश्योंसे अन्नका आठवां भाग, और कार्षापणांत द्रव्यका बीसवां भाग कर ले सकता है। शूद्र, कारीगर और चित्रकार आदिसे काम कराना चाहिये, (विपत्तिमें भी उनसे कर न लेना चाहिये।)

शूद्रस्तु वृत्तिमाकाङ्क्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि ।
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत् ॥१२१॥

शूद्र, यदि ब्राह्मणकी सेवासे पेट न भरे तो, क्षत्रियकी सेवा करे, उससे भी काम न चले तो धनी वैश्यकी सेवा करके जीवननिर्वाह करे।

स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः ।
जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥१२२॥

शूद्र स्वर्गके लिये या स्वार्थ परमार्थ दोनोंके लिये ब्राह्मणोंकी ही सेवा करे। "अमुक शूद्र ब्राह्मणका आश्रित है" यह कहलवाना ही उसकी कृतकृत्यता है।

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ।
यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् ॥१२३॥

ब्राह्मणकी सेवा करना ही शूद्रके लिये विशेष धर्म कहा गया है। इसके अतिरिक्त वह और जो कुछ करता है वह उसके लिये निष्फल होता है।

प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः।
शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम् ॥१२४

उस परिचारक शूद्रकी सेवाशक्ति, कार्यदक्षता और भृत्योंका परिग्रह अर्थात् उसके कुटुम्बपोषणमें कितना खर्च है, यह देखकर ब्राह्मण अपने घरसे उसकी जीविका नियत कर दे।

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च।
पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः ॥१२५॥

उस सेवापरायण शूद्रको जूठा अन्न, पुराने कपड़े, असार धान्य, और फटा पुराना ओढ़न बिछावन देना चाहिये।

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम् ॥१२६॥

(लहसून आदि दूषित पदार्थ खानेसे) शूद्रको कोई पाप नहीं होता। उसके लिये कोई संस्कार भी नहीं है। (अग्निहोत्र आदि) धर्ममें उसका अधिकार नहीं है और (पाकयज्ञादि) धर्मकार्य्य करनेका उसे निषेध भी नहीं है।

धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः।
मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥१२७॥

जो शूद्र धर्मप्राप्तिकी इच्छा रखते हैं, धर्मज्ञ हैं, और सद्वृत्तिसे रहते हैं, वे यदि मन्त्ररहित पञ्चयज्ञ आदि धर्मका आचरण करें तो वे इससे दोषी नहीं होते, वरन सर्वत्र उनकी प्रशंसा होती है।

यथायथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः।
तथातथेमं चामुं च लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥१२८॥

जैसे जैसे वह किसीकी निन्दा न करके सद्वृत्तिका अनुष्ठान करता है, वैसे वैसे वह लोगोंसे प्रशंसित होकर इस लोकमें यश और मरनेपर स्वर्ग पाता है।

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ।
शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥१२९॥

धनप्राप्तिमें समर्थ होनेपर भी शूद्र धनका संचय न करे। शूद्र धन पाकर ब्राह्मणोंको ही सताता है।

एते चतुर्णां वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्तिताः ।
यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजन्ति परमां गतिम् ॥१३०॥

ये चारों वर्णोंके आपत्कालके कर्तव्य धर्म कहे, जिनका भलीभांति अनुष्ठान कर लोग परमगतिको प्राप्त होते हैं।

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥१३१॥

चारों वर्णोंकी यह समग्र धर्मविधि कही। इसके अनन्तर अब प्रायश्चित्तका शुभ विधान कहूंगा।

* दशम अध्याय समाप्त *

---

## अध्याय ११

सांतानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ।
गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः ॥१॥
नवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान्
निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्या विशेषतः ॥२॥

सन्तान चाहनेवाला (विवाहार्थी), यज्ञ करनेकी इच्छा रखनेवाला, पथिक, सर्वस्व दान देकर विश्वजित् यज्ञ करनेवाला, विद्या गुरुके लिये भोजन वस्त्रका प्रबंध करनेवाला, माता और पिताके

लिये अर्थ चाहनेवाला, वेदाध्यायी ( ब्रह्मचारी ) और रोगी, इन नौ धर्मभिक्षुक ब्राह्मणोंको स्नातक जाने, इन धनहीनोंको विद्या और योग्यताके अनुसार दान देना चाहिये।

एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम्।
इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥३॥

इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेदीके भीतर दक्षिणासहित अन्न देना चाहिये, और इनसे अतिरिक्त ब्राह्मणोंको वेदीके बाहर सिद्धान्न देना कहा है।

सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत्।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ॥४॥

राजा यज्ञ करनेके लिये वेदज्ञ ब्राह्मणोंको यथायोग्य सब प्रकारके रत्न और दक्षिणाके लिये धन देकर उन्हें सन्तुष्ट करे।

कृतदारोऽपरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति।
रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यदातुस्तु संततिः ॥५॥

जो एक विवाह करके फिर भिक्षा मांगकर दूसरा विवाह करता है, उसे रतिमात्र फल होता है। उसमें जो सन्तति उत्पन्न होती है, वह धन देनेवालेकी होती है।

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥६॥

जो पुत्र कलत्र आदिसे असक्त वैदिक ब्राह्मणोंको यथाशक्ति धन देता है, वह मृत्युके अनन्तर स्वर्गसुख भोगता है।

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये।
अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥७॥

जिस मनुष्यके पास तीन वर्ष या इससे अधिक समयतकके लिये पोष्य वर्गके भरणपोषणयोग्य अन्न हो वह सोम यज्ञ कर सकता है।

अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः ।
स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥८॥

जो द्विज इससे थोड़े धनमें सोमयज्ञ करता है, वह पहलेके किये सोमयज्ञका भी फल नहीं पाता ।

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।
मध्वापातो विषास्वादः सधर्मप्रतिरूपकः ॥९॥

जो दानशील धनवान स्वजनोंके दुःख देखते हुए भी यशके लिये दूसरोंको दान देते हैं, उनका वह दान धर्मका कृत्रिम रूप है यथार्थमें वह धर्म नहीं है। वह पहले मधुर दाखनेपर भी परिणाममें विषके सदृश है ।

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥१०॥
[ वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या शिशुः सुतः ।
अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत् ॥ ]

जो भरण पोषण करनेयोग्य माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदिको कष्ट देकर परलोक बनानेके लिये दान पुण्य करता है, उसका वह कर्म इस लोक या परलोकमें कहीं भी सुखका कारण नहीं होता । [ जिसके माता पिता वृद्ध हों, स्त्री पतिव्रता हो और पुत्र शिशु हो, उसे न करनेके सौ काम करके भी उन सबका पालनपोषण करना चाहिये, यह मनुजीने कहा है । ]

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ।
ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि ॥११॥
यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः ।
कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥१२॥

धार्मिक राजाके रहते यज्ञ करनेवालोंमें विशेषकर ब्राह्मणका यज्ञ यदि एक अङ्गसे अपूर्ण रह जाय तो यज्ञसिद्धिके लिये उसे वैश्यके घरसे उतना धन जैसे हो ले लेना चाहिये, जिसके यहाँ बहुत पशु हों, जो पाकयज्ञादिसे रहित हो और जिसने कभी सोमयज्ञ न किया हो।

आहरेत्त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः।
न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः ॥१३॥

यज्ञके दो या तीन अङ्ग अधूरे रह जाय तो उनकी पूर्तिके लिये धनी शूद्रके घरसे बलपूर्वक या चुराकर धन ले आवे; क्योंकि शूद्रका यज्ञोंमें किसी प्रकारका सम्बंध नहीं है।

योऽनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः।
तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् ॥१४॥

एक सौ गायें रखकर जो अग्निहोत्र न करता हो, और एक हजार गायें रखकर जो यज्ञ न करता हो, उन दोनोंके घरसे भी यज्ञाङ्गकी पूर्तिके लिये बिना विचार किये धन हरण कर ले आवे।

आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः।
तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्धते ॥१५॥

यज्ञकी अङ्गपूर्तिके लिये ब्राह्मणसे याचना की जानेपर भी जो कृपण धन न दे उसका धन जैसे हो हरण कर ले आवे। इससे हरण करनेवालेका यश बढ़ता है और धर्मकी वृद्धि होती है।

तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता।
अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥१६॥

भोजन किये जिसे छः सांझ हो गयी हो, वह चौथे दिन सातवें उपवासके खण्डनार्थ एक सन्ध्या भोजनके योग्य कोई वस्तु अपकर्मी मनुष्यके घरसे चुरा लावे तो इसके लिये दोषी नहीं हो सकता।

खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते ।
आख्यातव्यं तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥१७॥

खलिहानसे, खेतसे या घरसे या किसी अन्य स्थानसे अन्न हरण कर ले आनेपर यदि उस अन्नका स्वामी पूछे तो उसे जिस निमित्त अन्न चुराकर लाया हो, स्पष्ट कह दे ।

ब्राह्मणस्वं न हर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन ।
दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन्हर्तुमर्हति ॥१८॥

( पूर्वोक्त अवस्थामें प्राप्त होनेपर भी ) क्षत्रियको ब्राह्मणका धन कभी न लेना चाहिये । (इसी प्रकार वैश्य और शूद्रको भी अपनेसे उत्तम जातिका धन हरण न करना चाहिये ।) परन्तु जो ब्राह्मण या क्षत्रिय अपने धर्मकर्मसे च्युत हुए और प्रतिषिद्ध कर्म करनेवाले हों, आपत्कालमें उनका धन ले सकता है ।

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ।
स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ॥१९॥

जो मनुष्य असाधुओंसे धन लेकर साधुओंको देता है, वह अपनेको नौका बनाकर उन दोनोंको दुःखसे पार करता है ।

यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः ।
अयज्वनां तु यद्वित्तमासुरस्वं तदुच्यते ॥२०॥

यज्ञकर्त्ताओंका जो धन है, उसे विद्वान् लोग देवधन और यज्ञ न करनेवालोंके धनको राक्षसका धन मानते हैं ।

न तस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः ।
क्षत्रियस्य हि बालिश्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥२१॥

इसलिये इसमें धार्मिक राजा दंड न करे ( चोरी या अपहरण करनेवालेको दंड न दे ), कारण राजाकी ही मूर्खतासे ब्राह्मण क्षुधासे पीड़ित होता है ।

तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः ।
श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्यां प्रकल्पयेत् ॥२२॥

उस ब्राह्मणके घरमें कितने व्यक्ति हैं और उसकी विद्या और आचार कैसा है, यह जानकर राजा अपने यहांसे तदनुसार वृत्ति नियत कर दे।

कल्पयित्वास्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः ।
राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात् ॥२३॥

राजा उसकी जीविका नियत करके सब प्रकारसे उसकी रक्षा करे, क्योंकि उसके रक्षणसे राजा उसके धर्मका छठा भाग पाता है।

न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित् ।
यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते ॥२४॥

ब्राह्मण यज्ञके लिये शूद्रसे कभी धनकी याचना न करे,क्योंकि शूद्रसे याचना करनेवाला यज्ञकर्त्ता मरनेपर चाण्डाल होकर जन्म लेता है।

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ।
स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः ॥२५॥

यज्ञके लिये धन-याचना करके जो ब्राह्मण यज्ञमें सब नहीं लगा देता, वह सौ वर्षतक भासपक्षी या कौवा होकर रहता है।

देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः ।
स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥२६॥

जो देवताके निमित्त उत्सृष्ट धन या ब्राह्मणकी सम्पत्तिको लोभसे अपहरण करता है, वह पापात्मा जन्मान्तरमें गिद्धका जूठा खाकर जीता है।

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ।
क्लृप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभवे ॥२७॥

एक वर्ष समाप्त होनेपर दूसरे वर्षके भीतर विहित पशुसोमयज्ञ न कर सके तो उसके न करनेके दोषशान्त्यर्थ शूद्रादिसे धन ग्रहण करके भी वैश्वानर यज्ञ अवश्य करे।

आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः।
स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥२८॥

जो द्विज निरापद अवस्थामें आपत्कालकी तरह धर्मका अनुष्ठान करता है, परलोकमें वह उसका फल नहीं पाता, यह (मन्वादि महर्षियोंने ) विचारकर निश्चित किया है।

विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः।
आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥२९॥

विश्वेदेव, साध्यगण, और मृत्युसे भयभीत महर्षि तथा ब्राह्मणोंने आपत्कालमें इस वैश्वानर यज्ञको सोमयज्ञका प्रतिनिधि किया है ( अर्थात् सोमयज्ञ न हो सकनेपर वैश्वानर यज्ञ करे। )

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते।
न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥३०॥

जो मुख्य अनुष्ठानादि क्रिया करनेमें समर्थ होकर भी आपत्कालकी विहित विधिसे कर्म करता है, उस दुर्बुद्धिको उस कर्मका पापनाशहेतुक पारलौकिक फल प्राप्त नहीं होता।

न ब्राह्मणो वेदयेत किंचिद्राजनि धर्मवित्।
स्ववीर्येणैव तांछिष्यान्मानवानपकारिणः ॥३१॥

धर्मज्ञ ब्राह्मण किसीके अपकारको राजासे न कहे। उन अपकारी मनुष्योंको अपनी सामर्थ्यसे ही दण्ड दे।

स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्यं बलवत्तरम्।
तस्मात्स्वेनैव वीर्येण निगृह्णीयादरीन्द्विजः ॥३२॥

अपनी सामर्थ्य और राजाकी सामर्थ्य, इन दोनोंमें अपनी ही

सामर्थ्य विशेष बलवाली है। इसलिये ब्राह्मणको अपनी ही शक्तिसे शत्रुओंका दमन करना चाहिये।

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः ॥३३॥

अथर्ववेदमें अङ्गिराने (दुष्टोंके प्रति अभिचार करनेकी) जो श्रुति कही है उसे बिना विचारे करे। ब्राह्मणकी वाणी ही उसका शस्त्र है, उसीसे शत्रुओंका संहार करे।

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मनः।
धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥३४॥

क्षत्रिय बाहुबलसे अपनी विपद्को पार करे। वैश्य और शूद्र धनसे और ब्राह्मण अभिचारात्मक जप होमसे अपनी आपत्तिको दूर करे।

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।
तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥३५॥

विधाता ( शास्त्रविहित कर्म्म करनेवाला ), ( पुत्र और शिष्य आदिका ) शासन करनेवाला और (प्रायश्चित्त आदि धर्मोंका) उपदेश करनेवाला, (सब प्राणियोंसे) मैत्री करनेवाला ब्राह्मण कहलाता है। उसे कोई अनिष्ट वचन या रूखी बात न कहे।

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥३६॥

कन्या, युवती स्त्री, कम पढ़ालिखा, मूर्ख, पीड़ित और अनुपनीत, ये अग्निहोत्रके हवन-कर्मको न करें।

नरके हि पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्य तत्।
तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः ॥३७॥

ये होम करें तो नरकगामी हों और जिसके लिये होम करें वह

भी नरकको जाता है। इसलिये जो वैदिक कर्ममें कुशल और सम्पूर्ण वेदोंको जानता हो, वही होता हो सकता है।

प्राजापत्यमदत्त्वाश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम्।
अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति ॥३८॥

कोई ब्राह्मण धन-सम्पत्तिके होते हुए भी अग्निहोत्रकी दक्षिणामें प्रजापति देवतासम्बन्धी अश्व न देकर अग्निका आधान करे तो वह अग्न्याध न करना न करनेके बराबर होता है।

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः।
न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजन्ते ह कथंचन ॥३९॥

श्रद्धापूर्वक जितेन्द्रिय होकर तीर्थयात्रा आदि अन्य पुण्य करे, परन्तु थोड़ी दक्षिणा देकर कदापि यज्ञ न करे।

इन्द्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजाः पशून्।
हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥४०॥

थोड़ी दक्षिणावाला यज्ञ नेत्र आदि इन्द्रियां, यश, स्वर्ग, आयु, कीर्ति, सन्तान और पशु, इन सबका नाश करता है। इसलिये अल्प धनसे अर्थात् थोड़ी दक्षिणा देकर यज्ञ न करे।

( अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः।
दीक्षितं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः )

[ अन्नहीन यज्ञ राष्ट्रका, मन्त्रहीन ऋत्विजका और दक्षिणाहीन यजमानका नाश करता है, इसलिये यज्ञके समान कोई शत्रु नहीं है। ]

अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः।
चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरहत्यासमं हि तत् ॥४१॥

अग्निहोत्री ब्राह्मण अपनी इच्छासे प्रातःकालिक और सायंकालिक

होम न करे तो एक मास चान्द्रायण व्रत करे, क्योंकि अग्निहोत्रका होम छोड़ देना पुत्रहत्याके समान है।

ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते।
ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥४२॥

जो ब्राह्मण शूद्रसे धन लेकर अग्निहोत्र करते हैं, वे शूद्रोंके ही ऋृत्विज होते हैं; वेदवेत्ताओंमें वे निन्दित हैं।

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम्।
पदा मस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि सन्तरेत् ॥४३॥

उन मूर्ख, शूद्रके धनसे अग्निका उपसेवन करनेवाले ब्राह्मणोंके मस्तकपर पैर रख वह शूद्र सब दुःखोंको पार करता है।

अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन्।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥४४॥

शास्त्रविहित कर्म्मका न करनेवाला और निन्दित कर्म करने-वाला विषयासक्त मनुष्य प्रायश्चित्ती होता है।

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥४५॥

अनिच्छासे किये हुए पापका (भी) प्रायश्चित्त है ऐसा (कुछ) पण्डित कहते हैं और दूसरे यह कहते हैं कि श्रुतिके अनुसार इच्छापूर्वक किये हुए पापका (ही) प्रायश्चित्त होता है।

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति।
कामतस्तु कृतंमोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥४६॥

जो पाप अनिच्छासे हो जाय, वह वेदमन्त्रोंके पाठसे शुद्ध होता है और जो मोहवश जानकर किया जाता है, उसकी शुद्धि नाना प्रकारके भिन्न-भिन्न प्रायश्चित्तों द्वारा होती है।

प्रायश्चित्तीतयां प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा ।
न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥४७॥
[ प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते ।
तपोनिश्चय संयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥ ]

प्रायश्चित्त करनेकी अवस्थाको प्राप्त करके चाहे वह इस जन्मके किसी पापसे हो अथवा पूर्वजन्मार्जित दैवसे हो, प्रायश्चित्त न करनेवाला द्विज सज्जनोंके साथ संसर्ग न करे ।

[ प्रायः नाम तपका है, चित्त कहते हैं निश्चयको, तप और निश्चयसे युक्त होनेके कारण प्रायश्चित्त कहलाया । ]

इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा ।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥४८॥

कोई पापी मनुष्य इस जन्मके दुराचारोंसे और कोई पूर्वजन्मके किये पापोंसे विकृत रूपको प्राप्त होते हैं ।

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् ।
ब्रह्महा क्षयरोगित्वं दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः ॥४९॥
पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम् ।
धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्रकः ॥५०॥
अन्नहर्तामयावित्वं मौक्यं वागपहारकः ।
वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यं पङ्गुतामश्वहारकः ॥५१॥

सोना चुरानेवाला कुनखी होता है अर्थात् उसके नह खराब होते हैं । मद्य पीनेवालेके दांत काले हो जाते हैं । ब्रह्मघाती क्षयरोगको प्राप्त होता है । गुरुपत्नीमें गमन करनेवालेकी जननेन्द्रिय ऊपरकी त्वचासे रहित होती है । दूसरेकी चुगली करनेवालेकी नाकसे और दूसरेकी झूठ-मूठ निन्दा करनेवालेके मुखसे दुर्गन्ध आती है । धान्य चुरानेवाला अङ्गहीन होता है । अनाज आदिमें

खराब चीज मिलानेवालेका कोई अङ्ग अधिक हो जाता है। भोजन चुरानेवाला मन्दाग्नि रोगी होता है। कपटसे विद्या हरण करनेवाला गूंगा होता है। वस्त्र चुरानेवाला श्वेतकुष्ठी और घोड़ा चुरानेवाला लंगड़ा होता है।

[ दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्।
हिंसया व्याधिभूयस्त्वमरोगित्वमहिंसया॥ ]

[ दिया चुरानेवाला अन्धा, दिया बुझानेवाला बहरा, हिंसा करनेवाला रोगी और हिंसा न करनेवाला अरोगी होता है। ]

एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्विगर्हिताः।
जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा॥५२॥

इस प्रकार कर्मविशेषसे मनुष्य जड़, मूक, अन्ध, बधिर और विकृत रूपवाले तथा सुजनोंमें निन्दित होते हैं।

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये।
निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः॥५३॥

इसलिये पाप धो डालनेके निमित्त सदा प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो प्रायश्चित्तद्वारा पापका नाश नहीं करते वे कुलक्षणों से युक्त उत्पन्न होते हैं।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥५४॥

ब्रह्महत्या, मद्यपान, सोना चुराना, गुरुपत्नीगमन, ये ( चारों ) महापातक कहे गये हैं और इनके साथ इनका संसर्ग भी (महापातक है। )

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया॥५५॥

अपनी बड़ाईके लिये झूठ बोलना ( जैसे कोई ब्राह्मण न होकर

कहे कि मैं ब्राह्मण हूं, ) राजासे किसीको चुगली करना ( ऐसी कि जिससे उसके प्राणोंपर आ पड़े), गुरुकी मिथ्या निन्दा, ये ब्रह्म-हत्याके समान पाप हैं।

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः।
गर्हितानाद्ययोर्जग्धिः सुरापान समानि षट्॥५६॥

पढ़े हुए वेदका अभ्यास न करनेके कारण उसे भूल जाना, वेदकी निन्दा करना, झूठी गवाही देना, मित्रकी हिंसा, निन्दित और अखाद्य वस्तुओंका भक्षण, ये छः मद्यपानके समान हैं।

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च।
भूमिवज्रमणीनां च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्॥५७॥

किसीके निक्षेप ( धरोहर ) को हड़प जाना और मनुष्य, घोड़ा चांदी, भूमि, हीरा, मणि, इनका हरण करना सुवर्णस्तेयके तुल्य है।

रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः॥५८॥

सगी बहन, कुमारी, चाण्डालिन, मित्रपत्नी और पुत्रवधू, इनमें वीर्यसिञ्चन करना गुरुपत्नीगमनके समान जानना।

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः।
गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च॥५९॥
परिवित्तितानुजेऽनूढे परिवेदनमेव च।
तयोर्दानं च कन्यायास्तयोरेव च याजनम्॥६०॥
कन्याया दूषणं चैव वार्धुष्यं व्रतलोपनम्।
तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः॥६१॥
व्रात्यता बान्धवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च।
भृत्या चाध्ययनादानमपण्यानां च विक्रयः॥६२॥

सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम् ।
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥६३॥
इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् ।
आत्मार्थं च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनं तथा ॥६४॥
अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया ।
असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया ॥६५॥
धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यं चोपपातकम् ॥६६॥

गोवध, जाति और कर्मसे दूषित मनुष्योंको यज्ञ कराना, परस्त्रीगमन, अपनेको बेचना, गुरु माता पिताकी सेवा न करना, वेदाध्ययनका त्याग, स्मार्तअग्निका परित्याग, सन्तानका भरणपोषण न करना, परिवित्ति ( विवाहित छोटे भाईका अविवाहित बड़ा भाई ) और परिवेत्ता इन दोनों दोषवालोंको कन्या देना, उन दोनोंको यज्ञ कराना, कन्याको दूषित करना, सूदपर रुपया लगाना, ब्रह्मचर्यव्रतका लोप, पोखर, बाग, स्त्री, और सन्तानका बेचना, व्रात्यता, बन्धुत्याग, नियत रूपसे वेतन लेकर शास्त्र पढ़ाना, नियत वेतन-प्रदानपूर्वक पढ़ना, जो वस्तु बेचनेयोग्य न हो उसकी बिक्री करना, सब प्रकारकी खानोंमें अधिकारी होना, बड़े बड़े प्रवाहोंमें सेतुनिर्माणके लिये बड़ी-बड़ी कलें बनाना, औषधियोंकी जड़ खोदना, स्त्रीके व्यभिचारसे जीविका चलाना, मन्त्रयन्त्रके द्वारा मारण उच्चाटन आदि, निरपराधी जीवका बध, ईंधनके लिये हरे पेड़ोंको काटना, अपने लिये ही रसोई बनाना, निन्दित अन्न खाना, अग्निहोत्र न करना, किसीकी चीज चुराना, ऋण न चुकाना, वेदविरुद्ध शास्त्रका पढ़ना, अभिनय करना, धान्य, तांबा और पशु चुराना, मद्य पीनेवाली स्त्रीका सेवन करना, स्त्री, शूद्र, वैश्य और क्षत्रियका बध तथा नास्तिकता, ये सब उपपातक हैं।

ब्राह्मणस्य रुजःकृत्या घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः ।
जैह्म्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥६७॥

ब्राह्मणको लाठी वा थप्पड़से मारना, लहसन आदि और मद्यका सूंघना, कुटिलता और पुरुषके साथ मैथुन, ये सब जाति-भ्रंशकर पाप हैं ।

खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा ।
संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥६८॥

गधे, घोड़े, ऊंट, मृग, हाथी, बकरे, भेड़, मछली, सांप और भैंस, इनका मारना संकरीकरण पाप है ।

निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् ।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् ॥६९॥

निन्दितोंसे धन लेना, वाणिज्य करना, शूद्रकी सेवा करना और झूठ बोलना अपात्रीकरण पाप है, ऐसा जानना ।

कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् ।
फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥७०॥

कीड़े, पिपीलिका और पक्षीकी हत्या, मद्यके साथ लायी हुई वस्तुओंका भोजन, फल, लकड़ी, फूलकी चोरी और अधीरता, ये मलावह अर्थात् मलिनीकरण पाप हैं ।

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ।
यैर्यैर्व्रतैरपोह्यन्ते तानि सम्यङ्निबोधत ॥७१॥

ये सब पूर्वोक्त जितने पाप पृथक्-पृथक् कहे हैं, वे जिन-जिन प्रायश्चित्तरूप व्रतोंसे नष्ट होते हैं, उन्हें भलीभांति सुनो ।

ब्रह्महा द्वादश समाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् ।
भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥७२॥

ब्रह्मघाती बारह वर्ष वनमें कुटी बनाकर रहे और उस पापसे छूटनेके लिये हाथमें नरमुण्ड लेकर भीख मांगे और वही खाकर निर्वाह करे।

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः।
प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः ॥७३॥

अथवा अपनी इच्छासे अपनेको जानकर शस्त्रधारियोंके प्रहारका लक्ष्य बनावे अथवा प्रज्वलित अग्निमें सिर नीचा कर अपनेको तीन बार झोंके।

यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा।
अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥७४॥

अथवा अश्वमेध स्वर्जित् ( यज्ञविशेष ), गोसव, अभिजित, विश्वजित् यज्ञ या तीन बार अग्निष्टोम यज्ञ करे।

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत्।
ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ्नियतेन्द्रियः ॥७५॥

या वेदोंमें किसी एक वेदको जपता हुआ, अल्पाहारी और जितेन्द्रिय होकर ब्रह्महत्याका पाप दूर करनेके लिये एक सौ योजन तक जाय।

सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत्।
धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥७६॥

अथवा वैदिक ब्राह्मणको सर्वस्व दान कर दे या उनके जीवनके लिये जितना धन आवश्यक हो उतना गृह और परिच्छेदके साथ दे।

हविष्यभुग्वाऽनुसरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम्।
जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम् ॥७७॥

अथवा हविष्य भोजन कर सरस्वती नदीकी धारा जहांतक

गयी हो वहांतक जाय । किंवा परिमित आहार करता हुआ तीन बार सम्पूर्ण वेदसंहिताको जपे ।

कृतवापनो निवसेद्ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा ।
आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥७८॥

अथवा सिरके बाल मुड़ाकर गाय ब्राह्मणोंका उपकार करता हुआ गाँवके बाहर, गोशालामें, कुटीमें या पेड़के नीचे निवास करे ।

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥७९॥

अथवा ब्राह्मण और गौकी प्राणरक्षामें शीघ्र अपने प्राणोंको तत्काल त्याग दे । गो-ब्राह्मणका रक्षक ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है ।

त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा ।
विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥८०॥

ब्राह्मणके धनको तीन बार डाकुओंके हाथसे रोक रखनेवाला या उसके सर्वस्वको चोरोंसे जीतकर उसे अर्पित करनेवाला या ब्राह्मणके निमित्त प्राण गंवानेवाला ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है ।

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ।
समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥८१॥

इस प्रकार दृढ़व्रत, संयमचित्त और ब्रह्मचारी होकर बारह वर्षतक सर्वदा नियमपूर्वक रहे तो ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाय ।

शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे ।
स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते ॥८२॥

अथवा अश्वमेधयज्ञमें ब्राह्मण, ऋत्विज, और यज्ञकर्त्ता राजाके समक्ष अपनी ब्रह्महत्याके पापका व्याहार करके अवभृथस्नान करनेसे वह पाप-विमुक्त होता है ।

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ।
तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति ॥८३॥

ब्राह्मण धर्मका मूल है और क्षत्रिय उसका अग्रभाग; इसलिये उनके द्वारा अनुष्ठित अश्वमेधयज्ञमें उनके समक्ष पाप प्रकट करनेसे वह शुद्ध होता है।

ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि दैवतम् ।
प्रमाणं चैव लोकस्य ब्रह्मात्रैव हि कारणम् ॥८४॥

ब्राह्मण जन्मसे ही देवताओंका भी देवता है और वह लोगोंमें प्रमाण माना जाता है, इसमें कारण ब्रह्म (वेद) ही है।

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनः सुनिष्कृतिम् ।
सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक् ॥८५॥

ऐसे ब्राह्मणोंमेंसे तीन वेदविद् ब्राह्मण भी पापसे उद्धार पानेका जो उपाय बतावें उससे पापियोंकी शुद्धि हो सकती है; कारण पण्डितोंकी वाणी पवित्र ( पावन करनेवाली) होती है।

अतोऽन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः ।
ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥८६॥

इस हेतु वह ब्राह्मण संयतचित्त होकर पूर्वोक्त प्रायश्चित्तोंमेंसे किसी भी विधिका अनुष्ठान कर आत्मनिष्ठतासे ब्रह्महत्याके पापका नाश कर सकता है।

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ।
राजन्यवैश्यौ चेजानावात्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥८७॥

अज्ञात गर्भको, यज्ञ करते हुए क्षत्रिय और वैश्यको तथा रजस्वला स्त्रीको मारकर ब्रह्महत्याके इन उपरोक्त प्रायश्चित्तोंको ही करे।

उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुद्ध्य गुरुं तथा ।
अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्वधम् ॥८८॥

गवाहीमें झूठ बोलने, गुरुपर झूठा दोष लगाने, धरोहर हड़पने, स्त्री और मित्र (ब्राह्मणेतर) का वध करनेपर भी ब्रह्म-हत्याका प्रायश्चित्त करे।

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम्।
कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते ॥८९॥

अनिच्छासे किये ब्राह्मण-वधकी यह विशुद्धि कही गयी। इच्छा-पूर्वक ब्राह्मणके मारनेका प्रायश्चित्त नहीं है। (अर्थात् जान-बूझकर ब्रह्महत्या करनेवालेकी शुद्धिके लिये कोई व्रत नहीं है।)

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
तया स काये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः ॥९०॥

ब्राह्मण मोहसे मदिरा पीकर उस पापकी शान्तिके लिये अग्निके वर्णकी तप्त मदिरा पान करे, उससे जब उसका शरीर दग्ध होता है तब वह उस पापसे मुक्त होता है।

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा।
पयो घृतं वामरणाद्गोशकृद्रसमेव वा ॥९१॥

अथवा गोमूत्र, जल, गायका दूध, गायका घृत और गायके गोबरका रस, इनमें किसी एकको आगके समान लाल करके तब-तक पीये जबतक मर न जाय।

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि।
सुरापानापनुत्त्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ॥९२॥

अथवा सुरापानके दोषशान्त्यर्थ ऊनी वस्त्र पहने, जटा रखे और सुरापानका चिह्न धारण करे। एक वर्षतक रातमें एकबार किसी अन्नकी पीठी या तिलकी खलीमात्र खाय।

सुरां वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥९३॥

मदिरा अन्नोंका मल है। मल पापको कहते हैं। इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मदिरा न पीयें।

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥९४॥

गौड़ी, पैष्टी और माध्वीके भेदसे मदिरा तीन प्रकारकी होती है। (जो मदिरा गुड़से बनती है उसे गौड़ी, जो मिष्टान्नसे बनती है उसे पैष्टी, और जो महुएसे बनती है उसे माध्वी कहते हैं।) ये तीनों एकसी हैं। ब्राह्मण इनका पान न करें।

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्।
तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥९५॥

मद्य*, मांस, मदिरा और आसव, ये यक्ष राक्षसोंके खानेपीनेकी चीजें हैं। उन्हें देवताओंके हव्य खानेवाले ब्राह्मणको नहीं खाना चाहिये।

अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं वाप्युदाहरेत्।
अकार्यमन्यत्कुर्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः ॥९६॥

ब्राह्मण मदोन्मत्त होकर अपवित्र स्थानमें गिर पड़े, या यत्रतत्र वेदवाक्य बके, या और ही कोई काम जो न करनेका हो वही कर बैठे, इसलिये उसे कदापि मदिराको छूना तक नहीं चाहिये।

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत्।
तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वं च स गच्छति ॥९७॥

जिस ब्राह्मण-शरीरकी आत्मा एक बार भी मदिरासे प्लावित हो जाती है उसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है और वह शूद्रत्वको प्राप्त होता है।

---

*मानसद्राक्षमाध्वीकं खार्जरं तालमैक्षवम्।
माध्वीकं पङ्कमार्द्वीकमैरेयं नालिकेरजम्।
सामान्यानि द्विजातीनां मद्यान्येकादशैव च ॥ पुलस्त्यः ॥

एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥९८॥

सुरापानका यह विचित्र प्रायश्चित्त कहा, अब सोना चुरानेका प्रायश्चित्त कहते हैं ।

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥९९॥

सोना चुरानेवाला ब्राह्मण राजाके पास जाकर अपने किये कर्मका ख्यापन करता हुआ कहे कि आप इस कर्मके लिये मुझे दण्ड दें ।

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् ।
वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥१००॥

राजा वह मुसल लेकर स्वयं उसपर एकबार प्रहार करे । चोर ( ब्राह्मणसे भिन्न वर्णका हो ) तो वधसे शुद्ध होता है, पर ब्राह्मण तपसे ही शुद्ध होता है ।

तपसापनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥१०१॥

सोना चुरानेके पापको नाश करनेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणको चाहिये कि पुराने वस्त्रको धारण कर वनमें ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे ।

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः ।
गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥१०२॥

द्विज इन पूर्वोक्त ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तोंसे चोरीके पापोंका नाश करे और गुरुपत्नीगमनका पाप आगे कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे दूर करे ।

गुरुतल्प्यभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये ।
सूर्मीं ज्वलन्तीं स्वाश्लिष्येन्मृत्युना स विशुद्ध्यति॥१०३

गुरुपत्नीमें गमन करनेवाला अपने पापकी ख्याति करके लोहेकी तप्त शय्यापर सोवे या लोहे की स्त्री-प्रतिमा बनाकर उसे आगमें लाल कर अच्छी तरह उसका आलिङ्गन करे, इस प्रकार मृत्यु होनेसे वह शुद्ध होता है।

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ ।
नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः ॥१०४॥

अथवा स्वयं अपने लिङ्ग और अण्डकोशको काटकर अंजलिमें ले, जबतक देहपात न हो सीधे दक्षिण-पश्चिमके कोणमें दौड़ता हुआ जाय ।

खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने ।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः ॥१०५॥

अथवा खट्वाङ्ग धारणकर, फटे-पुराने कपड़े पहन, बाल बढ़ाकर, निर्जन वनमें आलस्यरहित होकर एक वर्षतक कृच्छ्रप्राजापत्य व्रत करे ।

चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः ।
हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये ॥१०६॥

अथवा गुरुपत्नीगमनके पापनाशार्थ जितेन्द्रिय होकर तीन महीनेतक फल मूल आदि हविष्य खाकर या यवागू* पान करके चान्द्रायणव्रत करे ।

एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम् ।
उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः ॥१०७॥

महापातकी इन पूर्वोक्त व्रतोंसे पापका नाश करें और उपपातकी आगे कहे हुए विविध प्रकारके व्रतोंसे अपने पापको दूर करें ।

---

*षड्गुणजलपक्वघनद्रवद्रव्यविशेषः ।
अन्यच्च—मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि ।

उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत् ।
कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥१०८॥

गोवध करनेवाला उपपातकी एक मासतक यवागू पान करे और शिखासहित सिरके बाल मुड़ाकर उसी मृत गौका चमड़ा ओढ़कर गौशालामें निवास करे ।

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम् ।
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥१०९॥

दो मासतक जितेन्द्रिय होकर नित्य गोमूत्रसे स्नान करे और तीन सांझ उपवास करके चतुर्थ सांझको खारा और नमक न खाकर परिमित हविष्य-भोजन करे ।

दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्ध्वं रजः पिबेत् ।
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥११०॥

दिनमें गौओंके पीछे-पीछे जाय और उनके खुरोंसे उड़ती हुई धूल फांके । रातमें उनकी सेवा करके उन्हें प्रणाम करे और वीरासनसे उनके पास बैठे ।

तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ।
आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥१११॥

गायें खड़ी हों तो आप भी खड़ा हो जाय, वे चलें तो आप भी उनके पीछे पीछे चले, उनके बैठनेपर बैठे । यह तीन महीने-तक नित्य नियमपूर्वक क्रोधरहित होकर करे ।

आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः ।
पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥११२॥

और जो गाय व्याधिग्रस्त हो, चोर और बाघ आदि दुष्ट जन्तुओंके भयसे भीत हो, गिर पड़ी हो या पङ्कमें फंसी हो, उसका, जहांतक हो सके, सब उपायोंसे उद्धार करे ।

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्।
न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥११३॥

गर्मी, वर्षा और जाड़ेमें या हवा जिस समय बड़े वेगसे बह रही हो, उस समय यथासाध्य गायकी रक्षा किये बिना अपनी रक्षा न करे।

आत्मनो यदि वान्येषां गृहेक्षेत्रेऽथवा खले।
भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥११४॥

अपने या दूसरोंके घरमें, खेतमें या खलिहानमें अन्न खाती हुई गौको और दूध पीते हुए बछड़ेको न रोके और न दूसरेको रोकनेके लिये कहे।

अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति।
स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥११५॥

जो गोघाती इस विधिसे गायकी सेवा करता है, वह तीन महीनेमें गोहत्याके पापको निःशेष करता है।

वृषभैकादशा गाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः।
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥११६॥

सम्यक् प्रकारसे व्रत करके वेदज्ञ ब्राह्मणोंको एक बैल और दश गाय दे। यदि उतने गाय-बैल न हों तो जो कुछ अपने पास हो, वह सब उन वेदाध्यायी ब्राह्मणोंको दे दे।

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः।
अवकीर्णिवर्ज्यं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा ॥११७॥

अवकीर्णी ( भ्रष्टव्रत ) को छोड़कर उपपातकी द्विज पापशुद्धिके लिये इसी पूर्वोक्त व्रतको करे अथवा चान्द्रायण व्रत करे।

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे।
पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥११८॥

अवकीर्णी चौराहेमें काने गधेके द्वारा पाकयज्ञकी विधिसे रातको निर्ऋति देवताका यजन करे ।

हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा ।
वातेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाहुतीः ॥११९॥

अग्निमें विधिपूर्वक होम करके पश्चात् "समासिञ्चन्तु मारुतः" इस ऋचासे वायु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्निको घृतसे अग्निमें आहुति दे ।

कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य द्विजन्मनः ।
अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥१२०॥

जो ब्रह्मचारी द्विज इच्छासे वीर्यसिञ्चन* करता है, उसका व्रत नष्ट हो जाता है, ऐसा धर्मके ज्ञाता वेदवादियोंने कहा है ।

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च ।
चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥१२१॥

ब्रह्मचारीके अवकीर्णी होनेपर उसका ब्राह्मतेज वायु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि, इन चारों देवताओंके पास चला जाता है ।

एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् ।
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥१२२॥

यह अवकीर्ण पाप हो जानेपर पूर्वोक्त गर्दभयज्ञ करके गधेका चमड़ा पहनकर अपने दुष्कर्मकी घोषणा करता हुआ सात घरोंसे भिक्षा मांग लावे ।

तेभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुद्ध्यति ॥१२३॥

उन सात घरोंसे पायी हुई भिक्षासे दिन-रातमें एकबार आहार करे और दिनमें तीन बार स्नान करे, तब वह अवकीर्णी एक वर्षमें उस पापसे शुद्ध होता है ।

---

* अवकीर्णी भवेद्गत्वा ब्रह्मचारी च योषितम् ॥

जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया ।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया ॥१२४॥

जातिभ्रंशकर पापोंमें अपनी इच्छासे कोई अपकर्म करके कृच्छ्रसान्तपन व्रत करे और अनिच्छासे करके आगे कहे हुए प्राजापत्य व्रतको करे ।

संकरापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम् ।
मलिनीकरणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥१२५॥

संकरीकरण और अपात्रीकरण, इन दोनों पापोंमें कोई एक अपनी इच्छासे करनेवाला उस पापके शान्त्यर्थ चान्द्रायणव्रत करे और मलिनीकरण पापोंके शान्त्यर्थ तीन दिनतक गरम लपसी खावे ।

तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ।
वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥१२६॥

क्षत्रियके वधमें ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तका चौथा भाग, स्वकर्मनिष्ठ वैश्यके वधमें आठवां भाग और शूद्रके वधमें सोलहवां भाग प्रायश्चित्त कहा है ।

अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ।
वृषभैकसहस्रा गा दद्यात्सुचरितव्रतः ॥१२७॥

जो ब्राह्मण अज्ञानसे क्षत्रियकी हत्या करे वह विधिपूर्वक व्रतका आचरण कर एक बैल और एक हजार गायें ब्राह्मणोंको दे ।

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ।
वसन्दूरतरे ग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः ॥१२८॥

अथवा तीन वर्ष जटा धारणकर गांवसे दूर किसी पेड़के नीचे निवास करके ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करे ।

एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।
प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥१२९॥

सदाचारी वैश्यकी हत्या करके एक वर्षतक यही पूर्वोक्त प्रायश्चित्त करे या एक सौ एक गायें दान करके ब्राह्मणोंको दे।

**एतदेव व्रतं कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहा चरेत्।**
**वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥१३०॥**

अज्ञानतासे शूद्रका वध करनेवाला इन्हीं पूर्वोक्त व्रतोंको छः मासतक करे अथवा श्वेतवर्णकी दस गायें और एक बैल ब्राह्मणको दे।

**मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च।**
**श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१३१॥**

बिल्ली, नेवला, नीलकण्ठ पक्षी, मेंढक, कुत्ता, गोह, उल्लू और कौआ, इन्हें मारकर शूद्रवधका प्रायश्चित्त करे।

**पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाध्वनो व्रजेत्।**
**उपस्पृशेत्स्रवन्त्यां वा सूक्तं वाब्दैवतं जपेत् ॥१३२॥**

अथवा तीन राततक केवल दूध पीये, या एक योजनतक पैदल चले, या नदीमें स्नान करे, किंवा "आपोहिष्ठा" इस मन्त्रको जपे।

**अभ्रिं कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः।**
**पलालभारकं षण्ढे सैसकं चैकमाषकम् ॥१३३॥**

ब्राह्मण सांपको मारकर नोकदार लोहेका डण्डा और हिजड़ेकी हत्या करके एक भार पुवाल तथा एक मासा सीसा ब्राह्मणको दे।

**घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ।**
**शुके द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम् ॥१३४॥**

शूकरके मारनेपर एक घड़ा घी, तीतर मारनेपर एक द्रोण तिल, सुग्गेको मारकर दो वर्षका बछड़ा और क्रौञ्च पक्षीको मारकर तीन वर्षका बछड़ा ब्राह्मणको दे।

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च।
वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम्॥१३५॥

हंस, बगुला, बलाका, मोर, वानर, बाज और भास पक्षी, इनमें किसी एकको मारकर ब्राह्मणको गाय उत्सर्ग करके दे।

वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम्।
अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम्॥१३६॥

घोड़े को मारकर वस्त्र, हाथीको मारकर पांच नीले बैल, बकरे और भेड़को मारकर एक वृषभ, और गधेका वध करके एक वर्षका बछड़ा दानकर ब्राह्मणको दे।

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्।
अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्॥१३७॥

कच्चे मांस खानेवाले व्याघ्रादि पशुओंको मारकर दुधार गाय, तृणभोजी हिरण आदि जंगली जानवरोंको मारकर जवान बछिया और ऊंटको मारकर रत्तीभर सोना दान करके ब्राह्मणको दे।

जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये।
चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनवस्थिताः॥१३८॥

ब्राह्मणादि चारों वर्णोंकी व्यभिचारिणी स्त्रियोंको मारकर शुद्धिके लिये यथाक्रम चर्मपुट, धनुष, बकरा और भेड़ दान करे।

दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन्।
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये॥१३९॥

यदि द्विज सर्पादिकोंके मारनेका पाप दानके द्वारा दूर न कर सके तो प्रत्येक पापकी शान्तिके लिये एक एक कृच्छ्र प्राजापत्य व्रत करे।

अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे।
पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्रहत्याव्रतं चरेत्॥१४०॥

हड्डीवाले छोटे प्राणियोंकी एक सहस्र हत्याएं करनेपर और गाड़ीभर बिना हड्डीवाले जीवोंकी हत्या करनेपर शूद्रवधका प्रायश्चित्त करना चाहिये ।

किंचिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे ।
अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥१४१॥

हड्डीवाले क्षुद्र जीवोंके मारनेपर ब्राह्मणको कुछ दे दे और बिना हड्डीके जीवोंकी हिंसा करनेपर प्राणायामसे ही शुद्धि होती है ।

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् ।
गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥१४२॥

फलवान् वृक्ष, गुल्म, वल्ली, लता और फूलवाले पौधे, इनके काटनेपर सौ बार गायत्री-मन्त्रका जप करे ।

अन्नाद्यजानां सत्वानां रसजानां च सर्वशः ।
फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥१४३॥

अनाजोंमें, गुड़ आदि रसोंमें तथा फल-फूलोंमें उपजे हुए जीवोंके मारनेपर घृतका भक्षण करनेसे पापका संशोधन होता है ।

कृष्टजानामोषधीनां जातानां च स्वयं वने ।
वृथालम्भेऽनुगच्छेद्गां दिनमेकं पयोव्रतः ॥१४४॥

जोते हुए खेतमें उपजे धान्य और वनमें स्वयं उत्पन्न पौधोंके वृथा काटनेसे एक दिन दूध-मात्र पीकर रहे और गायके पीछे भ्रमण करे ।

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् ।
ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे ॥१४५॥

ज्ञान या अज्ञानसे किये हुए हिंसाजनित समस्त पापोंको इन पूर्वोक्त व्रतोंसे दूर करे । अब अभक्ष्यभक्षणके प्रायश्चित्तोंको सुनो ।

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति।
मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥१४६॥

द्विज अज्ञानतः वारुणी पीनेपर पुनः संस्कारसे शुद्ध होता है। परन्तु जानबूझकर पीये तो उसके लिये प्रायश्चित्त निर्देश करनेयोग्य नहीं है, जिससे प्राणान्त हो ऐसा कोई प्रायश्चित्त उसके लिये हो सकता है यही इस विषयमें शास्त्रकी मर्यादा है।

अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा।
पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शङ्खपुष्पीश्रितं पयः ॥१४७॥

पैष्टी--सुरापात्रमें या अन्य मद्यभाण्डमें रखा पानी पीनेसे शङ्खपुष्पी ( जड़ी ) के साथ औटा हुआ दूध पाँच रात पीये।

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च।
शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम् ॥१४८॥

मदिराको स्पर्श कर स्वस्तिवाचनपूर्वक उसे ग्रहण करने और शूद्रका जूठा पानी पीनेपर कुशामिश्रित जलको औटकर तीन दिनतक पीये।

ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः।
प्राणानप्सु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥१४९॥

सोमयज्ञ करनेवाला ब्राह्मण मदिरा पीनेवालेके मुखकी गंधका आघ्राण करे तो वह पानीके भीतर तीन बार प्राणायाम करके घृतप्राशनसे शुद्ध होता है।

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः १५०॥

यदि अज्ञानसे विष्ठा, मूत्र या मदिरासे मिला हुआ कोई रस पीये तो (इस दोषके निवारणार्थ) तीनों द्विज वर्ण पुनः संस्कारके योग्य होते हैं।

वपनं मेखला दण्डो भैक्षचर्या व्रतानि च।

निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥१५१॥

द्विजातियोंके पुनः संस्कारकर्ममें मुण्डन, मेखला, दण्डभिक्षा और ब्रह्मचर्यव्रत नहीं करना होता।

अभोज्यानां तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च।

जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥१५२॥

जिनका अन्न खाना मना है उनका अन्न, स्त्री और शूद्रोंका जूठा और अभक्ष्य मांस खाकर सात राततक यवागू या जल मिश्रित जौका सत्तू घोलकर पीये।

शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वा मेध्यान्यपि द्विजः।

तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः ॥१५३॥

सिरका और अर्क शुद्ध भी हो तो उसे पीकर द्विज तबतक अपवित्र रहता है जबतक वह शरीरमें भलीभांति जीर्ण नहीं हो जाता।

विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः।

प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१५४॥

ग्राम्यशूकर, गधा, ऊंट, शृगाल, वानर और कौआ, इनके मलमूत्रको खाकर द्विज चान्द्रायण व्रत करे।

शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च।

अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेव व्रतं चरेत् ॥१५५॥

सूखा मांस या जो जाना हुआ न हो, या जो मांस कसाईके यहांका हो, उन्हें तथा गोबरछत्ते को खाकर वही व्रत (अर्थात् चान्द्रायण) करे।

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे।

नरकाकखराणां च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥१५६॥

कच्चे मांस खानेवाले पशु, सुअर, ऊंट, मुर्गा, मनुष्य, काग और गधा, इनमेंसे किसीका मांस जानबूझकर खाय तो पाप-शुद्धिके लिये तप्तकृच्छ्र व्रत करे।

मासिकान्नं तु योऽश्नीयादसमावर्तको द्विजः।
स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥१५७॥

जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण मासिक श्राद्धसम्बन्धी अन्न खाय तो वह तीन दिन उपवास करे और एक दिन केवल जल पीकर रहे।

ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयान्मधु मांसं कथंचन।
स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् ॥१५८॥

जो ब्रह्मचारी कदाचित् मधु-मांस खा ले, वह प्राजापत्य व्रत करके ब्रह्मचर्य व्रतको समाप्त कर डाले।

बिडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा श्वानकुलस्य च।
केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥१५९॥

बिल्ली, कौआ, चूहा, घोड़ा और नेवला, इनका जूठा और जिस अन्नमें केश या कीड़े पड़ गये हों उसे खाकर ब्रह्मसुवर्चला क्वाथ पीये।

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता।
अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाप्याशु शोधनैः ॥१६०॥

अपनी शुद्धि चाहनेवालेको अशुद्ध अन्न नहीं खाना चाहिये। बिना जाने-बूझे खा ले तो उसे वमन कर बाहर निकाल दे या शीघ्र प्रायश्चित्त करके अपनेको शुद्ध कर ले।

एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्रतानां विविधो विधिः।
स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ॥१६१॥

यह अभक्ष्य-भक्षणके प्रायश्चित्तोंके विविध विधान कहे। अब चोरीके दोषोंके अपहारक व्रतोंकी विधि सुनो।

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्‌द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुद्ध्यति ॥१६२॥

जो ब्राह्मण ज्ञानपूर्वक अपने सजातीयके घरसे अनाज, भात रोटी आदि और धन चुराता है वह एक वर्षतक प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होता है।

मनुष्याणां तु हरेण स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ।
कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥१६३॥

मनुष्य, स्त्री, खेत, घर, कुआँ और बावलीका जल हरण करने-पर चान्द्रायण व्रतसे शुद्धि होती है।

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः ।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥ १६४॥

दूसरेके घरसे साधारण वस्तु चुरानेपर आत्मशुद्धिके लिये वह वस्तु वस्तुवालेको लौटाकर कृच्छ्र सान्तपन व्रत करे।

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥१६५॥

भक्ष्य ( मोदकादि ), भोज्य ( पायस आदि ), सवारी, शय्या, आसन, फूल, फल और मूल—इनके हरण करनेपर पञ्चगव्य पीनेसे शुद्धि होती है।

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ।
चेलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥१६६॥

तृण, लकड़ी, पेड़, सूखा अन्न, गुड़, वस्त्र, चमड़ा और मांस इन वस्तुओंमें किसी एकके चुरानेपर तीन राततक उपवास करे।

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च ।
अयः कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नता ॥१६७॥

मणि, मोती, मूंगा, तांबा, चांदी, लोहा, कांसा और पत्थर,

इनमें किसी एक वस्तुका चुरानेवाला बारह दिनतक अन्नका कण खानेसे शुद्ध होता है।

कार्पासकीटजीर्णानां द्विशफैकशफस्य च।

पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥१६८॥

सूती, रेशमी और ऊनी कपड़े, घोड़े और बैल आदि पक्षी, कर्पूर, चन्दन, औषधि और रस्सी, इनमें किसी एक वस्तुकी चोरी करनेपर तीन दिनतक केवल दुग्ध पान करे।

एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः।

अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत् ॥१६९॥

द्विज इन पूर्वोक्त व्रतोंसे चोरीका पाप दूर करे, और अगम्या गमनका पाप आगे कहे हुए व्रतोंसे नष्ट करे।

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु।

सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥१७०॥

सगी बहन, मित्रपत्नी, पुत्र-वधू, कुँवारी और अन्त्यजा (चण्डालिन) के साथ मैथुन करनेवाला गुरुपत्नीगमनका प्रायश्चित्त करे।

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च।

मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१७१॥

फुफेरी, मौसेरी और ममेरी बहनके साथ गमन करके चान्द्रायण व्रत करे।

एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान्।

ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतति ह्युपयन्नधः ॥१७२॥

बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त तीनोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध न करे, क्योंकि वे नातेमें बहन होनेके कारण व्याहने योग्य नहीं हैं। जो उनके साथ व्याह करता है, वह नरकगामी होता है।

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ।
रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥१७३॥

जो पुरुष अमानुषी (घोड़ी आदि) में, रजस्वला स्त्रीमें, योनिसे भिन्न स्थानमें और जलमें वीर्य-त्याग करता है, वह कृच्छ्र सान्तपन व्रत करनेसे शुद्ध होता है।

मैथुनं तु समासेव्यं पुंसि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत्॥१७४॥

जो द्विज बैलगाड़ीमें, जलमें या दिनमें पुरुषके साथ या स्त्रीके साथ मैथुन करे तो उसे सचैल ( पहने हुए सभी वस्त्रोंके साथ ) स्नान करना चाहिये।

चण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥१७५॥

यदि ब्राह्मण अज्ञानसे चाण्डाल या म्लेच्छकी स्त्रीके साथ गमन करे, उनका अन्न खाय और उनका दान ले तो पतित हो जाय। जान-बूझकर ऐसा करनेवाला उनके बराबर हो जाता है।

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि ।
यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥१७६॥

अपनी इच्छासे व्यभिचार करनेवाली स्त्रीको उसका पति एक घरमें बन्द कर रखे और परस्त्रीगमनमें पुरुषके लिये जो प्रायश्चित्त कहा है, वही उससे करावे।

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता ।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥१७७॥

इस प्रकार विरोध करनेपर भी यदि वह स्त्री फिर सजातीय पुरुषके साथ व्यभिचार करे तो उसकी शुद्धताके लिये उससे कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करावे।

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः ।
तद्भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥१७८॥

द्विज चाण्डालिनके साथ गमन करके एक रातमें जितना पाप सञ्चित करता है, उसे वह भिक्षाका अन्न खाकर नित्य गायत्री जपता हुआ तीन वर्षमें दूर करता है।

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः ।
पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः श्रृणुत निष्कृतीः ॥१७९॥

यह चार प्रकार (हिंसा, अभक्ष्यभक्षण, चोरी और अगम्यागमन) के पापकर्त्ताओंका प्रायश्चित्त कहा। अब पतितोंके संसर्गियोंका प्रायश्चित्त सुनो।

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ।
याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् ॥१८०॥

पतितके साथ खाने, एक सवारी या एक आसनपर बैठनेवाला मनुष्य एक वर्षमें पतित हो जाता है, किन्तु उसे यज्ञ कराने, पढ़ाने या उसके साथ विवाहादि सम्बन्ध करनेसे तत्काल पतित हो जाता है।

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥१८१॥

जो मनुष्य उन पतितोंमें जिस पतितके साथ संसर्ग करता है वह उस संसर्गिक पापसे शुद्ध होनेके लिये उसीका प्रायश्चित्त करे।

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः ।
निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसंनिधौ ॥१८२॥

पतितके जीतेजी उसे मृत मानकर सपिण्ड बान्धवगण गांवसे बाहर जाकर ज्ञाति पुरोहित और गुरुके सामने निन्दित तिथिमें सन्ध्या समय उस जीवन्मृत पतितको जलाञ्जलि दे दें।

दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा ।
अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह ॥१८३॥

सपिण्डोंसे प्रेरित दासी दक्षिण मुंह खड़ी होकर जलसे भरे हुए घड़ेको जैसे प्रेतके लिये लुढ़का दिया जाता है, पैरसे लुढ़का दे। तदनन्तर सपिण्ड ( दायाद ) एक अहोरात्र अशौचका व्यवहार करें।

निवर्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषणसहासने ।
दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैव हि लौकिकी ॥१८४॥

उस महापातकी पतितके साथ बोलना, एक आसनपर बैठना और उसके साथ लेनदेनका व्यवहार तथा खाना-पीना सब छोड़ दे।

ज्येष्ठता च निवर्तेत ज्येष्ठावाप्यं च यद्धनम् ।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥१८५॥

पतित होनेपर जेठे भाईकी ज्येष्ठता जाती रहती है। जेठे भाईका जो प्राप्य धन हो या जो उसका ज्येष्ठांश हो, सब उस छोटे भाईको मिलेगा जो गुणमें अन्य भाइयोंकी अपेक्षा अधिक होगा।

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम् ।
तेनैव सार्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥१८६॥

पतितके प्रायश्चित्त करनेपर सपिण्ड और बान्धवगण उसके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करके जलसे भरा हुआ नया घड़ा पानीमें फेंक दें।

स त्वप्सु तं घटं प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकम् ।
सर्वाणि ज्ञातिकार्याणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥१८७॥

वह उस घड़ेको पानीमें फेंककर अपने घरमें प्रवेश करे और अपने भाईबन्धुओंके साथ जैसा व्यवहार पहले करता था, वैसा करे।

एतदेव विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ।
वस्त्रान्नपानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके ॥१८८॥

ज्ञातिबान्धवोंको चाहिये कि पतित स्त्रियोंके साथ भी इसी प्रकारका बर्ताव करें, किन्तु उन्हें अन्न, जल और वस्त्र दें। वे घरके समीप अलग एक झोंपड़ीमें रहें।

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किंचित्सहाचरेत् ।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥१८९॥

जिन पापियोंने प्रायश्चित्त न किया हो, उनके साथ किसी प्रकारका व्यवहार न करे। परन्तु जिन्होंने प्रायश्चित्त किया हो उनकी कभी निन्दा न करे।

बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मत ।
शरणागतहन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत् ॥१९०॥

बालघाती, कृतघ्न, शरणागतकी हत्या करनेवाले और स्त्रीका वध करनेवाले प्रायश्चित्त करके शुद्ध भी हों तथापि उनका संसर्ग न करे।

येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधिः ।
तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥१९१॥

जिन द्विजोंका शास्त्रविधिसे यज्ञोपवीत न हुआ हो, उनसे तीन प्राजापत्य व्रत कराकर विधिपूर्वक उनका उपनयन कर दे।

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ।
ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥१९२॥

जो निषिद्ध कर्म करनेवाले द्विज वेदविद्यासे रहित हों, यदि वे प्रायश्चित्त करना चाहें तो उन्हें भी यही उपदेश दे ( अर्थात् पहले उनसे तीन प्राजापत्य व्रत करनेको कहे )।

यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् ।
तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥१९३॥

जो ब्राह्मण निन्दित कर्मसे धन अर्जित करते हैं, वे उस धनका दान कर देने और जप-तप करनेसे शुद्ध होते हैं ।

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥१९४॥

ब्राह्मण आलस्यरहित होकर तीन हजार गायत्री मन्त्रको जपे या दूध पीकर एक मासतक गोशालामें रहे तो दूषित दान लेनेके पापसे मुक्त होता है ।

उपवासकृशं तं तु गोव्रजात्पुनरागतम् ।
प्रणतं प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम् ॥१९५॥

केवल दूध पीनेके कारण दुर्बल, गोशालासे लौटे हुए उस विनीत व्यक्तिसे ब्राह्मण इस तरह पूछें—कहो, क्या तुम हम लोगोंके साथ मिलना चाहते हो ? अब तो निन्दित दान न लोगे ?

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ।
गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे कुर्युस्तस्य परिग्रहम् ॥१९६॥

वह ब्राह्मणोंसे ऐसा कहकर कि "सच कहता हूं, अब मैं कभी दूषित दान न लूंगा" गायके आगे घास रख दे । यदि गौ उसके हाथकी दी हुई घास खाय तो ब्राह्मण लोग उसे अपने समाजमें ले लें ।

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च ।
अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥१९७॥

व्रात्योंका यज्ञ, असम्बन्धियोंकी दाहादि क्रिया, अभिचार और अहीन यज्ञ कराकर ब्राह्मण तीन प्राजापत्य व्रत करनेसे शुद्ध होता है ।

शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः ।
संवत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति ॥१९८॥

शरणागतकी रक्षा न करके और अनधिकारीको वेद पढ़ाकर एक वर्षतक जौ का आहार करे, तब उस पापसे छूटता है।

श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च।
नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥१९९॥

कुत्ते, शृगाल, गधे, कच्चा मांस खानेवाली बिल्ली आदि, मनुष्य, घोड़े, ऊंट और सूअरने जिसे काटा हो वह प्राणायामसे शुद्ध होता है।

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा।
होमाश्च सकला नित्यमपाङ्क्त्यानां विशोधनम् ॥२००

जो अपांक्तेय पतित हैं, वे एक मासतक (तीन दिन भोजन करके) तीसरे दिन सांझमें भोजन करें अथवा वेदसंहिताका जप करें अथवा "देवकृत स्यैनसोऽवयजनमसि" इत्यादि मन्त्रोंसे नित्य होम करें, तब शुद्धि होती है।

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं तु कामतः।
स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥२०१

जो ब्राह्मण ऊंट या गधेकी सवारीपर इच्छासे चढ़े, नग्न होकर स्नान करे, वह प्राणायाम करनेसे शुद्ध होता है।

विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं संनिवेश्य च।
सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुद्ध्यति ॥२०२॥

प्रबल वेगसे पीड़ित होकर बिना पानीके या पानीमें मलमूत्रका त्याग करे तो गांवके बाहर नदी आदिमें सब वस्त्र पहने स्नान करके गौका स्पर्श करनेसे शुद्ध होता है।

वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे।
स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥२०३॥

वेदोक्त नित्यकर्मोंका अतिक्रम हो जाय और स्नातक व्रतोंका लोप हो तो एक दिन कुछ भोजन न करे, यही उसका प्रायश्चित्त है।

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ।
स्नात्वानश्नन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥२०४॥

ब्राह्मणको हुंकार अर्थात् चुप बैठो, और अपनेसे श्रेष्ठको त्वंकार अर्थात् 'तू' कहे, तो उस समयसे दिनान्ततक स्नान कर भोजन किये बिना उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करे ।

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वाबध्य वाससा ।
विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥२०५॥

ब्राह्मणको तिनकेसे भी मारने, उसके कण्ठमें कपड़ा डालने या उसे विवादमें जीतनेपर उसे प्रणामसे प्रसन्न करे ।

अवगूर्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च ।
जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकं प्रतिपद्यते ॥२०६॥

ब्राह्मणको मारनेकी धमकी देनेसे सौ वर्ष और दण्डप्रहार करनेसे हजार वर्षतक नरक भोगना पड़ता है ।

शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति महीतले ।
तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् ॥२०७॥

ब्राह्मणका शोणित धरतीपर गिरकर धूलके जितने कणोंको भिगोता है, उतने हजार वर्षतक शोणित बहानेवाला नरकमें वास करता है ।

अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ॥२०८

ब्राह्मणको मारनेके लिये लाठी उठानेपर कृच्छ्र व्रत करे, लाठी मार देनेपर अतिकृच्छ्र और रक्त बहानेपर कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनों करे ।

अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामपनुत्तये ।
शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥२०९॥

जिन पापोंका प्रायश्चित्त नहीं कहा गया है, उनके निवारणार्थ पापकर्त्ताकी शारीरिक और आर्थिक शक्ति देखकर प्रायश्चित्तकी व्यवस्था करे ।

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ।
तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥२१०

जिन उपायोंसे मनुष्य पापका नाश कर सकता है, देवता ऋषि और पितरोंसे अनुष्ठित वे उपाय ( अब ) कहते हैं ।

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः ॥२११॥

प्राजापत्यका आचरण करता हुआ द्विज तीन दिन सवेरे, तीन दिन सांझको, तीन दिन बिना किसीसे कुछ मांगे जो मिले वह भोजन करे और तीन दिन कुछ न खाय । (इस द्वादशाहिक व्रतका नाम प्राजापत्य है ।)

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥२१२॥

गोमूत्र, गायका गोबर, गायका दूध, दही, घी और कुशका जल, इन सबको मिलाकर पान करे, दूसरे दिन उपवास करे । इसे कृच्छ्र सान्तपन कहते हैं ।

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत् ।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः ॥२१३॥

अतिकृच्छ्र करनेवाला द्विज तीन दिन सवेरे एक एक ग्रास खाय और तीन दिन सांझको और तीन दिन अयाचित अन्न भी एक एक ग्रास खाय, शेष तीन दिन उपवास करे ।

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः ॥२१४॥

तप्तकृच्छ्र करनेवाला ब्राह्मण नित्य एक बार स्नान करके सावधानीसे तीन दिन गरम जल, तीन दिन गरम दूध, तीन दिन गरम घी और तीन दिन गरम वायु पान करे।

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः ॥२१५॥

मन और इन्द्रियोंको रोककर बारह दिन निराहार रहनेका नाम पराक व्रत है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है।

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ।
उपस्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥२१६॥

त्रिकाल स्नान करके कृष्णपक्षमें एक एक ग्रास नित्य घटाकर और शुक्लपक्षमें तिथिके अनुक्रमसे एक एक ग्रास बढ़ाकर भोजन करे। इसको (पिपीलिकमध्य) चान्द्रायण व्रत कहते हैं।

एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे ।
शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥२१७॥

शुक्लपक्षकी आदिसे पूर्वोक्त विधिके अनुसार व्रत आचरण करनेका नाम यवमध्यम चान्द्रायण है।

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते ।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥२१८॥

यति चान्द्रायण करनेवाला मनुष्य शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षसे आरम्भ करके एक मासतक जितेन्द्रिय होकर प्रतिदिन दोपहरको आठ ग्रास हविष्य अन्न भोजन करे।

चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः ।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम् ॥२१९॥

चार ग्रास सवेरे और चार ग्रास सूर्यास्त होनेपर एक मासतक नियमपूर्वक भोजन करे। इस व्रतको मुनियोंने शिशुचान्द्रायण कहा है।

यथाकथंचित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः ।
मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥२२०॥

जो मन और इन्द्रियोंको रोककर अनियतरूपसे एक मासमें २४० ग्रास हविष्य अन्न खाता है अर्थात् किसी दिन कम, किसी दिन अधिक और किसी दिन कुछ नहीं, इस प्रकार २४० ग्राससे मासमें अधिक नहीं खाता, वह चन्द्रलोकको जाता है।

एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम् ।
सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥२२१॥

रुद्र, सूर्य, वसु, मरुत् देवता और महर्षियोंने भी सब पापोंसे मुक्त होनेके लिये इस चान्द्रायण व्रतको किया था।

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यःस्वयमन्वहम् ।
अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत् ॥२२२॥

महाव्याहृति होम स्वयं प्रतिदिन घृतसे करे। हिंसा, क्रोध और कौटिल्य न करे तथा झूठ न बोले।

त्रिरह्नस्त्रिर्निशायां च सवासा जलमाविशेत् ।
स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित् ॥२२३॥

तीन वार दिनमें और तीन वार रातमें वस्त्रसहित जलमें प्रवेश कर स्नान करे। जबतक व्रती रहे तबतक स्त्री, शूद्र और पतितके साथ कभी संभाषण न करे।

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा ।
ब्रह्मचारी व्रती च स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः ॥२२४॥

अपनी कुटीके पास इधर-उधर घूमे या अपने आसनपर बैठा

रहे। यदि जागनेमें समर्थ न हो तो नीचे धरतीपर सोवे। मौञ्जी, मेखला और दण्ड धारणकर ब्रह्मचर्यसे रहे तथा गुरु, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करे।

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमादृतः ॥२२५॥

नित्य सावित्रीका जप करे। (अघमर्षणादि) पवित्र सूक्तोंका भी यथाशक्ति जप करे। सब प्रकारके व्रतोंमें ऐसा करना प्रायश्चित्तके लिये उत्तम है।

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः।
अनाविष्कृतपापांस्तु मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥२२६॥

प्रकट पापकी शान्तिके लिये द्विजोंको पूर्वोक्त चान्द्रायण आदि व्रत करना चाहिये। और गुप्त पापकी शान्तिके लिये मन्त्रोंका जप और होम करे।

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथादानेन चापदि ॥२२७॥

पाप करनेवाला मनुष्य अपने पापको लोगोंमें प्रकट करनेसे ("हा! मैंने यह क्या किया" इस प्रकार) पछतानेसे और तप तथा अध्ययन करनेसे पापमुक्त होता है। यदि तप आदि करनेमें असमर्थ हो तो दान करके भी वह मुक्त हो सकता है।

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते।
तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥२२८॥

जैसे जैसे मनुष्य अपना किया अधर्म लोगोंमें ज्योंका त्यों प्रकट करता है, वैसे वैसे वह अधर्मसे, केंचुलीसे सांपकी तरह, मुक्त होता है।

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥२२९॥

जैसे जैसे उसका मन पापकर्मकी निन्दा करता है, वैसे वैसे उसका शरीर उस पापसे मुक्त होता है ।

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ॥२३०॥

मनुष्य पाप करके पश्चात्ताप करे तो वह उस पापसे छूटता है। "फिर कभी ऐसा न करूंगा," ऐसा मनमें संकल्प करके निवृत्त हो जाय तो वह पवित्र हो जाता है ।

एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलोदयम् ।
मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥२३१॥

इस प्रकार शुभ और अशुभ कर्मोंका परलोकमें अच्छा और बुरा फल मिलनेकी बातको मनसे विचारकर मन, वचन और शरीर-से शुभ कर्मका आचरण करे ।

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्द्वितीयं न समाचरेत् ॥२३२॥

भूलसे या जानबूझकर निषिद्ध कर्म करके जो उस प्रत्यवायसे छूटना चाहे, वह फिर कभी उस दुष्कर्मको न करे ।

यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम् ।
तस्मिंस्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥२३३॥

पापीके चित्तको ( प्रायश्चित्त ) कर्मके अनुष्ठानसे संतोष न हो तो वह तबतक उस कर्मका अनुष्ठान करता रहे जबतक उससे उसे संतोष न हो ।

तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम् ।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥२३४॥

देव और मनुष्यके जो भी सुख हैं, सब तपोमूलक हैं। तप ही उनके सुखका मध्य है, तप ही उनका अन्त है। ऐसा वेद-दर्शियोंने कहा है ।

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥२३५॥
ब्राह्मणका तप ज्ञान है, क्षत्रियका तप रक्षण, वैश्यका तप (पशु-पालनादि) वार्ता, और शूद्रका तप सेवा है।

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥२३६॥
फल, मूल और वायु भक्षण कर रहनेवाले संयतेन्द्रिय ऋषि तपसे ही चराचरमय तीनों लोकोंको देखते है।

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः।
तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥२३७॥
औषध, आरोग्य, विद्या, और नाना भांतिके स्वर्गादि लोकोंकी स्थिति ये सब तपसे ही प्राप्त होते हैं, तप ही उनका साधन है।

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥२३८॥
जिसको पार करना कठिन है, जिसको प्राप्त करना कठिन है, जहांतक पहुंचना कठिन है, जिसको करना कठिन है, वह सब तपसे साध्य होता है, क्योंकि तपका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता।

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्यकारिणः।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥२३९॥
महापाप करनेवाले तथा अन्याय दुष्कर्म करनेवाले तपको भलीभांति तपाकर उससे पापमुक्त होते हैं।

कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपोबलात् ॥२४०॥
कीड़े, सांप, भुनगे, पशु और पक्षी तथा वृक्षादि स्थावर जीव भी तपोबलसे स्वर्गको जाते हैं।

यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः ।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥२४१॥

मनुष्य मन, वचन, और शरीरसे जो कुछ पाप करते हैं, तपस्वी लोग उन सब पापोंको तपसे शीघ्र ही जला डालते हैं।

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ।
इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्संवर्धयन्ति च ॥२४२॥

देवता (प्राजापत्य आदि) तपसे विशुद्ध ब्राह्मणका यज्ञमें दिया हुआ हव्य ग्रहण करते हैं और उसके अभीष्टोंको सफल करते हैं।

प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥२४३॥

ब्रह्माने तपसे ही समर्थ होकर इस शास्त्रको रचा और ऋषिगणने उसी तरह तपसे वेदोंको प्राप्त किया।

इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते ।
सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम् ॥२४४॥

तपके उत्तम पुण्यको देखते हुए देवता संसारके सकल सौभाग्यको तपसे ही सिद्ध बताते हैं।

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा ।
नाशयन्त्याशुपापानि महापातकजान्यपि ॥२४५॥

नित्य यथाशक्ति वेदका अध्ययन, पञ्चमहायज्ञ और क्षमा ( अपराध सहना ), ये महापातकीके पापोंका भी शीघ्र नाश करते हैं।

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥२४६॥

जैसे आग अपने तेजसे क्षणभरमें लकड़ीको भस्म कर डालती है, वैसे वेद जाननेवाला ब्राह्मण ज्ञानरूपी अग्निसे सब पापोंको जला डालता है।

इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं यथाविधि ।
अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥२४७॥

यह प्रकट पापोंका प्रायश्चित्त यथाविधि कहा । अब गुप्त पापोंका प्रायश्चित्त सुनो ।

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहणं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥२४८॥

( भूर्भुवस्वः आदि सप्त ) व्याहृति और प्रणवके साथ गायत्री ( तथा शीर्षमन्त्र जपपूर्वक पूरक कुम्भक रेचककी विधिसे ) प्रतिदिन सोलह प्राणायाम करनेसे भ्रूणहत्या ( बालवध ) करनेवाला भी एक महीनेमें पापमुक्त होता है। ( यह प्रायश्चित्त द्विजातियोंके लिये कहा गया है। स्त्री और शूद्रके लिये नहीं, क्योंकि उन्हें इसका अधिकार नहीं है। )

कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च प्रतीत्यृचम् ।
माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोऽपि विशुध्यति ॥२४९॥

कौत्स ऋषिकी "अपनः शोशुचदघम्" और वसिष्ठकी "प्रतिस्तोमेभिरुषसं" इस ऋचाको तथा "महित्रीणामवोस्तु" इस सूक्तको और "एतोन्विन्द्रं स्तवाम शुद्धम्" इस ऋचाको एक मासतक नित्य नियमपूर्वक जप करके शराब पीनेवाला भी शुद्ध होता है।

सकृज्जप्त्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च ।
अपहृत्य सुवर्णं तु क्षणाद्भवति निर्मलः ॥२५०॥

ब्राह्मण सोना चुराकर "अस्य वामस्य पलितस्य" इस सूक्तका और शिवसंकल्प यथा "यज्जाग्रतो दूरम्" इस मन्त्रका एक मासतक प्रतिदिन एक बार जप करे तो शीघ्र ही उस पापसे मुक्त हो जाय ।

हविष्यान्तीयमभ्यस्य नतमंह इतीति च ।
जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥२५१॥

"हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि" इन इक्कीस ऋचाओंको और "नत-मंहो न दुरितम्" इन आठ ऋचाओंको "इति वा इति मे मनः" तथा "सहस्रशीर्षापुरुषः" इस पुरुषसूक्तको एक मासतक प्रतिदिन जप करके गुरुपत्नीगामी पापमुक्त होता है।

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ।
अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किंचेदमितीति वा ॥२५२॥

स्थूल पाप (महापातक) और सूक्ष्म पाप (उपपातक) आदिसे निष्कृति पानेकी इच्छा करनेवाला "अव ते हेडो वरुण नमोभिः" ऋचाको और "यत् किंचेदं वरुण दैव्ये जने" इस ऋचाको या "इति वा इति मे मनः" इस सूक्तको एक वर्षतक प्रतिदिन एक बार जपे।

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वाचान्नं विगर्हितम् ।
जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥२५३॥

ब्राह्मण न लेनेयोग्य दानको लेकर और दूषित अन्न खाकर "तरत्समन्दी धावति" इन चार ऋचाओंका तीन दिन जप करनेसे शुद्ध होता है।

सोमारौद्रं तु बह्वेना मासमभ्यस्य शुध्यति ।
स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्यम्णामिति च तृचम् ॥२५४॥

"सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यम्" इन चार ऋचाओंको और "अर्य-मणं वरुणं मित्रं" इन तीन ऋचाओंको नदीमें स्नान करके एक मासतक जपनेसे बहुत पाप करनेवाला भी शुद्ध होता है।

अब्दार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकं जपेत् ।
अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक् ॥२५५॥

पापी मनुष्य पापसे छुटकारा पानेके लिये "इन्द्रं मित्रं वरुण-मग्निम्" इन सात ऋचाओंको छः मासतक जपे और जलमें मलमूत्र

आदिका त्याग करनेवाला एक मासतक भिक्षाका अन्न खानेसे शुद्ध होता है ।

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः ।
सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् ॥२५६॥

"देवकृतस्य" इत्यादि शाकल होम मन्त्रोंसे एक वर्षतक नित्य घृतसे हवन करके या "नम इन्द्रश्च" इस ऋचाको अथवा "इति वा इति मे मनः" इस मन्त्रका जप करके द्विज भारीसे भारी पापका नाश करता है ।

महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः ।
अभ्यस्याब्दं पावमानीर्भैक्षाहारो विशुद्ध्यति ॥२५७॥

महापातकसे युक्त पुरुष एक वर्षतक भीख मांगकर भोजन करे और संयतेन्द्रिय होकर गौओंको चरावे तथा "पावमानी रध्येति" इन ऋचाओंको प्रतिदिन जपे तो उस पापसे विशुद्ध हो जाय

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् ।
मुच्यते पातकैः सर्वैः पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥२५८॥

तीन पराक व्रतोंसे जो अपनेको शुद्ध कर चुका हो वह पवित्र मनसे निर्जन वनमें तीन बार वेदसंहिताका पाठ करे तो सब पापोंसे मुक्त हो जाय ।

त्र्यहं तूपवसेद्युक्तस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नपः ।
मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्जपित्वाघमर्षणम् ॥२५९॥

संयतेन्द्रिय होकर तीन दिन उपवास करे और प्रत्यह तीन बार प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकाल स्नान करते समय पानीमें गोता लगाकर "ऋतं च सत्यं च" इस अघमर्षण सूक्तको तीन बार जपे तो सब पापोंका नाश हो जाता है ।

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥२६०॥

जैसे यज्ञोंमें श्रेष्ठ अश्वमेध सब पापोंका नाश करनेवाला है, वैसे मन्त्रश्रेष्ठ यह अघमर्षण सूक्त सब पापोंका संहारकारक है।

हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः।
ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किंचन ॥२६१॥

इन तीनों लोकोंकी हत्या करके भी और जिस तिस पापीका अन्न खाकर भी ऋग्वेदका अभ्यास करनेवाला कुछ भी पापका भागी नहीं हो सकता।

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२६२॥

जो सावधान होकर ऋग्वेद या यजुर्वेद, या रहस्यसहित सामवेदको तीन बार पढ़ता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

यथा महाह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति।
तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति ॥२६३॥

जैसे सरोवरमें फेंका हुआ मिट्टीका ढेला गल जाता है, वैसे ऋक् आदि रूपसे तीन बार आवृत होनेवाले वेदमें सब पाप विलीन हो जाता है।

ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च।
एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् ॥२६४॥

ऋग्वेद और यजुर्वेदके मन्त्र तथा सामवेदके विविध मन्त्र, इन तीनों वेदोंके पृथक् पृथक् मन्त्रब्राह्मण ही त्रिवृत् वेद जानना। जो इसे जानता है, वह वेदवित् होता है।

आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता।
स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित् ॥२६५॥

जो सब वेदोंका मूल है, जिसमें तीनों वेद अवस्थित हैं, जिसमें अकार, उकार और मकार, ये तीनों अक्षर सन्निवेशित हैं, वह प्रणव संज्ञक जो दूसरा गुह्य त्रिवृत् वेद है उसे जो जानता है, वही वेदवेत्ता है।

* एकादश अध्याय समाप्त *

## अध्याय १२

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानघ ।
कर्मणां फलनिर्वृत्तिं शंस नस्तत्त्वतः पराम् ॥१॥

( महर्षियोंने भृगुसे कहा—)
हे अनघ ! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंका धर्म आपने कहा । अब शुभाशुभ कर्म्मोंका जन्मान्तरमें जो फल मिलता है, वह कथन करें ।

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः ।
अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥२॥

मनुजीके पुत्र धर्मात्मा भृगुने उन महर्षियोंसे कहा कि इस सम्पूर्ण कर्मसम्बन्धका फल निश्चय श्रवण करो ।

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः ॥३॥

शुभ और अशुभ फल देनेवालेके कर्मका उत्पत्तिस्थान मन वचन और देह है । कर्म्मसे ही उत्तम, मध्यम और अधम गति मनुष्योंकी होती है ।

तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः ।
दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥४॥

उस देहसम्बन्धी त्रिविध ( उत्तम, मध्यम और अधम ) और दस लक्षणोंसे युक्त तीनों ( मन, वचन, देह ) अधिष्ठानोंके आश्रित कर्मोंका प्रवर्तक* मन है, यह जानो ।

---

*तस्माद्यत् पुरुषो मनसाभिगच्छति तद् वाचा वदति तत्कर्मणा करोति । तत्तिरीयोपनिषत् ॥

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥५॥

अन्यायसे दूसरेका धन लेनेकी बात सोचना, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन करना, मनमें मिथ्या अभिनिवेश करना ( अर्थात् परलोक नहीं है, शरीर ही आत्मा है ), ये अशुभ फल देनेवाले तीन प्रकारके मानस कर्म हैं ।

पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥६॥

कठोर शब्दका उच्चारण करना, झूठ बोलना, दूसरेके दोषोंको बखानना और निरभिप्राय बात करना, ये चार प्रकारके अशुभ फल देनेवाले वाचिक कर्म हैं ।

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥७॥

दूसरेकी वस्तुको बलपूर्वक लेना, अवैध हिंसा और पर स्त्रीगमन ये तीन प्रकारके दैहिक दुष्कर्म हैं ।

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् ।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥८॥

मनसे किये कर्मका शुभाशुभ फल मनसे ही, वचनसे किये हुए कर्मका वचनसे और देहसे किये कर्मका फल देहसे ही भोगता है ।

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः ।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥९॥

दैहिक कर्मदोषोंसे मनुष्य स्थावरताको, वाचिक दोषोंसे पशु-पक्षित्वको और मानस दोषोंसे चाण्डालत्वादिको प्राप्त होता है ।

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥१०॥

वाग्दण्ड, मनोदण्ड और देहदण्ड, ये तीनों जिसकी बुद्धिमें अवस्थित हैं ( अर्थात् जो बुद्धिद्वारा मन, वचन और शरीरको निषिद्ध कर्मोंसे रोकता है ) वह त्रिदण्डी कहलाता है।

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ॥११॥

जो मनुष्य काम और क्रोधको रोककर सब प्राणियोंमें इस त्रिदण्ड ( वाग्दण्ड, मनोदण्ड और कायदण्ड )का उचित व्यवहार करता है, वह सिद्धिको प्राप्त होता है।

योऽस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ।
यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः ॥१२॥

जो इस शरीरसे कर्म कराता है, उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं, और जो कर्म करता है ( उसे पञ्चभूतसे सम्बन्ध रखनेके कारण ) पण्डित भूतात्मा कहते हैं।

जीवसंज्ञोऽन्तरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।
येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥

जीव नामक अंतरात्मा इससे भिन्न है जो सब प्राणियोंका सहज आत्मा है (और) जो प्रत्येक जन्मके सुख-दुःखोंको जानता है।

तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च ।
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥१४॥

ये महान् और क्षेत्रज्ञ दोनों पञ्चभूतोंसे मिलकर छोटे-बड़े सभी जीवोंमें स्थित उस परमात्माका आश्रय करके रहते हैं।

असंख्या मूर्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः ।
उच्चावचानि भूतानि सततं चेष्टयन्ति याः ॥१५॥

उस परमात्माके शरीरसे असंख्य मूर्तियां निकलती हैं, जो छोटे-बड़े सभी प्राणियोंको सदा कर्मोंमें प्रवृत्त कराती है।

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनां नृणाम् ।
शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥१६॥

पापी मनुष्योंका पाञ्चभौतिक शरीरसे ही एक सूक्ष्म शरीर परलोकमें दुःख भोगनेके लिये निश्चय ही उत्पन्न होता है।

तेनानुभूयता यामीः शरीरेणेह यातनाः ।
तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयन्ते विभागशः ॥१७॥

दुष्ट जीव उस शरीरसे यमयातना (नरकादि) का अनुभव करके फिर उन्हीं पञ्चभूतोंकी मात्राओंमें यथाविभाग लीन होते हैं।

सोऽनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसङ्गजान् ।
व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजसौ ॥१८॥

वह देही जीवात्मा विषयभोगजनित, यमलोकगत दुःखोंका उपभोग करनेके बाद पापरहित होकर महा तेजस्वी महत्तत्त्व और परमात्मा, इन दोनोंका आश्रित होता है।

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ।
याभ्यां प्राप्नोति संपृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥१९॥

वे दोनों महत् और परमात्मा बड़ी सावधानीसे उस जीवके धर्म और अधर्मको देखते हैं, जिस धर्म-अधर्मसे युक्त जीव इस लोक और परलोकमें सुख-दुःख पाते हैं।

यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽधर्ममल्पशः ।
तैरेव चावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते ॥२०॥

वह जीव यदि धर्म अधिक और पाप थोड़ा करता है तो उन पञ्चभूतोंसे स्थूल शरीरके रूपमें जन्म ग्रहण कर स्वर्गसुख भोगता है।

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ।
तैर्भूतैः स परित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः ॥२१॥

यदि वह जीव पाप अधिक करे और धर्म थोड़ा तो उन पञ्चभूतोंसे परित्यक्त होकर ( अर्थात् मृत्यु होनेके अनन्तर ) यमयातनाएं भोगता है।

यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः ।
तान्येव पञ्चभूतानि पुनरप्येति भागशः ॥२२॥

वह जीव यमयातना भोगनेके पश्चात् निष्पाप होकर पञ्चभूतोंका फिर यथाभाग आश्रय लेता है।

एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा ।
धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः ॥२३॥

जीवकी धर्माधर्मसे होनेवाली यह गति स्वयं देखकर सदा धर्ममें मन लगावे।

सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् ।
यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वानशेषतः ॥२४॥

सत्त्व, रज और तम ये तीनों आत्माके गुण हैं जिनसे यह महान् आत्मा सारे स्थावर जंगमरूप सृष्टिमें व्याप्त होकर रहता है।

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते ।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम् २५॥

( यद्यपि यह चराचरमय सृष्टि त्रिगुणात्मिका है, तथापि ) जिसके शरीरमें जब जो गुण सम्पूर्णरूपसे अधिक होता है, वह तब उस शरीरकी आत्माको प्रायः उसी गुणका कर देता है।

सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम् ।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥२६॥

( यथार्थ रूपका ] ज्ञान सत्त्वका लक्षण है, अज्ञान तमका और राग-द्वेष रजोगुणका लक्षण है। इन गुणोंका आगे कहा हुआ स्वरूप सभी प्राणियोंके शरीरमें व्याप्त रहता है।

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किंचिदात्मनि लक्षयेत्।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥२७॥

उस आत्मामें जो प्रीतियुक्त, प्रशान्त, निर्मल प्रकाशरूपमें भासित हो, उसे सत्त्वगुण जानो।

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।
तद्रजो प्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥२८॥

जो दुःखसे युक्त हो, आत्माके लिये अप्रीतिकारक हो, और सर्वदा विषयकी इच्छा उत्पन्न करनेवाला हो, उसे सत्त्वका विरोधी रजोगुण जानो।

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥२९॥

जो सत्-असत् विवेकसे रहित हो, अप्रकट, विषय-स्वभावका हो, अतर्कणीय और अविज्ञेय हो, उसे तम जानो।

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥३०॥

इन तीनों गुणोंका भी जो उत्तम, मध्यम और अधम फलोदय है, उसे विस्तारपूर्वक कहते हैं।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥३१॥

वेदपाठ, प्राजापत्य आदि व्रतोंका अनुष्ठान, शास्त्रका अर्थज्ञान, पवित्रता, इन्द्रियोंका निग्रह, धर्मकार्य और आत्माका चिन्तन, ये सत्त्वगुणके लक्षण हैं।

आरम्भरुचिताऽधैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥३२॥

फलके उद्देश्यसे कर्म करना, अधीरता, निन्दित कर्मोंका आचरण और सदा विषयका उपभोग, ये रजोगुणके लक्षण हैं।

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुरुलक्षणम् ॥३३॥

अधिकाधिक धनकी लालसा, निद्रालुता, असन्तोष, क्रूरता, नास्तिकता, अनाचार, याचनशीलता, धर्माचरणमें प्रमाद, ये तमोगुणके लक्षण हैं।

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम्।
इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् ॥३४॥

तीनों काल ( भूत, भविष्यत् और वर्तमान ] में विद्यमान, इन तीनों गुणोंके संक्षिप्त लक्षणोंको भी क्रमशः जानना चाहिये।

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥३५॥

जिस कर्मको करके, या करते हुए अथवा भविष्यमें करता है इससे मनुष्य लज्जित होता है, पण्डित उस कर्मको तमोगुणका लक्षण जानें।

येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम्।
न च शोचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥३६॥

जिस कर्मसे कोई इस लोकमें बड़ा नाम पानेकी इच्छा करता है, और असम्पत्तिमें जिस कर्मको नहीं सोचता, उस कर्मको रजोगुणका लक्षण जानना चाहिये।

यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन्।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥३७॥

जो कर्म सबको ज्ञात हो ऐसी इच्छा कर्ताको होती है, जिसे

करते हुए लज्जित नहीं होना पड़ता, जिस कर्मसे अपनी आत्माको सन्तोष मिलता है, वह कर्म सत्वगुणका लक्षण है।

तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥३८॥

कामकी प्रधानता तमोगुणका, अर्थनिष्ठता रजोगुणका और धर्मप्रधानता सत्त्वगुणका लक्षण है। इनमें [ लक्षणोंकी ] उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है। [अर्थात् कामसे अर्थ और अर्थसे धर्म श्रेष्ठ है।]

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ।
तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥३९॥

जीव इन सत्त्वादि गुणोंमें जिस गुणसे जिस गतिको प्राप्त होता है, उन इस जगत्की गतियोंका संक्षेपतः क्रमसे कहते हैं।

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥४०॥

सात्त्विक मनुष्य देवत्वको, राजस मनुष्यत्वको और तामस तिर्यकयोनिको प्राप्त होता है। यह तीन प्रकारकी गति होती है।

त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ।
अधमा मध्यमाग्र्या च कर्मविद्या विशेषतः ॥४१॥

गुण-भेदसे बनी हुई यह त्रिविध गति कही है, वह कर्म और विद्याकी विशेषतासे उत्तम, मध्यम और अधम इस प्रकार फिर और त्रिविध हो जाती है।

स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः ।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥४२॥

[ वृक्षादि ] स्थावर, कृमि, कीट, मछली, सांप, कछुए, पशु और मृग, ये सब तमोगुणकी अधमगति हैं।

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः ।

सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥४३॥

हाथी, घोड़े, शूद्र, निन्दित म्लेच्छ जाति, सिंह, बाघ और सूअर ये मध्यमा तामसी गति हैं।

चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः ।

रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥४४॥

चारण, गरुड़, दाम्भिक पुरुष, राक्षस और पिशाच; ये तमोगुण की उत्तम गतिके उदाहरण हैं।

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः ।

द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥४५॥

झल्ल [लठैत], मल्ल [पहलवान], नट, शस्त्रजीवी, जुआरी और मद्यपायी, ये रजोगुणकी अधमगतिके मनुष्य हैं।

राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः ।

वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥४६॥

राजा, क्षत्रिय, राजपुरोहित और विवादप्रिय, ये राजसी मध्यमा गति हैं।

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ।

तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥४७॥

गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष, देवताओंके विद्याधर आदि अनुचर और अप्सरा, ये रजोगुणकी उत्तम गतिवाले हैं।

तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः ।

नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः ॥४८॥

वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण, विमानचारी, नक्षत्र, और दैत्य, ये सत्त्वगुणकी अधम गति हैं।

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ।

पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकी गतिः ॥४९॥

यज्ञकर्त्ता, ऋषि, देवता, वेद (वेदाभिमानी मूर्तिमान् देवगण, ज्योति (ध्रुव आदि), वत्सर (देहधारी वर्ष) पितृगण (सोमप आदि), साध्य गण, ये सत्त्वगुणकी मध्यम गति हैं ।

ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महानव्यक्तमेव च ।

उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥५०॥

ब्रह्मा, मरीचि आदि महर्षि, धर्म, महान और अव्यक्त (अर्थात् तदभिमानी देवता) इनको पण्डितोंने सत्त्वगुणकी उत्तम गति कहा है ।

एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ।

त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥५१॥

तीन प्रकारके कर्मोंकी ये तीन तीन प्रकारकी सब प्राणियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली गतियां कहीं ।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन धर्मस्यासेवनेन च ।

पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥५२॥

इन्द्रियासक्त ( अर्थात् विषय सुखमें लीन ) होने और धर्मका आचरण न करनेसे मूर्ख नराधम पापयोनिको प्राप्त होते हैं ।

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ।

क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥५३॥

इस संसारमें यह जीव जिस-जिस कर्मसे जिस-जिस योनिको प्राप्त होता है, वह सब क्रमसे सुनो ।

बहून्वर्षगणान्घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् ।

संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनास्त्विमान् ॥५४॥

महापापी सहस्रों वर्षतक घोर नरकोंका कष्ट भोगकर पापका क्षय होनेपर आगे कही हुई योनियोंको प्राप्त होते हैं।

श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् ।
चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥५५॥

ब्रह्मघ्न जन्मान्तरमें कुत्ता, शूकर, गधा, ऊंट, गौ, बकरा, भेड़, मृग, पक्षी, चाण्डाल और पुक्कस क्रमसे होता है।

कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव पक्षिणाम् ।
हिंस्राणां चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥५६॥

जो ब्राह्मण मदिरा पीता है, वह कृमि, कीट, पतङ्ग, विष्ठाभोजी पक्षी और हिंस्र जन्तुओंकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है।

लूताहिसरटानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ।
हिंस्राणां च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥५७॥

सोना चुरानेवाला ब्राह्मण, मकड़े, सांप, गिरगिट, पक्षी, ग्राह आदि जलचर और हिंस्र पिशाचोंकी योनिमें हजारों बार जन्म लेता है।

तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि ।
क्रूरकर्मकृतां चैव शतशो गुरुतल्पगः ॥५८॥

गुरुपत्नीगामी मनुष्य तृण, गुल्म, लता, कच्चा मांस खानेवाले गिद्ध आदि पक्षी और सिंह आदि पशु तथा क्रूर कर्म करनेवाले वधिक आदिकी दुष्ट योनिमें सैकड़ों बार जन्म लेता है।

हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ।
परस्परादिनः स्तेनाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥५९॥

जो मनुष्य हिंसाशील हैं, वे क्रव्याद (कच्चा मांस खानेवाला बाज या बाघ आदि) होते हैं। अभक्ष्य भक्षण करनेवाले कीट होते हैं। स्वर्णचोर परस्परके मांसभक्षी कुत्ते श्रृगाल आदि होते हैं और चाण्डाल स्त्रीमें गमन करनेवाले प्रेतत्वयोनिको प्राप्त होते हैं।

संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् ।
अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥६०॥

पतितोंके साथ संसर्ग करके पतित होनेवाला, पराई स्त्रीके पास जानेवाला और ब्राह्मणका धन अपहरण करनेवाला ब्रह्मराक्षस होता है ।

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ।
विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥६१॥

जो मनुष्य लोभसे मणि, मोती और मूंगा तथा और भी अनेक प्रकारके रत्नोंको चुराता है वह दूसरे जन्ममें सुनार होता है ।

धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः ।
मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥६२॥

धान चुरानेवाला चूहा, कांसा चुरानेवाला हंस, जल चुरानेवाला प्लव पक्षी, मधु चुरानेवाला डांस, दूध चुरानेवाला कौवा, रस चुराने-वाला कुत्ता और घी चुरानेवाला दूसरे जन्ममें नेवला होता है ।

मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः ।
चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि ॥६३॥

मांस, चर्बी, तेल, नमक और दही चुरानेवाले क्रमसे गिद्ध, मद्गु ( जलपक्षिविशेष ) तैलपक पक्षी, झिल्ली और बलाका ( बगुलेका एक प्रभेद ) होते हैं ।

कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः ।
कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुडम् ॥६४

रेशमी वस्त्र चुरानेवाला तीतर, क्षौमवस्त्र चुरानेवाला मेढ़क, सूती वस्त्र चुरानेवाला क्रौञ्च पक्षी, गाय चुरानेवाला गोह और गुड़ चुरा-नेवाल वाग्गुद नामका पक्षी होता है ।

छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः ।
श्वावित्कृतान्नं विविधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥६५॥

इत्र या केसर-कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तु चुरानेवाला छुछुन्दर, पत्रशाक चुरानेवाला मयूर, सिद्धान्न चुरानेवाला श्वावित् और असिद्ध अन्न चुरानेवाला शल्यक होता है।

बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् ।
रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥६६॥

आग चुरानेवाला बगुला होता है। चलनी, सूप और मूसल आदि चुरानेवाला दीमक, रङ्गीन वस्त्र चुरानेवाला चकोर होता है।

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः ।
स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः ॥६७॥

मृग या हाथी चुरानेवाला भेड़िया, घोड़ा चुरानेवाला बाघ, फल मूल चुरानेवाला बानर, स्त्री-हरण करनेवाला भालु, पीनेका पानी चुरानेवाला पपीहा, गाड़ी आदि रथ चुरानेवाला ऊंट, और अन्य साधारण पशु चुरानेवाला बकरा होता है।

यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ।
अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥६८॥

दूसरेकी साधारणसे भी साधारण चीज चुराकर और होमनिमित्त रखे हुए घृत आदि हव्य खाकर मनुष्य निश्चय तिर्यक् योनिमें जन्म लेता है।

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः ।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥६९॥

स्त्रियाँ भी इस प्रकार जान बूझकर किसीकी चीज चुरावें, तो वे भी पापभागिनी होती हैं, और उस पापसे इन जन्तुओंका स्त्रीत्व उन्हें प्राप्त होता है।

स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युता वर्णा ह्यनापदि ।
पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ॥७०॥

ब्राह्मण आदि चारों वर्ण निरापद अवस्थामें अपने अपने कर्मोंको न करें, तो पापयोनिको प्राप्त होकर शत्रुके दास होते हैं।

वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ।
अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥७१॥

ब्राह्मण अपने कर्मसे भ्रष्ट होनेपर वमन खानेवाला उल्का-मुख नामका प्रेत होता है। और क्षत्रिय अपने धर्मकर्मको छोड़ दे, तो वह विष्ठा और मुर्दा खानेवाला कटपूतन नामक प्रेत होता है।

मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ।
चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥७२॥

वैश्य अपना कर्म न करे तो वह जन्मान्तरमें पीब खानेवाला मैत्राक्षज्योतिक नामक प्रेत होता है। और शूद्र अपने कर्मसे भ्रष्ट हो तो वह चिलड़ खानेवाला चैलाशक नामक प्रेत होता है।

यथा यथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः ।
तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते ॥७३॥

विषयलोलुप मनुष्य जैसे जैसे विषयोंका उपभोग करते हैं, वैसे वैसे उन विषयोंमें उनकी प्रवीणता बढ़ती जाती है।

तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः ।
संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ॥७४॥

वे मन्दबुद्धि उन पापकर्मोंके अभ्याससे जन्मान्तरमें दुष्ट जन्तुओं-की योनिमें जन्म लेकर नाना प्रकारके दुःख भोगते हैं।

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्तनम् ।
असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ॥७५॥

फिर भी उस पापकर्मके दोषसे वे जीव तामिस्र आदि घोर

नरकोंमें वास करते हैं। असिपत्रवन आदि और बन्धनच्छेदन आदि नरकोंकी विविध यातनाएं भोगते हैं।

विविधाश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम् ।
करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥७६॥

और भी उन्हें नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। काक और उलूक पक्षी उन्हें नोच नोचकर खाते हैं। तपी हुई बालूपर चलना पड़ता है, कुम्भीपाक नरककी भयानक यन्त्रणा सहनी पड़ती है।

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः ।
शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च ॥७७॥

दुःखसे भरी हुई तिर्यक् आदि योनियोंमें जन्म लेकर जाड़े गरमीके कष्ट और विविध प्रकारके भय सदा पाते रहते हैं।

असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दारुणम् ।
बन्धनानि च काष्ठानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥७८॥

बारम्बार गर्भाशयमें वास करते हैं, दुःखद जन्म लेते हैं, नाना प्रकारके बन्धनोंमें पड़ते हैं, और दूसरोंके दास होकर रहते हैं।

बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः ।
द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥७९॥

प्रिय बन्धुओंका वियोग, दुर्जनों*के साथ एकत्र वास, द्रव्यका लाभ और क्षति, मित्र-शत्रुके झमेले आदि साथ लगे रहते हैं।

जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम् ।
क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥८०॥

---

*बरु भल वास नरक कर ताता। दुष्टसङ्ग जनि देहि विधाता।
—गोसांई तुलसीदासजी।

जिसका कोई प्रतिकार नहीं ऐसा बुढ़ापा, नाना प्रकारकी व्याधियों-के कष्ट, और भी अनेक सांसारिक क्लेशोंको सहते हुए दुर्निवार मृत्युको प्राप्त होते हैं ।

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ।
तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥८१॥

जैसे भावसे जीव जो कर्म करता है, वैसे ही शरीरसे वह उस कर्मका फल भोगता है ।

एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्मणां वः फलोदयः ।
नैश्रेयसकरं कर्म विप्रस्येदं निबोधत ॥८२॥

यह सब कर्मोंका फलोदय तुमसे कहा । अब ब्राह्मणके नैश्रेयस ( मुक्ति ) करनेवाले कर्मों को सुनो ।

वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ।
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥८३॥

वेदाभ्यास, (प्राजापत्य आदि) तप, (ब्रह्मविषयक) ज्ञान, इन्द्रियों-का निरोध, अहिंसा और गुरुसेवा, ये सब मुक्तिके श्रेष्ठ साधन हैं ।

सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्मणाम् ।
किंचिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥८४॥

इन सब ( वेदाभ्यास आदि ) शुभकर्मों में क्या कोई एक ही कर्म औरोंसे अधिक श्रेयस्कर पुरुषके लिये कहा गया है ? ( ऐसा प्रश्न हो तो उसका उत्तर—)

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥८५॥

इन सब पूर्वोक्त कर्मोंमें आत्मज्ञान सर्वश्रेष्ठ माना गया है । (कारण) वही सब विद्याओंमें श्रेष्ठ है और उसीसे अमृतत्व प्राप्त होता है ।

षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेह च ।

श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥८६॥

इन पूर्वोक्त कल्याणकारी छः कर्मों में वैदिक कर्मको ही इस लोक तथा परलोकके लिये विशेष कल्याणकारी जानना चाहिये ।

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ।

अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन्क्रियाविधौ ॥८७॥

वैदिक कर्मयोगमें इन सबका क्रमशः तत्ताकर्म विधिके द्वारा अन्तर्भाव होता है ।

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च ।

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥८८॥

सांसारिक और स्वर्गादि सुखका देनेवाला तथा मोक्ष-साधनभूत इस प्रकार प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकारका वैदिक कर्म होता है ।

इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ।

निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते ॥८९॥

सांसारिक सुख या स्वर्गादिप्राप्तिके लिये जो सकाम कर्म किया जाता है उसे प्रवृत्त, और ज्ञानपूर्वक जो निष्काम कर्म किया जाता है उसे निवृत्त कहते हैं ।

प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् ।

निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥९०॥

प्रवृत्त कर्मका संसेवन करके ( मनुष्य ) देवताओंकी समता प्राप्त करता है और निवृत्त कर्मका सेवन करनेवाला पञ्चभूतोंके परे पहुंचता है ( अर्थात् मुक्त होनेके कारण फिर उसे पाञ्चभौतिक शरीर धारण नहीं करना पड़ता ) ।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।

समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥९१॥

सब प्राणियोंमें अपने आपको तथा अपने आपमें सब प्राणियोंको एकसा देखता हुआ आत्मयाजी ( ब्रह्मार्पण-बुद्धिसे कर्म करनेवाला पुरुष ) स्वाराज्य (ब्रह्मत्व) को प्राप्त होता है।

यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः।
आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥९२॥

अन्य शास्त्रोक्त कर्मोंका त्याग करनेपर भी द्विजश्रेष्ठ आत्मज्ञान, इन्द्रियनिग्रह और वेदाभ्यासमें यत्नवान् रहे।

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः।
प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥९३॥

विशेषकर ब्राह्मणके जन्मकी सफलता इसीमें है। इस (मोक्ष) को पाकर ही द्विज कृतकृत्य होता है, अन्यथा नहीं।

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥९४॥

पितरों, देवताओं और मनुष्योंका वेद ही सनातन नेत्र है। वेद-शास्त्र अपौरुषेय और अप्रमेय है। यही इसकी ( सनातन ) स्थिति है।

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥९५

जो स्मृतियां वेदसे सम्बन्ध नहीं रखतीं और जो सब कुतर्क वेदबाह्य हैं, वे सब परलोकके लिये निष्फल हैं; क्योंकि मन्वादि महर्षियोंने उन्हें तमोनिष्ठ कहा है।

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥९६॥

ऐसे जो कोई वेदभिन्न शास्त्र हैं वे उत्पन्न होकर शीघ्र नष्ट होते हैं और अर्वाचीन होनेसे निष्फल और असत्य हैं।

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥९७॥

चार वर्ण, तीन लोक, चार आश्रम, और भूत, भव्य, भविष्य (तीन काल) ये सब वेदसे ही सिद्ध होते हैं।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥९८॥

शब्द, स्पर्श, रूप रस और पांचवां गन्ध वेदसे ही प्रसूति-गुण कर्मसे प्रसूत होते हैं।

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥९९॥

सनातन वेदशास्त्र ही सब प्राणियोंका विशेष रूपसे भरण करता है। इसलिये यह कर्माधिकारी पुरुषका उत्तम पुरुषार्थसाधन है, ऐसा हम मानते हैं।

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥१००॥

सेनापतित्व, राज्यशासन, दण्डविधान और सब लोकोंका आधिपत्य, इसके लिये वेदशास्त्र जाननेवाला ही योग्य है।

यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ।
तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः ॥१०१॥

जैसे धधकती हुई आग हरे पेड़ोंको भी जला देती है वैसे ही वेदका ज्ञाता ब्राह्मण अपने कर्मजनित पापको भस्म कर देता है।

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१०२॥

वेदशास्त्रका अर्थ जाननेवाला तत्त्वदर्शी पुरुष चाहे जिस किसी

आश्रममें हो, वह इस लोकमें स्थित रहकर भी ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है ( अर्थात् वह जीवन्मुक्त हो जाता है )।

अज्ञेभ्योग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥१०३॥

मूर्खोंसे ग्रन्थ पढ़नेवाले, ग्रन्थ पढ़नेवालोंसे ग्रन्थविषयके धारण करनेवाले, विषय धारण करनेवालोंसे ज्ञानी और ज्ञानियोंसे भी निष्काम कर्म करनेवाले श्रेष्ठ हैं।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयस्करं परम् ।
तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥१०४॥

तप और विद्या दोनों ब्राह्मणके परम कल्याणकारक हैं। तपसे पापका नाश होता है और विद्या ( ब्रह्मज्ञान ) से मुक्ति मिलती है।

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥१०५॥

धर्मशुद्धि चाहनेवाले पुरुषको प्रत्यक्ष, अनुमान और विविध प्रकारके आगमशास्त्र—इन तीनों ( प्रमाणों )को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥१०६॥

ऋषियोंद्वारा देखे गये वेद और ( स्मृत्यादि ) धर्मोपदेशका जो वेदशास्त्रसे अविरुद्ध तर्कके द्वारा अनुसन्धान करता है, वही धर्मको जानता है; दूसरा नहीं।

नैःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः ।
मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते ॥१०७॥

मुक्तिसाधनका यह शास्त्रोक्त कर्म सम्पूर्णरूपसे कहा, अब इस मानवशास्त्रके रहस्य (गुप्त विषय) का उपदेश करते हैं।

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत्।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥१०८॥

इन धर्मोंमें जिनका नामोल्लेख नहीं हुआ ऐसा प्रसंग उपस्थित होनेपर क्या करना चाहिये ऐसा प्रश्न उपस्थित हो तो जो धर्म शिष्ट ब्राह्मण बता दें वही निश्चित धर्म है।

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥१०९॥

धर्मपालनपूर्वक जिन्होंने वेदाङ्गो सहित वेदको प्राप्त किया हो इन्हें शिष्ट ब्राह्मण जानना चाहिये। वे ही श्रुतिको प्रत्यक्ष करनेमें कारण हैं।

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥११०॥

कम-से-कम ऐसे दस शिष्ट जिस सभामें हों, ऐसी दशावरा परिषद् धर्मकी कल्पना करे अथवा दस शिष्टोंके अभावमें कमसे कम तीन सदाचारसंपन्न ब्राह्मणोंकी त्र्यवरा परिषद् जिस धर्मकी व्यवस्था करे वह धर्म ही है इसमें शंका न करे।

त्रैविद्यो हेतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥१११॥

तीन वेदोंके जाननेवाले,एक नैयायिक, एक मीमांसक, एक निरुक्त जाननेवाला, एक धर्मशास्त्रज्ञ और तीन पूर्वाश्रमी ( ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ ), ऐसे दस पुरुष मिलकर दशावरा परिषद होती है।

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥११२॥

ऋग्वेदविद्, यजुर्वेदविद् तथा सामवेदविद् ( इन तीन ) की, धर्मसंशयके निर्णयमें, त्र्यवरा परिषद होती है यह जानना चाहिये।

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥११३॥

एक भी वेदविज्ञ ब्राह्मण जिस धर्मका निश्चय कर दे उसीको परमधर्म जाने, वेदको न जाननेवाले दश सहस्र मूर्खोंका कुछ भी निर्णय हो, तो यह धर्म नहीं हो सकता।

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥११४॥

ब्रह्मचर्यादि व्रतोंसे रहित, वेदाध्ययन-शून्य, केवल ब्राह्मण जातिको धारण करनेवाले सहस्रों व्यक्ति भी एकत्र होकर सभा करें तो वह धर्मपरिषद् नहीं हो सकती।

यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥११५॥

धर्मशास्त्रको न जाननेवाले और तमोगुणसे भरे हुए मूर्ख (प्रायश्चित्तादि) धर्म जिस किसीको बतलाते हैं उसका पाप सौगुना होकर उन (प्रायश्चित्तादि) धर्म बतानेवालोंके सिर सवार होता है।

एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परम् ।
अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥११६॥

यह संपूर्ण निःश्रेयससाधक परम धर्म तुमसे कहा। इससे च्युत न होनेवाला ब्राह्मण परमगतिको प्राप्त होता है।

एवं स भगवान्देवो लोकानां हितकाम्यया ।
धर्मस्य परमं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान् ॥११७॥

इस प्रकार उन भगवान् देवने लोक-कल्याणकी इच्छासे धर्मका यह सब परम गोपनीय विषय मुझसे कहा।

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥११८॥

स्थिरचित्त होकर सब कुछ, सत् भी और असत् भी अपने आपमें देखे। इस प्रकार सबको अपने अंदर देखनेवाला पुरुष अधर्ममें अपना मन नहीं लगाता।

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ।
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥११९॥

(इन्द्रादि) सभी देवता आत्मा ही हैं। सारा जगत् आत्मामें अवस्थित है। आत्मा ही इन शरीरधारियोंका कर्मयोग निर्माण करता है।

खं संनिवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेऽनिलम् ।
पक्तिदृष्ट्योः परं तेजः स्नेहेऽपो गां च मूर्तिषु ॥१२०॥
मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रान्ते विष्णुं बले हरम् ।
वाच्यग्निं मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् ॥१२१॥

(बाहरका आकाशको (अपने शरीरके भीतरके) आकाशमें लीन करे, (शरीरकी) चेष्टा और स्पर्श (रूपसे प्रकट वायु) में वायुको, उदर और नेत्रकी अग्निमें (अग्नि और सूर्यके) परम तेजको (शरीरके) जलमें (बाहरके) जलको, (शरीरके) पार्थिव भागमें पृथ्वीको, मनमें चन्द्रमाको, कानमें दिशाओंको, चरणेन्द्रियमें विष्णुको, बलमें महादेवको, वाणीमें अग्निको, मलद्वारमें मित्र देवताको और जननेन्द्रियमें प्रजापतिको (लीन करे।)

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥१२२॥

जो सबका शासन करनेवाला, अणुसे भी अति सूक्ष्म, सोनेके समान कान्तिवाला, स्वप्नावस्थाके सदृश बुद्धिसे जाननेयोग्य है, उस परमपुरुषको जाने।

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥१२३॥

इसी ( परमपुरुष परमात्मा ) को कोई अग्नि, कोई प्रजापति मनु, कोई इन्द्र, कोई प्राण और कोई सनातन ब्रह्म कहते हैं ।

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्तिभिः ।
जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥१२४॥

यह ( परमात्मा ) सब प्राणियोंके पञ्चमहाभूतोंके द्वारा निर्मित शरीरोंमें व्याप्त होकर जन्म, स्थिति और विनाशके द्वारा उन्हें पहियों की तरह घुमाता रहता है ।

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥१२५॥

इस प्रकार जो मनुष्य सब जीवोंमें आत्मरूपसे अपने आपको देखता है, वह सबमें समत्वभाव प्राप्तकर सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मत्वपदको प्राप्त होता है ।

इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन्द्विजः ।
भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥१२६॥

ऐसा यह मानवशास्त्र जो भृगुजीके द्वारा कथित हुआ, इसका पठनकर द्विज नित्य आचारवान् होकर यथाभिलषित गतिको प्राप्त होता है ।

* द्वादश अध्याय समाप्त *

॥ इति ॥